



# बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में जीवन मूल्य

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़  
की

पी-एच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

## शोध-प्रबन्ध सार

सत्र-2013

शोध निर्देशक:

प्रोफेसर कृष्णमुरारि मिश्र

शोधार्थिनी:

कमर जहाँ

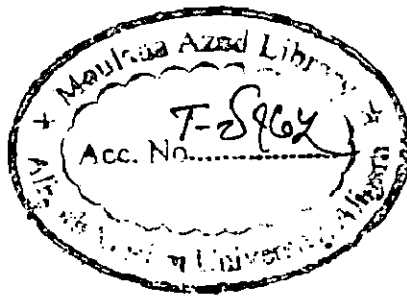
THESIS

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

(भारत)

THESIS



## शोध प्रबन्धसार

बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में जीवन मूल्यों में बड़ी तेजी से बदलाव आया है। इक्कीसवीं सदी के निर्धारण में इस परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के अनेक हिन्दी उपन्यासों में युग के बदलाव के कारण हुए जीवन मूल्यों के बदलाव को सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य में परिवर्तनशील जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है ;  
जिनका संक्षिप्त परिचय शोध सार में प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में जीवन मूल्यों का सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है। यह विवेचन समसमायिक भारतीय समाज और जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में है। इस अध्याय में जीवन मूल्य का अर्थ, परिभाषा, विकास, महत्त्व भारतीय नीति संबंधों का विवेचन आदि प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों में जीवन मूल्यों के प्रचलित वर्गीकरण को भी दर्शाया गया है। जीवनमूल्य परिवर्तनशील हैं। यद्यपि इस परिवर्तन की गति अत्यन्त सूक्ष्म है तथापि परिस्थितियों के प्रभाव स्वरूप जीवनमूल्यों में परिवर्तन स्पष्ट प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार व्यवहार में परिवर्तन को सीमा में नहीं बांधा जा सकता उसी प्रकार जीवन मूल्यों के वर्गीकरण का भी कोई निश्चित आधार नहीं है।

द्वितीय अध्याय में बीसवीं सदी के अंतिम दशक के प्रमुख उपन्यासों का परिचय देते हुए विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ब्रजनारायण सिंह, सूर्यबाला, चंद्रकांता, मधुधवन, सुदेश भाटिया, यादवेन्द्र शर्मा, चन्द्र उग्र, बलभद्र तिवारी, ममता कालिया, मधु धवन, इस्मत चुगताई आदि के उपन्यासों में जीवन-मूल्यों का मूल्यांकन इसी अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के उपन्यास और जीवन मूल्य विषय की समीक्षा की गई है। युग परिवर्तन के साथ-साथ जीवन मूल्यों में बड़ी तेजी से बदलाव आया है। सदाचरण और आदर्श ही समाज को मूल्यहीन और अनाचारण से बचा सकते हैं। ऐसे अनेक उपन्यास हैं जिन में परिवार के प्रति व्यक्ति नैतिक आचरण को प्रवृत्त होते हुए दिखाया गया है। जैसे - यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र का उपन्यास 'दो रंग', डॉ० विष्णु पंकज का 'टूटा हुआ आदमी', डॉ० रामदेव शुक्ल का 'गिद्धलोक', सूर्यबाला का 'दीक्षांत' आदि। इन उपन्यासों के अतिरिक्त राजेदव प्रियंवर का 'पिंजरे के पंछी', डॉ० विष्णु पंकज का 'टूटा हुआ आदमी' देवराज पथिक का 'जर्जर सेतु' अनुराधा भार्गव का 'सत्य की ओर' आदि उपन्यासों में उपन्यासकार अपने पात्रों द्वारा परिवार व सामाजिक परिवेश में अपने वैयक्तिक गुण जैसे सत्य, ईमानदारी, त्याग कृतज्ञता, सहनशीलता आदि पर बल दिया गया है। नैतिक मूल्यों में वह शक्ति है जो व्यक्ति, परिवार व समाज को उचित जीवन मूल्यों की ओर अग्रसारित करती है।

जीवन मूल्यों के कारण ही व्यक्ति विभिन्न प्रकार की विपत्तियों में अपनी अलग पहचान बनाता है। परिवार समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। वैवाहिक सम्बन्ध, रिश्तों-नातों के आधार पर ही परिवार बनता है तथा पारिवारिक परिवेश के आधार पर ही वैयक्तिक जीवन मूल्यों का निर्माण होता है। समाज को सुगठित रूप से चलाने के लिए स्वस्थ परिवारों का होना आवश्यक है। पारिवारिक वातावरण में मानवीय अनुबंधों का घनीभूत रूप परिलक्षित होता है। कुछ उपन्यासों

में आधुनिक वैज्ञानिक युग के परिवेश में बदलते वैयक्तिक एवं परिवारिक जीवन मूल्यों का परिवर्तित स्थिति को दर्शाया गया है। उपन्यासकार यादवेन्द्र शर्मा का 'अन्मन', बनाफर चन्द्र का 'सवालियों के बीच' इस्मत चुगताई का 'जिद्दी' सूर्यबाला, मेरे संधि पत्र', आदि में वैयक्तिक जीवन मूल्यों के कारण परिवार की एकता को टूटते हुए चित्रित किया गया है। इसके अलावा ननद-भाभी, सास-ससुर, पुत्र-पुत्री, देवर-भाभी, माता-पिता, बहन-भाई आदि के आपसी सम्बन्ध में विघटन की स्थिति को भी अनेक उपन्यासों में दर्शाया गया है। कुछ उपन्यासकार अपने उपन्यासों में परिवारों के मनुष्य को आत्मीयता व प्रेम के बंधन में बांधते हैं जैसे ब्रजनारायण रिक्का का 'समर्पित', देवराज पथिक का 'जर्जर सेतु' 'अभिज्ञान' आदि उपन्यासों में परिवार को एकता में बाँधने पर बल दिया गया है। 'जर्जर सेतु' 'सुबह के इंतजार तक' 'पिंजरे के पंछी' 'अप सलीबे' 'सीपी भर सुख' 'टूटा हुआ आदमी' 'घूँघट' आदि उपन्यासों में भाई-बहन, भाई-भाई बीच झलकने वाली आत्मीयता को चित्रित किया गया है। 'समर्पिता खूँटे' 'अंतिम साक्ष्य' 'सत्य ओर' 'अग्निपंखी' 'समय सरगम' 'करवट लेता वक्त' आदि उपन्यासों में विघटन की स्थिति चित्रित किया गया है, सास-बहू का सम्बन्ध माँ-बेटी का सम्बन्ध होता है परन्तु उपरोक्त उपन्यासों में इसके विपरीत स्थिति पायी जाती है। 'आघात' उपन्यास में उपन्यासकार ने आपसी सम्बन्धों को सफल होते हुए चित्रित किया है।

आज रिश्ते कच्चे धागे बन गये हैं। भाभी-देवर के बीच भी अनैतिक संबंध स्थापित रहे हैं। चित्रा मुद्गल ने अपने उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में यही दिखाने का प्रयास किया। 'जर्जर सेतु' में दीपक पात्र के माध्यम से अपनी भाभी के प्रति सम्बन्ध के मूल्यों को उजागर किया है। सम्बन्धों में आये विघटन के कारण ही आज समष्टि से व्यष्टि की ओर बढ़ते परिवारों के स्वरूप और स्वभावों का भी विवेचन किया गया है।

आज समष्टि परिवार व्यष्टि परिवार में परिवर्तित हो रहा है। आज प्रत्येक व्यक्ति आसुख प्राप्ति की होड़ में लगा है। संतान के लिए माता-पिता बोझ बनते जा रहे हैं। काली सुबह का सूरज, करवट लेता वक्त, अर्थात्तर, अंतिम साक्ष्य में जर्जर सेतु, आदि उपन्यासों में व्या परिवारों में विघटित जीवन मूल्यों को दर्शाते हुए दाम्पत्य जीवन में उठने वाली समस्याओं विवेचन किया है।

जिस प्रकार सामाजिक जीवन मूल्यों से पारिवारिक जीवन मूल्यों का सम्बन्ध है उ प्रकार पारिवारिक मूल्यों का वैवाहिक मूल्यों से सम्बन्ध है। विवाह स्त्री पुरुष का मिलन है।

आजकल स्त्री-पुरुषों में अपने परिवार पर विभिन्न प्रकार का दबाव जैसे दहेज, अनर् एवं विलम्ब, विवाह आदि से बचने के लिए समाज में प्रेम व अन्तर्जातीय विवाह के प्रति झुव बढ़ रहा है। 'काली सुबह का सूरज', 'गिद्धलोक' 'संयुक्ताक्षर', 'एक जमीन अपनी', 'अं साक्ष्य', आदि में अनमेल विवाह; अधिक दहेज के कारण होने वाले परिणाम को 'तलाक तलाक' 'आकांक्षा' 'संयुक्ताक्षर' 'पिंजरे के पंक्षी' 'करवट लेता वक्त' 'अंतिम साक्ष्य' अ उपन्यासों में कुशलता के साथ दर्शाया है। इस दहेज के कारण ही अनमेल, विलम्ब, आदि वि होने लगे हैं जैसे 'काली सुबह का सूरज' 'धूँघट' 'सवाल्लों के बीच' पिंजरे के पक्षी आदि उपन्य में दर्शाया गया है। 'जर्जर सेतु' पिंजरे के पक्षी' 'दौड़' 'दो रंग' 'अधिकार' 'जुर्माना' आदि में विवाह को प्रकट किया है।

चतुर्थ अध्याय में बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में राजनीतिक जीवन मू का विवेचन किया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात् उद्योग, ज्ञान-विज्ञान, राजनीति, आदि सभी क्ष में प्रगति हुई इस प्रगति ने देश के सम्पूर्ण जीवन को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया। स्वतः

के साथ भारत में स्वर्णिम जीवन मूल्य की कामना की गई परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं हो सका। बढ़ती बेरोजगारी, मंहगाई और सत्ता की भ्रष्ट नीति, चुनावों में कथनी-करनी में भेद, नारी शोषण आदि ने स्वतंत्रता से पूर्व देखे गये सपनों को चकनाचूर कर दिया।

अनेक उपन्यासकारों द्वारा राजनीतिक जीवनमूल्यों व सत्ता द्वारा भ्रष्ट नीति को दिखाकर विघटन के कारणों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। यथा - 'एक जमीन अपनी', 'दंडनायक' 'फूल इमारतें और बन्दर' 'अपनी सलीबे' 'महासमर (धर्म)' आदि में राजनीतिक जीवन मूल्यों को दिखाने का प्रयास किया गया है, सरकारी विभागों के कर्मचारियों में दिन-प्रतिदिन अक्षमता, अव्यवस्था, घूसखोरी, बेईमानी का बोलबाला हो रहा है। भ्रष्ट नीति में 'दंडनायक', 'फूल इमारतें और बन्दर' 'महासमर (अंतराल)' 'महासमर (धर्म)' आदि उल्लेखनीय हैं। स्वतंत्रता से पूर्व युवा वर्ग ने देश की आजादी के लिए राजनीति में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् बुद्धि-जीवी युवा वर्ग धीरे-धीरे राजनीति का दुरुपयोग करने लगे। पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण के नाम पर अपनाये गए नये शैक्षणिक विचारों के कारण भारतीय संस्कृति पर संकट के बादल छा गये जिससे जनता के जीवन मूल्यों में उतार-चढ़ाव आता रहा है। शैक्षणिक विभागों में भी कुछ नवयुवक व प्राध्यापक पढ़ाई को छोड़ राजनीति से प्रेरित हो गये 'अभिजात' 'दीक्षांत' 'महासमर (अधिकार)' 'विजयी' 'अर्थांतर' 'गिद्धलोक' 'रुको द्रौपदी' आदि उपन्यासों में शिक्षा विभागों में हो रहे मूल्य विघटन की स्थिति को चित्रित किया गया है। आज हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार का बोलवाला है। 'गिद्धलोक' 'अपनी सलीबे' उपन्यास में चिकित्सा के क्षेत्र में होने वाले भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया गया है।

अनैतिक रूप से कमाई हुई धनराशि को चुनावों में खर्च कर विजयी होने के बाद बहुत से नेताओं द्वारा आम जनता को लूटने के अलावा कोई जनहित कार्य नहीं किया जाता है।

‘यातना घर’ ‘जर्जर सेतु’ ‘दंडनायक’ ‘समय सरगम’ आदि उपन्यासों में यही देखने को मिलता है।

प्रजातंत्र में प्रजा ही नेता का चुनाव करती है परन्तु आज पुराने मंत्रियों और नेताओं के पुत्र और पुत्री तथा उनके सम्बन्धी ही उच्च पदों पर आसीन होते हुए दिखायी देते हैं। नेता लोग चुनावों के समय जनता से बड़े-बड़े वायदे करते हैं। किन्तु चुनाव होने के बाद भूल जाते हैं। चारों तरफ भ्रष्ट राजनीति का बोलबाला है। उपन्यास ‘फूल इमारतें और बन्दर’ ‘पिंजरे के पंछी’ ‘यातना घर’ ‘महासमर (धर्म)’ ‘टूटते गांव बनते रिश्ते’ ‘चुटकी भर चन्दन’ ‘मास्टरजी’ ‘दीक्षांत’ ‘वरुण के बेटे’ आदि उपन्यासों में सरकारी विभागों में घूस लेना-देना दर्शाया गया है।

आज आम आदमी स्वतंत्र होते हुए भी अपने आप को असुरक्षित महसूस कर रहा है, बहुत से पुलिसवाले जो आम जनता की रक्षा के लिए हैं तथा सत्ताधारी व्यक्ति ही जनता को लूटते हैं। ‘दंडनायक’, ‘जर्जर सेतु’ ‘अक्षरों के आगे’ ‘फूल इमारतें और बन्दर’, ‘चुटकी भर चन्दन’, ‘विजयी’, आदि उपन्यासों में उपन्यासकारों ने भ्रष्ट पुलिस कर्मचारियों को उजागर किया है। आज की राजनीति दल बदलू राजनीति है। ‘महासमर (प्रच्छन्न)’, ‘गिद्धलोक’ ‘फूल इमारतें और बन्दर’ ‘सत्य की ओर’ ‘चुटकी भर चन्दन’ ‘यातना घर’ ‘टूटते गांव बनते रिश्ते’ आदि में इसी प्रकार के नेताओं का बोल बाला है।

आज सामंतवर्ग के हाथों में ही राजनीति की बागडोर है। नेता पद को संभालते ही नैतिक मूल्यों को भूलकर पैसे की ओर ध्यान आकृष्ट हो जाता है।

पंचम अध्याय बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में आर्थिक मूल्यों से जुड़ा है। आज के जीवन में अर्थ के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए किस तरह आज का नौकरीपेशा व्यक्ति



इसके प्रलोभन से ग्रस्त है- अर्थ और व्यक्ति के बीच के संबंधों की स्थिति किस तरह व्यक्ति, परिवार, समाज, राजनीति, यहाँ तक की धार्मिक मूल्यों तक प्रभावित है। इसका निरूपण बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में करने का प्रयास किया गया है। 'संयुक्ताक्षर' 'जुर्माना' 'रिश्वों के बीच' 'आकांक्षा' 'जर्जर सेतु' 'शतरूपा' 'तलाक दर तलाक' 'दौड़' 'अंतिम साक्ष्य' 'घुटकी भर चन्दन' 'जुर्माना' 'उस मोड़ पर' 'अक्षरों के आगे मास्टर जी' 'धूँघट' 'पिंजरे के पंछी', 'एक जमीन अपनी' आदि उपन्यासों में उपन्यासकारों ने परिवारिक जीवनमूल्यों में अर्थ की महत्ता का चित्रण किया है।

समाज के जन-जीवन में आने वाले उतार-चढ़ाव का मूल कारण पैसा ही है। परिवार में लोगों को पैसे के पीछे भागते हुए देखकर उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के द्वारा प्रकट किया है। 'अक्षरों के आगे मास्टरजी' 'सवालियों के बीच' 'एक जमीन अपनी' 'धूँघट' आदि उपन्यासों में शैक्षणिक स्तर पर, वर्ग संघर्ष, बेरोजगार जिसके कारण मानव रोजी रोटी के लिए, बसेरे की तलाश में भ्रष्टाचार व धन के कारण प्रचलित कुरीतियों व विसंगतियों का विवेचन किया गया है।

धन के कारण समाज में स्त्री की स्थिति दयनीय हो गयी है। नारी अर्थ के कारण यौन शोषण का शिकार हो रही है। वर्ग संघर्ष, नारी की स्थितियों के अलावा समाज में मंहगाई, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी और रिश्वतखोरी आदि का शिकार होते हुए नारी पात्रों की दशा पर अनेक उपन्यासों में संवेदना व्यक्त की गयी है। यह कटु सत्य है कि अर्थ के बिना जीवन की सत्ता सम्भव नहीं है। धन प्राप्ति के लिए मनुष्य आपसी सम्बन्धों को भूलता जा रहा है। रुपया-पैसा ही मनुष्य के बीच ऊँच-नीच की भावना जागृत कर रहा है।

षष्ठ अध्याय में बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों को विघटित करने वाली समसामयिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है। मनुष्य का परिचय उसकी संस्कृति से ही होता है। संस्कृति द्वारा ही मनुष्य के जीवन में अहिंसा, परोपकार, सत्य, प्रेम, उदारता, निरभिमान व सहानुभूति इत्यादि गुणों का विकास होता है। कुछ उपन्यासकारों द्वारा अपने उपन्यासों के माध्यम से संस्कृति, मानव के अध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक जीवन को विकसित और परिष्कृत किया गया है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी अपने पति को परमेश्वर मानती है। 'वरुण के बेटे', 'रुको द्रौपदी', 'सत्य की ओर', 'सूखे आँसू', आदि उपन्यासों में उपन्यासकारों ने पतिव्रता नारी का चित्रण किया है।

परन्तु आज इन मूल्यों का विघटन हो रहा है। इसी विघटन को उपन्यासों के द्वारा दिखाने की चेष्टा की गयी है। कुछ उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वासों का भी चित्रण किया है। इनमें 'घूँघट' 'चुटकी भर चन्दन' 'समय सरगम' 'संयुक्ताक्षर', 'तलाक दर तलाक', 'पिंजरे के पंछी', 'दौड़', आदि उल्लेखनीय हैं। वहीं दूसरी ओर अंधविश्वास के बारे में 'अन्तर्मन' 'आघात' 'सत्य की ओर' 'जिद्दी' 'खूँटे' 'फूल इमारतें और बन्दर', आदि उपन्यासों में सचेत किया गया। आज भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का व्यापक प्रभाव पड़ रहा है। उपन्यासों के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार भारतीय जनता द्वारा पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण किया जा रहा है; जिससे सांस्कृतिक मूल्यों में विघटन की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

सप्तम अध्याय का शीर्षक उपसंहार है। जिसमें प्रस्तुत शोध कार्य में उपलब्ध निष्कर्ष एवं तथ्य संक्षेप में प्रस्तुत किये गये हैं।

शोध कार्य के आधार पर कहा जा सकता है कि नवें दशक के बाद बीसवीं सदी के अंतिम दशक में जीवन मूल्यों में अनेक बदलाव आये हैं जिनका विवेचन प्रस्तुत शोध कार्य में करने का प्रयास किया गया है।

Qamar Jehan  
(कमर जहाँ)

शोध छात्रा



# बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में जीवन मूल्य

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़  
की

पी-एच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

## शोध-प्रबन्ध

सत्र-2013

शोध निर्देशक:

प्रोफेसर कृष्णमुरारि मिश्र

शोधार्थिनी:

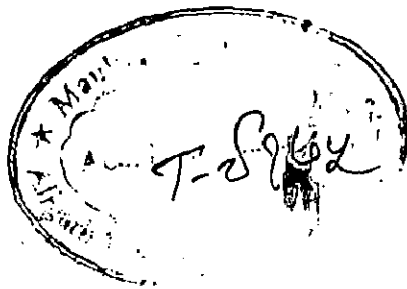
कमर जहाँ

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

(भारत)

THESIS



20 NOV 2014



T9175



IRMAN

**DEPARTMENT OF HINDI**  
**FACULTY OF ARTS**  
**ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY, ALIGARH-202 002**

Telex : 564-230 AMU IN  
Phones: Off. 2700920 } Ext.  
2700921 } 1460  
2700922 } 1461

**CERTIFICATE**

This is to certify that *Mrs. Qamar Jahan* (D.O.A. 17.12.2008) Research Scholar in Hindi has submitted her Ph.D. thesis on 2.7.11.2013 on the Topic "बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में जीवन मूल्य"

She was a regular for two years from the date of admission in the Department of Hindi and has completed her Ph.D. thesis under the supervision of Prof. Krishna Murary Mishra, Department of Hindi, Aligarh Muslim University, Aligarh.

  
(Prof. M.E. Zuberi)

THESIS



Krishana Murary Mishra

D. Lit.

Professor, Department of Hindi

**ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY**

Aligarh 202 002

Dated: 17.04.2013

## **CERTIFICATE**

This is to certify that the thesis entitled “बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में जीवन मूल्य” submitted by Mrs. Qamar Jahan for the award of Doctor of Philosophy in Hindi is an original research work. It is the result of her efforts and it has been completed under my supervision.

The candidate has fulfilled all the conditions laid down in the Ph.D. Ordinances (Academic) of Chapter XXV of the Aligarh Muslim University, Aligarh.

(Prof. K. M. Mishra)  
Supervisor

## प्राक्कथन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी.एच-डी की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध का शीर्षक है 'बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में जीवन मूल्य' जगविदित है कि बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में जीवन मूल्यों में बड़ी तेजी से बदलाव हुआ है। इक्कीसवीं सदी के स्वरूप के निर्धारण में इस परिवर्तन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में युग के बदलाव के कारण हुए जीवन मूल्यों के बदलाव को अभिव्यक्त किया गया है। प्रस्तुत शोधप्रबंध में परिवर्तनशील जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों का अध्ययन है।

प्रस्तुत अध्ययन शोध प्रबन्ध के सात अध्यायों में व्यवस्थित है। प्रथम अध्याय में बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में जीवन मूल्य के सन्दर्भ में जीवन मूल्यों का सैद्धान्तिक विवेचन है। द्वितीय अध्याय में विवेच अवधि के उपन्यासों के सामान्य सर्वेक्षण है। इसमें जीवन मूल्यों के विशिष्ट सन्दर्भ में प्रमुख उपन्यासों का परिचय है। शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में जीवन मूल्य चित्रित सामाजिक मूल्यों का विवेचन है। इस विवेचन में नर-नारी सम्बन्धों को केन्द्र में रखा गया है। चतुर्थ अध्याय में बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में जीवन मूल्य में व्यक्त राजनैतिक जीवन मूल्यों के विविध आयामों का उदघाटन है। पंचम अध्याय में बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में जीवन मूल्य के हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त आर्थिक जीवन मूल्यों का अध्ययन है। शोध प्रबन्ध के षष्ठ अध्याय में बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में जीवन मूल्य अभिव्यक्त सांस्कृतिक



जीवन मूल्यों का अध्ययन किया गया है। सप्तम् अध्याय उपसंहार के रूप में है। उसमें समग्र अध्ययन का निष्कर्ष है।

प्रस्तुत शोधकार्य आदरणीय प्रोफेसर कृष्णमुरारी मिश्र, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। अपनी असाधारण व्यवस्तताओं के बावजूद उन्होंने मुझे सदैव तत्पर सहयोग प्रदान किया। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उनके मार्ग दर्शन का ही सुफल है। मैं उनके प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो० मुफ़्ख़्ख़र एहतिशाम जुबैरी के प्रति भी मैं आभारी हूँ। उन्होंने समय-समय पर अपने सुझावों से मुझे लाभान्वित किया है।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के हिन्दी विभाग के समस्त गुरुजनों का आशीर्वाद भी मुझे सदैव प्राप्त रहा है। एतदर्थ उनका साधुवाद।

मैं अपने माता-पिता के साथ ~~अपने~~ अपने चाचा श्री अब्दुल मजीद, कला संकाय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की भी सदैव ऋणी हूँ। जिन्होंने मेरे जीवन की नींव को मज़बूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मैं इनकी लम्बी आयु एवं सुख समृद्धि की कामना करती हूँ। मेरी बड़ी बहन इबरत जहाँ ने समय-समय पर शोध-कार्य-हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। मेरे परिवार के सभी सदस्यों ने इस कार्य में अनेकविध योगदान दिया है। मैं इन सभी के प्रति मंगल कामनाएँ करती हूँ।

मैं अपने पति श्री ग़ौस मौहम्मद के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर हिम्मत दी है तथा मुझे विवाहोपरान्त शोध कार्य जारी रखने में सहयोग दिया है।

मैं हिन्दी विभाग तथा मौलाना आजाद पुस्तकालय के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों  
का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने समय-समय पर सहयोग एवं आशीर्वाद दिया है।

दिनांक:- 17-04-2013

विद्वज्जन कृपाकांक्षिणी



कमर जहाँ

शोधछात्रा

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

अलीगढ़ (भारत)

नामांकन संख्या - D.D. 0171

## विषयानुक्रमणिका

अध्याय - 1:	समसामयिक भारतीय समाज और जीवन मूल्य	1 - 41
1.0	समसामयिक समाज - जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में	
1.1	मूल्य का अर्थ	
1.2	मूल्य की परिभाषा	
1.3	मूल्य का विकास	
1.4	मूल्यों का महत्व	
1.5	भारतीय नीति सम्बन्धी विचार	
1.6	समसामयिक परिस्थिति	
1.7	मूल्यों का वर्गीकरण	
1.8	आधुनिक मूल्यों का संक्रमण	
अध्याय - 2:	बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण	42 - 79
2.1	समर्पिता - डॉ० ब्रजनारायण सिंह	
2.2	दीक्षांत - सूर्यबाला	
2.3	करवट लेता वक्त - डॉ० मधु धवन	
2.4	मैं सृष्टि की आत्मा हूँ - डॉ० मधु धवन	
2.5	आघात - सुदेश भाटिया	
2.6	घूँघट - सुदेश भाटिया	
2.7	अर्थांतर - चन्द्रकांता	
2.8	अंतिम साक्ष्य - चन्द्रकांता	
2.9	अधिकार - यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र	
2.10	यातना घर - यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र	
2.11	रुको द्रोपदी - डॉ० बलभद्र तिवारी	
2.12	टूटा हुआ आदमी - डॉ० विष्णु पंकज	
2.13	अग्निपंखी - सूर्यबाला	

- 2.14 सत्य की ओर - डॉ० अनुराधा भार्गव
- 2.15 सवालियों के बीच - बनाफर चन्द्र
- 2.16 गिद्धलोक - रामदेव शुक्ल
- 2.17 जिद्दी - इस्मत चुगताई
- 2.18 दौड़ - ममता कालिया
- 2.19 काली सुबह का सूरज - रामधारी सिंह दिनकर
- 2.20 पिंजरे के पंछी - राजदेव प्रियंवद
- 2.21 जर्जर सेतु - डॉ० देवराज पथिक
- 2.22 समय सरगम - कृष्णा सोबती
- 2.23 संयुक्ताक्षर - राजेन्द्र पाण्डेय
- 2.24 छुटकी भर चन्दन - राजेन्द्र पाण्डेय
- 2.25 अपनी सलीबे - नमिता सिंह
- 2.26 सूखे आँसू - सविता राघव अविनाश
- 2.27 तीसरा मोड़ - महेश गुप्त
- 2.28 मंगल सूत्र - बृजलाल हांडा
- 2.29 टूटते गाँव बनते रिश्ते - योगेन्द्र प्रताप सिंह
- 2.30 गौरी - राजेन्द्र शर्मा
- 2.31 अक्षरों के आगे मास्टरजी - भैरव प्रसाद गुप्त
- 2.32 अभिज्ञान - नरेन्द्र कोहली
- 2.33 तोड़ो कारा तोड़ो-निर्माण - नरेन्द्र कोहली
- 2.34 तोड़ो कारा तोड़ो-साधना - नरेन्द्र कोहली
- 2.35 हैमबरगर - कमल कुमार

**अध्याय - 3: बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यास और सामाजिक जीवन मूल्य 80 - 142**

- 3.1 वैयक्तिक जीवन मूल्य
- 3.2 पारिवारिक मूल्य

3.3	विवाह और जीवन मूल्य	
3.4	स्त्री-पुरुष मूल्य परिवर्तन की स्थिति	
3.5	नारी-नारी के प्रति में मूल्य की स्थिति	
<b>अध्याय - 4:</b>	<b>बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में राजनीतिक मूल्य</b>	<b>143 - 199</b>
4.1	राजनैतिक क्षेत्र में मूल्य	
4.2	सरकारी विभागों की नीति में मूल्य	
4.3	चिकित्सा की नीति में मूल्य	
4.4	शैक्षणिक विभागों की नीति में मूल्य	
4.5	राजनीति मूल्यों में विघटित मूल्य	
<b>अध्याय - 5:</b>	<b>बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में आर्थिक मूल्य</b>	<b>199 - 250</b>
5.0	आर्थिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यों की स्थिति	
5.1	विवाह मूल्यों में अर्थ का महत्व	
5.2	पारिवारिक मूल्यों में अर्थ का महत्व	
5.2.1	दाम्पत्य मूल्यों में अर्थ का महत्व	
5.2.2	अर्थ के कारण रिश्तों के संबंधों में बिखराव	
5.3	समाज मूल्यों में अर्थ का महत्व	
5.3.1	अर्थ के पीछे अंधी दौड़	
5.4	नारी की स्थिति	
5.5	शैक्षणिक में अर्थ का महत्व	
5.6	वर्ग संघर्ष	
5.7	बेरोजगारी	
<b>अध्याय - 6:</b>	<b>बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्य</b>	<b>251 - 293</b>
6.1	धर्म की आवश्यकता-धर्मनिरपेक्षता का मूल्य	
6.2	सांस्कृतिक मूल्य	
<b>अध्याय - 7:</b>	<b>उपसंहार</b>	<b>294 - 308</b>

# **प्रथम अध्याय**

**समसमायिक भारतीय समाज  
और जीवन मूल्य**

## प्रथम अध्याय

# समसामयिक भारतीय समाज और जीवन मूल्य

### 1.0 समसामयिक समाज - जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में

मानव समाज का सापेक्ष है। आज के मानव जीवन में मूल्यों का आचरण या अनाचरण या मूल्यहीन साबित होना स्वाभाविक है। इसका क्षेत्र विस्तार है। इनका सीधा सम्बन्ध मानव-जीवन के संवेदनात्मक रूप से है। मनुष्य परिस्थितियों के वशीभूत हो जाने के कारण संदर्भों को नकारता और स्वीकारता रहता है। मनुष्य की संवेदनाओं और अनुभूतियों के अनुसार मूल्य प्रक्रिया व्यावहारिक होती रहती हैं।

जैसे, *“जीवन का सम्यक् एवं संयमित ढंग से चलाने के लिए विचारकों ने अनुभव किया है कि जीवन के लिए कुछ मापदंड रहने चाहिए। उन्हीं के आधार पर मूल्यों की बात की जाने लगी और जीवन की आंतरिक एवं बाह्य आवश्यकताओं पर कुछ कसौटियाँ बनाई गई।”*<sup>1</sup>

मूल्य कभी भी विनिष्ट या जर्जर नहीं होते क्योंकि मूल्य दृश्यमान नहीं होते। इनका संबंध व्यक्ति के नैतिक मूल्य से है। इनका निर्वाह जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए करता है। जिससे सामाजिक नियमों की अवहेलना भी न हो क्योंकि मूल्य परंपरागत हैं। पाश्चात्य विचारकों ने भी मानव का ही जीवन और जगत् का चरम् एवं अन्तिम सत्य प्रमाणित किया है। *“मनुष्य ही सब चीजों का मूलधार है। बिना मानवीय संवेदना को केन्द्र में रखे मूल्य की कल्पना नहीं की जा सकती।”*<sup>2</sup> इस प्रकार पारस्परिक मानव मूल्यों में उत्पन्न बिगड़ता और विघटन के मर्जन और नवीन परिवेशजन्य सार्थक तत्वों के ग्रहण की अनिवार्यता के द्वन्द्वगत परिवर्तन होता है। यह

परिवेशगत परिवर्तन जीवन-क्रम को नयी आवश्यकताओं और नवीन मूल्यों की स्थापना के कारण होता है।

## 1.1 मूल्य का अर्थ

मूल्य अमूर्त है - ये व्यक्ति द्वारा जीवनयापन के लिए निर्धारित तत्व है जिन्हें अनुभव किया जाता है तथा मनुष्य के आचारण से जोड़ दिया जाता है। मनुष्य पाश्विक वृत्तियों पर नियंत्रण करके समाज के अन्य सदस्यों के साथ नैतिक मूल्य के उच्च आदर्शों के साथ मिलजुल कर रहने में मदद करता है। मनुष्य नैतिक आदर्शों से मूल्यों को पहचान कर विचारशील मानव को शारीरिक आवश्यकताओं पर नियंत्रण कर मानसिक वृत्तियों को जगाया है। यही मूल्य है।

अतः मनुष्य ने जिस सृष्टि की रचना की है, जिसमें वह आवश्यक परिवर्तन लाता है, उसके नियमों, मर्यादाओं एवं सिद्धांतों के निर्देशन में चल रहा जीवन ही मानव जीवन कहलाता है। मानव-सृष्टि के ये सिद्धान्त और मर्यादाएँ जीवन-दृष्टि और जीवन-मूल्य कहलाते हैं। मूल्य का विवेचन 'एनसैक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में कहा गया है कि - *"किसी वस्तु पदार्थ या विषय में किसी चाह या प्रवृत्ति अन्तर्निहित रहती है। अतः मूल्य एक सहजोपलब्ध विश्वास या धारणा है।"*<sup>3</sup>

परंपरागत दृष्टि में मूल्य का अर्थ किसी वस्तु या कार्य के बदले में ही जाने वाली राशि मूल्य कहलाती हैं। अब इस मूल्य शब्द का अर्थ दर्शनाशास्त्री, मनोविज्ञान, समाज विज्ञान, अर्थ आदि से संबन्धित होने के कारण अनेकार्थी हो गये हैं। समाजशास्त्र के अन्तर्राष्ट्रीय विश्वकोष के अनुसार - *"मूल्य वांछनीयता की ऐसी धारणा है जो श्रेष्ठ, व्यवहार को प्रभावित करता है।"*<sup>4</sup>

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में मूल्य मानवीय आवश्यकता की संतुष्टि के लिए प्रयोग में आता है। फ्रायड तथ्य और मूल्य में कोई अन्तर नहीं मानते। उनके मतानुसार



सभी तथ्य मूल्य होते हैं। दर्शनशास्त्र से संबंध यह मानवीय अनुभूतियों के साथ गहन स्तर पर जुड़ जाने के कारण अर्थ की दृष्टि से बहुत व्यापक हो जाता है तब उसका अर्थ वस्तु से न लगाकर मानव अस्तित्व से लगाया जाता है।

स्थूल रूप से जीवन मूल्य दो प्रकार के होते हैं - परम्परागत एवं व्यावहारिक जीवन मूल्य। परंपरागत शाश्वत मूल्य नैसर्गिक एवं शाश्वत होते हैं जो युग के प्रवाह में नहीं बदलते। व्यावहारिक परिस्थितियाँ और संदर्भ मूल्य के स्वरूप को प्रभावित कर लेती है। यदि मूल्य का अन्त होता तो बदलती सभ्यता के साथ-साथ मानवीयता समाप्त हो जायेगी।

‘मूल्य’ अंग्रेजी के ‘वैल्यू’ शब्द लैटिन भाषा से बना है जिसका अर्थ सुन्दर ‘वेल’ होता है। जो भी इच्छित है वही मूल्य है। आज शाश्वत मूल्य जैसे सत्य, प्रेम, त्याग, अहिंसा, आदर्श, सहिष्णुता, उदारता, परमार्थ आदि पुराने विचारों को काल बाध्य समझकर नए मूल्य स्वीकार किए गए हैं। मगर युग परिवर्तन से जीवन के शाश्वत मूल्य प्रभावित नहीं होते। युगधर्म अवश्य ही युग-क्रम से परिवर्तित होते हैं। सतयुग में मनुष्य के युगर्ध कुछ और, त्रेतायुग में कुछ और, द्वापर में कुछ तो कलियुग में नहीं थे। अर्थात् मनु ने अपनी स्मृति को मानव धर्मशास्त्र कहा है।

‘अन्ये कतयुगे धर्माः त्रेतायां द्वापर अपरे।

अन्य कलियुगे वृजां युगह्यसानुरूपतः॥’<sup>5</sup>

- मनुस्मृति (1-75)

वास्तव में मूल्यों का संबंध “मनुष्य की चेतना से है जिसमें ज्ञान और अस्तित्व स्वतः समाहित हो जाते हैं। इस प्रकार मूल्य के लिए चेतना आवश्यक और चेतना के लिए मूल्य अनिवार्य है।”<sup>6</sup> दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध है।

## 1.2 मूल्य की परिभाषा

मूल्य मनुष्य के जीवन तथा समाज के प्रत्येक आयाम से संबन्धित होते हैं। मूल्य के संबंध में अनेक आचार्यों ने परिभाषित किया है। प्राचीन काल से मूल्य शब्द के स्थान पर 'धर्म' शब्द पाया जाता है। धर्म का शाब्दिक अर्थ धारण करना है। धर्म 'संस्कृति' का अभिन्न भाग है। धर्म का व्यावहारिक रूप नीति है। संस्कृति का शब्दकोशीय अर्थ है 'संस्कारगत परिष्कार'।

*“मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएँ एवं लक्ष्य हैं जिन का अंतरीकरण सीखने का समाजीकरण की प्रक्रिया की माध्यम से होता है और जो व्यक्ति निष्ठ, अधिमान, मानक तथा आकांक्षा बन जाती है।”<sup>7</sup>*

डॉ० हरिदयाल के अनुसार - “आचरण के प्रतिमानों को सामाजिक मूल्य कहते हैं, ये व्यक्ति के आचरण को निर्देशित और मूल्यांकित करने का आदर्श या मानदण्ड हैं।”<sup>8</sup>

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार - “मूल्य उस गुण-समवाय का नाम है जो किसी पदार्थ की अपने लिए प्रमाणता के लिए अथवा अपने परिवेश के लिए सार्थकता का निर्धारण करता है। पदार्थ का गुण होने के कारण मूल्य की सत्ता वस्तुपरक है किन्तु प्रमाता सापेक्ष होने के कारण व्यक्तिपरक है।”<sup>9</sup>

मूल्य मनुष्य की संवेदनाओं से सीधे सम्बद्ध होने के कारण व्यवहार जगत् में इनका अस्तित्व सुरक्षित है। अतः मूल्यरहित व्यक्ति और समाज की कल्पना अपने आप में निरर्थक है। पाश्चात्य विद्वानों के संबंध में धारणाएँ हैं। जैसे द्विट एच. पारकर के शब्दों में ‘मूल्य सदा अनुभव होता है, वस्तु या विषय नहीं।’<sup>10</sup> A Value is always an experience, never a thing or object.

मैस्लो ने लिखा है - “अवयव स्वयं मूल्यों की वरिष्ठता का निर्धारण करता है। वैज्ञानिक निरीक्षक उसको उत्पन्न करने की अपेक्षा उसकी सूचना देता है।”<sup>11</sup>

भारतीय विद्वानों की तरह पाश्चात्य विद्वानों ने भी मूल्यों को भक्ति के अस्तित्व के साथ जोड़ा है। भारतीय समाज में परंपरा और नये मूल्यों का संघर्ष प्रबलता से अनुभव किया जा रहा है। मूल्य दैविक चमत्कार की भाँति अचानक उत्पन्न नहीं होते, मूल्यों का विकास समाज के साथ हुआ है, मनुष्य बनता है, बिगड़ता है और बिखरता है, समाज में भी उनके साथ परिवर्तन आता है। समय-समय पर अनेक परिवर्तन आये हैं। सामाजिक विघटन के साथ मूल्य टूटे हैं और बने हैं।

### 1.3 मूल्य का विकास

मनुष्य ने मूल्यों की संरचना की। जीवनयापन के लिए मूल्यों के माध्यम से नियम की सृष्टि की गई और उन्हीं का प्रयोग परंपरागत रूप से होता चला गया। जिनके माध्यम से मानव का विकास स्पष्ट होता है क्योंकि युगानुरूप मूल्यों के व्यवहार में परिवर्तन होता रहा। जीवन मूल्यों का विकास वैयक्तिक स्तर से सामाजिक स्तर की दिशा तक हुआ है। समाज अपनी आवश्यकता के अनुसार मूल्यों का निर्माण करता है। परिवर्तन सृष्टि का अनिवार्य क्रम है, अतः नये युग में नये मूल्यों का निर्माण आवश्यक हो जाता है।

समाज में नये मूल्य पुराने मूल्यों को तोड़कर समय-समय पर अपना रूप बदलते हैं। आधुनिक युग में श्रद्धा, आस्था, करुणा, दया आदि भाव कम होने लगे हैं। जो त्रेतायुग, द्वापर युग के मूल्य थे आधुनिक काल में बदल गये हैं। सत्य, अहिंसा, सहअस्तित्व, सहानुभूति इत्यादि सूक्ष्म परंपरागत समाज से प्राप्त होते हुए भी जीवन में उनकी परिणीत उपयोग द्वारा ही विकास हुआ है।

मनुष्य पहले समाज के मूल्यों का अर्जन करता है। व्यक्तित्व के विकास के साथ मूल्यों को अपने जीवन में स्वीकार करने का प्रयत्न करता है। मूल्यों का यह विकास समाज के विभिन्न घटकों द्वारा उभरता रहता है।

मूल्यों का विकास मुख्यतः भारतीय समाज में शिक्षा, परिवार, परिवेश, साहित्य के माध्यम आने वाली पीढ़ियों से विकास मानव मूल्य के आचरण एवं उचित मूल्यों के लक्ष्य एवं आदर्शों का अनुशीलन शिक्षालय में अध्यापकों द्वारा बालक में स्वतः ही उसके विकास काल में होता रहता है। बालक, परिवार, स्कूल में और समाज में जो कुछ ग्रहण करता है, उसी का पक्षपात-निष्पक्षता, विषमता-समता, मिलावट-शुद्धता, बेईमान-ईमानदारी तथा तोड़फोड़-सहायोग की बातें देखता है और सुनता है।

### 1.3.1 शिक्षा के माध्यम

मूल्यपरक शिक्षा मूल्यों पर आधारित शिक्षा है, जिसमें अनौपचारिक रूप से श्रेयस्कर मूल्यों की शिक्षा प्रदान की जाती है। मूल्य परक नैतिक शिक्षा का आयास विस्तृत है नैतिक शिक्षा तो धर्म, कर्म और मानवता के मूल्यों की शिक्षा है। शिक्षा के माध्यम मूल्य के जरिये विद्यार्थी का चरित्र-निर्माण होता है। चरित्रशील विद्यार्थियों द्वारा समाज-कल्याण एवं राष्ट्र-कल्याण। इस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र के निजी उदात्त कल्याण की ओर से विश्व का कल्याण होता है। नैतिक शिक्षा के बारे में महात्मा गाँधी के विचार हैं कि “हृदय की शिक्षा प्रदान करना ही शिक्षा का प्रधान कार्य है और इसी में शिक्षा की सार्थकता निहित है।” शिक्षा मनुष्य के जीवन में विशेष स्थान रखती है। अतः नैतिकताविहीन मनुष्य पशु के समान है। शिक्षक के माध्यम से शिक्षार्थी नैतिक के सात्विक गुणों को सीखता है। विद्यालय में ही अधिक समय विद्यार्थी व्यतीत करता है।

### 1.3.2 परिवार के माध्यम

मूल्यपरक शिक्षा का बीज परिवार में ही पड़ता है, विद्यालय तो उसे पल्लवित करते हैं और समाज के अन्य आभिकरणों जैसे अन्य मीडिया, साहित्य, मित्रमण्डली और वातावरण आदि उसे सात्विक रूप प्रदान कर सकते हैं। बालक का घर और

परिवार ही प्रथम अभिकरण होता है। यह हमारी रुढ़ियों का जन्म स्थान, निष्ठाओं की परिचायिका और सामाजिक संतोष का मुख्य केन्द्र बिन्दु है। बालक की आदतों का सही निर्माण होता है और उनके व्यवहार निश्चित होते हैं। परिवार संस्कृति का मुख्य बिन्दु है। आदर्शों का पालन स्थल एवं निर्माण का स्थल है, परोपकार की भावना को विकसित करने वाला पूर्व विद्यालय और मानव प्रकृति की शिशुशाला परिवार ही माना जाता है।

#### 1.4 मूल्यों का महत्व

समाज में किसी आदत या आचरण को सदियों के बाद भी आचरित होते देखे तो उसे श्रेष्ठ गुण मानना पड़ता है। मूल्यों के विद्यमान होने का मतलब यह है कि वे समाज के अनुभूत नियमों की अभिव्यक्ति के रूप में मनुष्य के मन और हरकत पर फलदायक और शक्तिशाली प्रभाव डाल देते हैं। मूल्य पुरातन काल में ईश्वर के प्रति आस्था और धर्मपरक दृष्टि मानव-मूल्यों के केन्द्रबिन्दु थे। आज के युग में परम्परागत शाश्वत मूल्य एवं परिवर्तित मूल्य में संघर्ष उत्पन्न होता है। मानव कल्याण मूल्यविहीन हो गया है, हर वस्तु को उपयोगिता की दृष्टि से आँकने का प्रचलन हो गया है। उपयोगिता के आधार मूल्य का विवेचन सम्भव नहीं है।

मूल्यों के द्वारा सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक आदि विघटन को रोका जा सकता है। सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है, मूल्यों से सुरक्षा शान्ति एवं प्रगति होती है और अव्यवस्थता रुकती है। इस संबंध में अज्ञेयजी कहते हैं कि - “मूल्यों का प्रश्न केवल आयामों के लिए महत्व रखता है, ऐसा नहीं है। साहित्य के प्रत्येक अध्वेता के लिए वह एक गुरुत्तर प्रश्न है और लेखक के लिए तो उसकी मौलिकता असंदिग्ध है, क्योंकि कृतिकार अपनी कृति का सबसे पहला और सबसे अधिक निर्मम परीक्षक है।”<sup>12</sup>

## 1.5 भारतीय नीति-सम्बन्धी विचार

प्राचीन काल से नीति-सम्बन्धी धारणायें भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रचलित हैं। हिन्दी साहित्य कोश में नीति की परिभाषा इस प्रकार मिलती है - “समाज को स्वस्थ एवं सन्तुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति करने के लिए जिन विधि निषेध मूलक, सामाजिक, व्यावहारिक, आचारिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आदि नियमों का विधान देश, काल और पात्र के सन्दर्भ में किया जाता है, उसे नीति शब्द से अभिहित करते हैं।”<sup>13</sup>

भारतीय सभ्यता की आधार शिला वास्तव में हमारे पुरुषार्थ है। आदर्श जीवन चार पुरुषार्थ पर केन्द्रित है। इस विषय में -हिन्दी कामसूत्र’ में इस प्रकार का परामर्श मिलता है - “भारतीय सभ्यता की आधारशिला चतुर्विध धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं। हमारे अन्तर्गत शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा ये ही चार अंग अनन्त कामनाओं एवं आवश्यकताओं के केन्द्र माने जाते हैं। इन के सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से हुआ करती है। शरीर के पोषण और संवर्द्धन के लिए अर्थ की, मनसंतुष्टि के लिए काम की, बुद्धि के लिए धर्म की और आत्मा की शान्ति के लिए मोक्ष की आवश्यकता है।”<sup>14</sup>

## 1.6 समसामयिक परिस्थिति

समाज में साहित्य के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का इतिहास का ढांचा भी जुड़ जाता है। साहित्यकार इन तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप विकास करता है। जितनी तीव्रता से साहित्य के माध्यम से इतिहास को वाणी दी जा सकती है और किसी भी विधा में उतनी तीव्रता देखने में नहीं आती क्योंकि उपन्यास कहानी में ही किसी भी युग की आधार देशकाल

की परिस्थितियाँ हुआ करती है। साहित्यकार परिस्थितियों से जिस रूप में बाधित होता है उसी को अपने उपन्यास-कहानी आदि में परिवर्तित करता है।

### 1.6.1 सामाजिक परिस्थिति

समाज मनुष्यों का समूह है। इसमें प्रत्येक मनुष्य में आपसी संबंध होने के कारण एक-दूसरे से बंधे रहते हैं। प्रत्येक मानव अपने आत्माविस्तार के लिए, अपनी सुरक्षा व संरक्षण के लिए इस बंधन में बंधे रहता है। पाश्चात्य विद्वान राइट के अनुसार - “मनुष्य के समूह को समाज नहीं कहा जाता, अपितु समूह के अन्तर्गत व्यक्तियों के संबंधों की व्यवस्था का नाम समाज है।”<sup>15</sup> It is not a group of people. It is the system of relationship that exists between the Individual of the group.

डॉ० देवेश ठाकुर ने अनुसार “समाज व्यक्ति-समूह से निर्मित विशिष्ट उद्देश्य से बनाई गयी संस्था है। व्यक्ति-समूह के द्वारा निर्मित और विकसित इस संस्था का विशिष्ट उद्देश्य व्यक्ति समाज की रक्षा, उन्नयन और हित है। यह उद्देश्य व्यक्तिपरक न होकर आवश्यक रूप में सार्वजनिक होता है।”<sup>16</sup>

समाज अपने कार्यविधियों, पारस्परिक सहायताओं, सौहार्द्रता और अनेक समूह एवं श्रेणियों तथा मानव व्यवहार की नियंत्रण की एक समुचित व्यवस्था है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति के संबंधों का अपना एक दायित्व होता है। समाज अपने युग का द्योतक होता है। ऐसी ही सामाजिक संबंधों के बारे में डॉ० हरवंशलाल शर्मा जी का कथन है - “समाज व्यक्तिगत जीवन के संबंधों से बनता है और समाज में रहने वाले मनुष्यों का पारस्परिक संबंध उनके आर्थिक व्यवहारों से प्रकट होता है। वह दूसरों से इसलिए संबंध बनाए रखता है जिससे उसकी आवश्यकताएँ पूरी हों।”<sup>17</sup>

आज स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में धीरे-धीरे पुराने संस्कारों से नये में प्रवर्त हुए जिसके माध्यम से समाज को उसकी खूबियों और खामियों के साथ परखा जा सकता है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार - “कृति के पीछे उसके कर्ता का व्यक्तित्व रहता है, लेकिन साथ ही यह भी पूरी आग्रह के साथ कहा जा सकता है कि कर्ता के व्यक्तित्व के पीछे उसका देश-काल विद्यमान रहता है।”<sup>18</sup>

वैज्ञानिक आविष्कारों और ब्रिटेन की वर्षों की पराधीनता और उसके प्रभाव ने हमारे सामाजिक रहन-सहन और मानव मूल्यों को प्रभावित किया है। मैत्रयी पुष्पा के अनुसार - “सामाजिक विसंगतियों के भयानक जबड़े में फंसा अदना आदमी सदियों से किस हद तक चबाया जा रहा है, यह तो उसी धरती की माटी छूकर, उसके पसीने के स्पर्श से ही अनुभव किया जा सकता है।”<sup>19</sup>

स्वतंत्रता के बाद तीव्रता से होने वाले औद्योगिक विकास ने आर्थिक, सामाजिक क्षेत्र में परिवर्तन लाने में अभूतपूर्व भूमिका निभाई है आज देश ने सामन्ती पूँजीवादी समाज-व्यवस्थाओं को एक साथ पार कर समाजवादी समाज व्यवस्था की स्थापना का लक्ष्य अपनाया है। आज अंग्रेजी शासनकाल में देश के औद्योगिक विकास में भी समाज-व्यवस्था के इस मूल आधार में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं आया।

लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् परिस्थिति में मौलिक अन्तर आया है। स्वतन्त्रता के बाद समाज-व्यवस्था में एक आमूल परिवर्तन का लक्ष्य बना है। समाजवादी समाज व्यवस्था का लक्ष्य। इस समाजवादी अर्थ व्यवस्था में अनेक कष्टों का संघर्ष करना पड़ा है। इस समाज में निहित कुरीतियों ने सामाजिक चेतना को आश्रय दिया। देश में औद्योगिक विकास होने लगा, शिक्षा का प्रचार-प्रसार तेजी से होने, बढ़ने लगा।

“विज्ञान तथा उद्योगों के क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। उत्पादन के साधनों तथा संबंधों में परिवर्तन व विकास के साथ-साथ सामाजिक चेतना भी विकसित



हो रही है, तो दूसरी ओर शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है।” 20

आज हमारे समाज में विज्ञान के नये आविष्कार ने व्यक्ति को पुराने खड़िवादी विचारों से पूर्णतया मुक्त नहीं कर पाये। समाज में मनुष्य ने अनैमिक रास्ते ढूँढ लिये हैं।

## परिवार

समाज में निहित परिवार समाज का ही एक छोटा अंश है। परिवार ही समाज का सुसंगठित रूप से चलाने के लिए प्रेरित करता है। हमारी भारतीय प्राचीन संस्कृति के अनुसार पुरुष वर्ग आजीविका अर्जन करने का दायित्व निभाते हैं और स्त्री वर्ग घरेलू वातावरण की परिधि के अंदर रहकर अपना दायित्व बखूबी निभाती है। इन दोनों के दाम्पत्य सामंजस्य होने से परिवार सुख व शान्ति से जीवन निर्वाह करता है। परिवार में स्नेह, उत्तरदायित्व आप में बंटा रहता है। यह एक विशिष्ट संस्था है। डी. एन. मजूमदार का कहना है “परिवार व्यक्तियों का समूह है जो मूल और रक्त संबंध से जुड़े हुए हैं तथा स्थान, रुचि आर कृतज्ञता का अन्योन्यश्रिता के आधार पर जाति की जागरूकता रखते हैं।” 21

आज परिवार में आधुनिक परिवेश के आधार पर परिवार नई जागृति के साथ अनेक जटिलताओं व कटुता के उतार चढ़ाव में अवतरित हुई है। आज परिवार में पाश्चात्य संस्कृति के घुलने-मिलने के कारण परिवार के सदस्यों के स्वभाव में बदलाव आया है। इसका परिणाम समष्टि परिवार के झुंड अपने स्वार्थ के कारण व्यष्टि में परिवर्तित हुए हैं।

## समष्टि

भारतीय समाज में परंपरागत रूप से संयुक्त परिवार की प्रथा ही चली आ रही है। आजादी के पूर्व भारतीय परिवारों में संयुक्त परिवार का ही बोलबाला था। समष्टि की प्रथा भारतीय समाज में प्रत्येक धर्मावलंबियों में पाई जाती है। एक प्रसिद्ध समाजशास्त्री के मतानुसार - “संयुक्त परिवार वह है जिसमें बहुत से लोग एकत्र रहते हैं जो या तो विवाह सूत्र में बंधे हों या फिर उनका रक्त का संबंध हो या फिर गोद लिये गये हों।”<sup>22</sup>

संयुक्त परिवार के सदस्य अपने संयमन, सहनशील और गंभीर चिंतन-मनन के कारण एक-दूसरे के सहयोगी सिद्ध होते थे। बुजुर्गों की इज्जत व सेवा-सुश्रूषा तहे दिल से करते थे। संतानों की उच्च संस्कार की वृद्धि के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य अपना योगदान देते थे। बच्चों के मानसिक विकास, विधवा, विवाह लायक कन्याओं आदि को संयुक्त परिवार एक सुरक्षित बनाके रहता।

## व्यष्टि परिवार

आधुनिक नगरीय, पाश्चात्य सभ्यता, आधुनिकीकरण, बेरोजगारी, अधिक शिक्षित होने के कारण समष्टि परिवार ने व्यष्टि का अभ्युदय कर दिया। व्यक्ति के बौद्धिक चेतना ने समष्टि परिवार से एकांकी में परिणत कर दिया। ऊँची आकांक्षाओं के जन्म के कारण और उसे साकार करने के लिए लोग अनैतिक मार्ग अपना रहे हैं। अहंवादिता और वैयक्तिक जीवन ने व्यक्तिवादिता को जन्म दिया है। समाज में पैसों का दानव अपने पैरों तले सब कुछ कुचल रहा है। व्यक्ति दोहरा जीवन बीताने लगा है। परिवार के दायित्व को निभाना एक बोझ-सा प्रतीत होने लगा है। आज एकांकी परिवारी में भी स्थिरता नहीं है। माता-पिता अपना दायित्व-बोध बच्चों में नहीं दे पाते हैं। अपनी संतान के प्रति कोई मोह नहीं रहा।

## विवाह

विवाह को सब धर्मों का धर्म, गृह पितृ देवातिथि और सन्तान एवं सर्वधर्मों का मूल माना जाता था। आज विवाह में स्त्री-पुरुष का संबंध नये औद्योगिकरण के कारण कलुषित बनते जा रहे हैं। दाम्पत्य में अस्वस्थता, तनाव, अर्थसंकट, विचार वैमनस्य, अविश्वास, सन्देह आदि विघटनकारी तत्व बन गये हैं। डॉ. पुष्पपाल सिंह के अनुसार - “वर्तमान समाज-व्यवस्था में दाम्पत्य संबंधी भी आज प्रेम संबंधों की उस ऊष्मा से युक्त नहीं हैं जो उससे अपेक्षित है। दाम्पत्य संबंधों के दरकने, टूटने और चुकने के बहुविध कारण हैं। कहीं उसका कारण पति-पत्नी के बीच किसी तीसरे की उपस्थिति है तो कहीं इस उपस्थिति का शक मात्र।”<sup>23</sup>

इस विविध प्रकार की विवाहित घुटनमयी वातावरण से त्रास पाने के लिए उपन्यासकार में अपनी कृतियों में समय अनुकूल सामंजस्यता और समझौता का सुगम मार्गदर्शन व जीवन मूल्यों को चित्रित किया है। हिन्दु विवाह अधिनियम तथा हिन्दु कोड़-बिल प्रवेश हुए हैं जिसके अनुसार वैधानिक तलाक तथा लड़कियों को पैत्रिक संपत्ति में भाग लेने का अधिकार मिला है। इसी प्रकार अस्पृश्यता को कानूनी अपराध करार दिया गया है।

### 1.6.2 आर्थिक परिस्थिति

किसी भी देश या क्षेत्र में सामान्य व्यक्ति के लिए अर्थ को प्रधानता देते हैं। स्वतंत्रता के पूर्व एवं प्राप्ति के पश्चात् मनुष्य को इस आर्थिक परिस्थितियों से जूझना पड़ा है। यह आर्थिक वैमनस्य सदा बरकरार रहेगा। स्वतंत्रता के पहले तक अंग्रेजी सरकार ने कृषि की ओर ध्यान नहीं दिया। इससे गरीबी का दुश्चक्र चलता रहा और प्राकृतिक दृष्टि से सम्पन्न राष्ट्र में गरीब लोग निवास करते रहे। अंग्रेजों के औद्योगिक

विकास ने भारत में नये संस्कारों को पनपने की जगह दी है। देश आर्थिक दृष्टि से जूझने लगा है। आर्थिक विषमता ने गरीबी को बढ़ावा दिया।

*“यहाँ का निम्न वर्ग-श्रमिक तथा लघु किसान - यह अभी तक नहीं समझ पा रहा है कि उनकी निम्न स्थिति उच्च वर्ग द्वारा किए जा रहे शोषण के कारण है।”* <sup>24</sup>

स्वतंत्रता पूर्व कृषकों की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने कृषकवर्ग के शोषण तथा उसके संरक्षण का अवलोकन करते हुए जमींदारी प्रथा ही समाप्त कर दी। नगरीकरण ने लोगों को आकर्षित किया। अधिकांश व्यक्ति शहरों की ओर दौड़ने लगे और अनेक औद्योगिक कार्यक्रम में जुट गये।

*“देश में वास्तविक प्रजातंत्र और सामाजिक न्याय तथा समानता पर आधारित समाज की स्थापना की दिशा में सक्रियता दिखाई गई जिसमें हर स्त्री-पुरुष को व्यक्तित्व विकास के समान अवसर की स्वतंत्रता हो, यह तभी संभव था जबकि प्रजातंत्र से एक कदम और आगे बढ़कर सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों पर ध्यान दिया जाता।”* <sup>25</sup>

देश की आर्थिक विकास में गति लाने के लिए सरकार प्रोत्साहन, निर्देशन और उद्योगों का संरक्षण करने का प्रयास करती है। इस औद्योगिक क्रांति को बढ़ाने के लिए सरकार ने पंच वर्षीय योजनाओं का निर्माण किया।

## आधुनिक परिस्थिति

आर्थिक दृष्टि से भारत में अर्द्ध-सामंती, अर्द्ध-पूँजीवादी व्यवस्था विद्यमान रही है। यहाँ न तो समांती व्यवस्था पूर्ण रूपेण से समाप्त हो पाई है और न ही पूँजीवाद अपने पूर्ण स्वरूप को प्राप्त कर सका है।

आज के युवा पीढ़ी अपने आर्थिक स्वार्थ के लिए, अपने दैनिक ऐशो आराम के कारण हत्याओं में वृद्धि हो रही है। धन के लिए बेटा बाप को, बाप बेटे को,

भाई-भाई को मार देता है। यह बढ़ती हुई जनसंख्या भी युवा पीढ़ी की बेरोजगारी का मुख्य कारण बनी है। परिवार नियोजन के लिए अत्यधिक धन व्यय हो रहा है, परन्तु व्यय के नाम पर व्यय हो रहा है। व्यक्ति के लिए रोटी, कपड़ा और मकान तीन आवश्यकताएँ हैं। तीनों ही अर्थ पर आधारित हैं। खेद की बात है कि आज आदमी की तीनों आवश्यकताएँ अधूरी हैं। आर्थिक विषमता से पीड़ित मनुष्य मानसिक रूप से दुर्बल हो जाता है।

*“देश में दिनों-दिन सुरसा की तरह बेरोजगारी, जनसंख्या और गरीबी का मोह बढ़ता जा रहा है और देश के कर्जाधर हनुमान की बुद्धिबल, करबल, छलबल लगाकर भी किसी पकड़ से नहीं छूट पा रहे हैं।”<sup>26</sup>*

आज के इस आधुनिक परिवेश में व्यक्ति अर्थलोलुपता मनुष्यों के बीच बिखराव स्थापित कर देता है। कहीं भी मानवीयता नहीं रही। हर जगह महंगाई, भ्रष्टाचार, भूखमारी आदि रही है।

### 1.6.3 राजनीतिक परिस्थिति

राजनीति का तात्पर्य है - राज्यों की नीति। प्राचीन भारत की शास्त्रीय दृष्टि के अनुसार राजनीति शब्द का निर्माण संस्कृत के ‘राज’ और ‘नीति’ इन दो शब्दों के योग से हुआ है।

### स्वतंत्रता पूर्व राजनीति परिस्थिति

भारत में सन् 1857 की राजक्रान्ति की असफलता के बाद देश में देशी राज्यों की राज्य व्यवस्था को समाप्त कर अंग्रेजी शासन व्यवस्था पूरी तरह फैल गई थी। अंग्रेज अपनी कूटनीति के बल पर भारत के सम्राट बन गये। साम्रज्ञी

विक्टोरिया की घोषणा ने सारे देश को अंग्रेजी साम्राज्य का एक अड़्डा बना दिया और उस दिन से भारत का एक स्वतंत्र देश के रूप में अस्तित्व समाप्त हो गया।

बंग-भंग ने बंगला भाषा-भाषी जनता को उसकी इच्छा के विरुद्ध दो प्रांतों में बांट दिया था। प्रत्येक प्रांत अन्य राज्य की समस्याओं के आन्दोलनों में अपनी समस्या समझकर एक-दूसरे की मदद कर लेते हैं। सन् 1909 ई० में 'चैम्स फोर्ड बिल' का वैधानिक रूप प्रदान किया। बिल के अनुसार अंग्रेजों के साथ भारतीयों को भी मंत्रीपद प्रदान किये गये।

सन् 1914 ई० में प्रथम विश्वयुद्ध हुआ जिसमें गाँधीजी तथा अन्य भारतीय नेताओं ने इस आशा से उनको सहायोग दिया कि देशवासियों के लिए पूर्व समानता का स्थान प्राप्त हो सके। लेकिन यह आशा निराशा में परिवर्तित हो गई जिसके फलस्वरूप भारतीयों को मिल रोलेक्ट ऐक्ट और उसके विरोध के परिणाम स्वरूप जलियांवाला बाग हत्याकांड। सन् 1913 ई० में मुस्लिम लीग ने स्वराज्य प्राप्त करना अपना उद्देश्य बतलाया। भारत में स्वतंत्रता के पूर्व कांग्रेस और मुस्लिम लीग दो ही प्रमुख पार्टियाँ थी। कांग्रेस के अन्दर ही अनेक विपक्षी पार्टियों का जन्म हुआ।

अंग्रेजों ने भारत में हिन्दू-मुसलमानों के बीच फूट डालना चाहा ताकि स्वतंत्रता ना मिलने का उपाय सोचा। इन दोनों संबंधों में धार्मिक झगड़े हो जायें। इस कारण फूट डालों और शासन करो की नीति में सफल सिद्ध हो गये। सन् 1942 से 1945 के अन्दर 'भारत छोड़ो' आन्दोलन ने खूब जोर पकड़ा। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण सरकार को भारत छोड़ने के लिए प्रेरित किया। इन प्रयत्नों के योगदान का परिणाम 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। अनेक समस्याओं व जटिलताओं का फल स्वतंत्रता मिला। मगर अली जिन्ना के द्वारा हिन्दू और मुसलमान अलग हो गये। इसका नतीजा ही पाकिस्तान का निर्माण हुआ। उषा शर्मा के द्वारा कहे गये वाक्य - "सर सैय्यद अहमद ने हिन्दु-मुसलमानों के बीच

संकीर्णता तथा द्वेष के बीज बोये और मोहम्मद अली जिन्ना ने उन्हें पल्लवित किया। जिसके परिणामस्वरूप भारत के पश्चिमी और पूर्वी भागों में धार्मिक बहुमत के आधार पर पाकिस्तान का जन्म हुआ, भारत विभाजित हो गया।”<sup>27</sup>

अर्थात् स्वतंत्रता पूर्व भी भारत के लोग सच्चे और ईमानदारी से एकत्रित हो के राष्ट्र विभाजन के बावजूद भी अनेक अनैतिक कृत्य को पार करके स्वतंत्रता प्राप्त की है।

### स्वतंत्र्योत्तर परिस्थिति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में अच्छे नेतागण नहीं रहे। गाँधी जी की नृशंस हत्या ने सम्पूर्ण भारत को हिला दिया। भारत के सभी राज्यों में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तहस-नहस होने लगे। मई सन् 1960 को बंबई राज्य की जगह महाराष्ट्र और गुजरात दो स्वतंत्र राज्यों का जन्म हुआ। सन् 1961-62 में दादर-नगर-हवेली-गोवा-दमन-दीव आदि का पुर्तगाली शासन से स्वतंत्र करके भारत में मिला लिया गया। सन् 1962 में माही और पांडिचेरी, फ्रांसीसी चंगुल से मुक्त होकर भारतीय संघ के अंग बने। दिसंबर सन् 1963 में नागालैण्ड की स्थापना हुई। नवंबर सन् 1966 में पंजाब और हरियाणा राज्य सभा के नक्शे पर उभरे। 20 अक्टूबर सन् 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया जिससे भारत का संपूर्ण ढांचा डगमगा गया। क्योंकि सन् 1947 तो अभी पच नहीं सकी थी, देश में स्थिरता भी अभी नहीं आ पाई। स्वतंत्रता के पश्चात् राजनीति राष्ट्र की न होकर व्यक्ति की राजनीति बन गई। भारत में युद्ध के स्थान पर शीत युद्ध चलने लगा। २७ मार्च 1964 को भारत के प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू का निधन हुआ। श्री लाल बहादुर शास्त्री देश के प्रधानमंत्री बने। 26 जनवरी 1965 में संविधान के निर्देशानुसार भारत गणराज्य की राष्ट्रभाषा हिन्दी बन गई। अंग्रेजी का अनिश्चितकाल तक सरकारी

कामकाज में सहभाषा के रूप में बनाए रखने का प्रस्ताव लोकसभा ने पारित कर दिया। सितम्बर 1965 में पाकिस्तान ने भार पर आक्रमण कर दिया जिसमें पाकिस्तान को मुँह की खानी पड़ी।

ताशकंद शान्ति समझौते के उपरांत श्री लाल बहादुर शास्त्री का निधन हुआ तो इन्दिरा गाँधी ने शासन की बागडोर संभाल ली। 1967 ई० में स्थितियों में तीव्रगामी परिवर्तन हुए। नक्सलवादी को मजदूर किसान आन्दोलन का विस्फोट और पंजाबी सूबे का आन्दोलन नदी, जल और सीमा विवाद का आंदोलन और तेलंगाना आन्दोलन, दिसम्बर सन् 1970 में हिमाचल प्रदेश स्वतंत्र राज्य बना। भारत के अधिकांश राज्यों ने संवत् सरकारों का बनना और फिर साम्राज्यवादी वामपंथी शक्तियों में जनता की बढ़ती हुई आस्था इन सब पृष्ठभूमियों में जनता की आकांक्षाएँ कुचलती रही। आम जनता बदलाव की आकांक्षा से बेचैन हो गई और कांग्रेस सरकार उसके आगे घुटने टेकती गई।

*“राजनीति के इस सब घटनाक्रम से एक बात बहुत साफ रूप में उभर कर आती है कि जनता को बहुत देर तक बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता, भले ही राजनीति में सक्रिय न हो, किन्तु वह उधर से आँखें मूंदें नहीं हैं।”*<sup>28</sup>

25 जून 1975 की रात्रि का आपात्काल की घोषणा की गई। आपातकाल ने निर्धन जनता का शोषण हो रहा था। शासक बाह्य रूप से रक्षक थे किन्तु उनके अन्तर्मन में क्रूरता भरी पड़ी थी। सन् 1975 में अनुशासन पर्व की भी घोषणा की गई। नेता अनेक अनैतिक कार्य करते रहे।

*“1975 से 1977 के बीच का शासन आतंक भरा था। आगे चलकर जनता सरकार ने रामराज्य के सपने भले ही दिखायें किन्तु भारतीय गणतंत्र को यथावत् बनाये रखने में भी समर्थ न हो सकी।”*<sup>29</sup>



सन् 1977 से 1979 तक चलने वाला जनता शासन एकाएक लड़खड़ा गया। जय प्रकाश नारायण और मोराजी देसाई की क्रान्ति भ्रांति सिद्ध हुई। जनवरी सन् 1980 के लोकसभा चुनाव में जनता पार्टी का सफाया हो गया। इंदिरा कांग्रेस को प्रचंड बहुमत मिला। देश में अन्याय अधिकतर बढ़ने लगे।

31 अक्टूबर 1984 में श्रीमती इंदिरा गाँधी को मौत के घाट उतार दिया गया। जब-जब नई सरकार आई राजनीति अनैतिकता बढ़ती गयी। देश में अनेक कांडों का निर्माण हुआ। जैसे हवाला, बोफर्स, चारा घोटाला कांड आदि। सम्पूर्ण भारत राजनीतिज्ञों के हाथों कठपुतली बन कर रह गया।

राजनीति में अर्थ समाज और देश व्यवस्था की नीतियों का, सत्ता द्वारा निर्धारण किया जाता है। राजनीतिक नैतिकता का ही व्यापक रूप है। आज जनता के मन की किसी भी नेता या पार्टी दिल जीत न सकी। परन्तु जनता की मांगों की पूर्ति न होने की वजह से जनता भी सदैव इनसे नाखुश ही रही है।

1996 ई० में नक्सलाइयों ने जम्मू कश्मीर के लिए बम ब्लास्ट किया। जनवरी में तमिलनाडु के कृषि उत्पादन में कर्नाटक सहायता से कावेरी नदी की मांग में प्रधान मंत्री वाजपेयी के द्वारा कांग्रेस बाधित हुआ।

इस समय कांग्रेस ने तमिलनाडु का अलग विभाजित कर दिये गये। 11 अप्रैल 1996 में सामान्य चुनाव आरंभ हुए। भारत और बांग्लादेश के बीच गंगा नदी का मुकदमा का समझौता जारी हुआ।

सन् 1997 ई० को नदी का पानी छोड़ा गया। 27 अप्रैल में सी.बी. आई. ने 950 करोड़ के 'फोडर स्कैम' घोटाला में लालू प्रसाद यादव, भूतपूर्ण मुख्यमंत्री जगदीश मिश्रा, वी.एन.एम. चन्द्रादेवी प्रसाद वर्मा और आदि के विरुद्ध मुकदमा चलाने का निर्णय किया है।

28 अगस्त 1997 में कमीशन जस्टीस एम.सी. जैन ने (इंटरीम) राजीव गाँधी सेशन में रिपोर्ट तैयार किया।

14 फरवरी 1998 को कोयम्बतूर में बस ब्लास्ट हुआ जिसमें 9 घंटा पहले भा.ज.पा अध्यक्ष लाल कृष्ण आडवाणी को उस मीटिंग में पहुँचना था।

2000 जनवरी में प्रधानमंत्री वाजपेयी को पाकिस्तान का 'इंडिया एयरलाईन' ऐयरक्राफ्ट का अपहरण करने का आरोप मिला।

5 फरवरी 2001 में 'बोफोर्स कांड' यह सिन्धुजा केस है।

13 मार्च का तहलका कांड आरंभ हुआ।

21 मार्च 2002 को अयोध्या मामला प्रस्तुत हुआ। इसमें हिन्दु मुस्लिम के झगड़े में इलाहाबाद उच्च न्यायलय ने दिनोदिन 'राम जन्म भूमि बाबरी मस्जिद' का शीर्षक रखा।

इसी वर्ष भारत का ग्यारहवें राष्ट्रपति अब्दुल कलाम बने। 21 अप्रैल 2003 का प्रधानमंत्री कश्मीर सात दिन के लिए पन्द्रह साल के बाद घूमने गये जो इतिहास में छापा गया। हमारे भारत के राज्य को देखने के लिए स्वतंत्रता नहीं मिल पा रही है।

15 फरवरी 2004 का 'मोहर छाप' घोटाला हुआ। इसमें राजनीति सत्ता और पुलिस अधिकारी ने मिलकर घोटाला किया। 'अब्दुल करीम तेलगी' ने कहा कि इसमें भूतपूर्व महाराष्ट्र मंत्री विलासराव देशमुख, समाजवादी जनता पार्टी एम.एल.ए. अनिल गोठाले आदि मिले हुए हैं।

15 नवम्बर 2004 कांचीपुरम के शंकराचार्य को उसके भूतपूर्व लेखा 'शंकरामन' को मारने के कारण गिरफ्तार किया गया।

अर्थात् अनेक कांड, घोटाला आदि राजनीति ने सत्ता जनता को चूसने में तैयार है। समाज में घूसखोरी, रिश्वत, भ्रष्टाचार, नौकरशाही, आतंक, हत्याएँ का वातावरण फैला हुआ है। आम जनता का जीवन खतरे में पड़ता जा रहा है। राजनीति

जिससे हम दो चार हो रहे हैं; अगर वही राजनीति है तो यह रानीति लेखक का कितना अपना क्षेत्र हो सकता है। राजनीति केवल 'राज' की ही नहीं होती, सामान्य जन की भी होती है। गिरिराज की 'पेपरवेट' कहानी में कहा है कि 'ईमानदारी और परिश्रमी व्यक्ति का राजनीति में कोई स्थान नहीं है। वे व्यावहारिक स्तर पर आदर्शों को लेकर जी नहीं सकते।' <sup>30</sup> अर्थात् मनुष्य के मानवीयता ही श्रेष्ठ मार्ग बनता है।

#### 1.6.4 धार्मिक व सांस्कृतिक परिस्थिति

##### धार्मिक

समाज विभिन्न परिस्थितियों से गुजरता है। इन अनेक परिस्थितियों में इसकी भी गणना की जाती है। धर्म एक भाव ही है। इस भाव को परिभाषित नहीं किया जा सकता है न ही सीमा में बांधा जा सकता है और न ही इससे मुक्त हुआ जा सकता है।

*“धर्म एक सजीव भावना है, जिसका विकास समाज के विकास के अनुसार होता है। धर्म का कार्य सामाजिक व्यवस्था को सामंजस्यपूर्ण बनाए रखना तथा व्यक्ति की आत्मा का मार्गदर्शन इस प्रकार करना है कि उसे अपनी अंतर्निहित शक्तियों को प्राप्त करने की शिक्षा मिल सके।”* <sup>31</sup>

धर्म पक्षपात रहित भावना है जिसमें किसी प्रकार का वैमनस्य स्वीकार्य नहीं है। राजनीति के साथ जुड़ जाने पर धर्म उतना ही विकृत रूप में समक्ष आता है। राजनीति नीतिपरक होने के कारण मूलरूप से धर्म के विरोध नहीं हो सकता और धर्म नीतिपरक होने के कारण या नैतिकता का पर्याय होने के कारण राजनीति का सहायक हो सकता है। राजनीति जब नैतिकता से हट जाती है तो वह धर्म से कट जाती है और धर्म जब सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप में एक समान नहीं रहता।

“धर्म और राजनीति के दायरे अलग अवश्य हैं पर दानों की जड़े एक ही हैं। धर्म दीर्घकालीन राजनीति है, राजनीति अल्पकालीन धर्म है। धर्म का काम अच्छाई करना और स्तुति करना। राजनीति का बुराई से लड़ना और निंदा करना। जब धर्म अच्छाई न कर केवल स्तुति भर करता है तो वह निष्प्राण हो जाता है और राजनीति बुराई से लड़ती नहीं, केवल निंदा भर करती है। तो वह कल ही हो जाती है। धर्म और राजनीति का अविवेकी मिलन दोनों को भ्रष्ट कर देता है।”<sup>32</sup>

भारतीय धार्मिक व्यवस्था वर्गों में बंटा हुआ है। इस वर्ण व्यवस्था का विकास बढ़ती जनसंख्या एवं सामाजिक हित के अनुरूप में किया गया। इसलिए वर्ण व्यवस्था के आधार पर व्यक्तियों की क्षमताओं का आंकलन करके उनके दायित्वों को सौंपा गया है। इस प्रकार समाज में वर्ण चार भागों में विभाजित किये हैं। - “ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र।”<sup>33</sup> यह वर्ण कर्मों पर ही आधारित है।

स्वतंत्रता पूर्व वर्ण व्यवस्था रुढ़िग्रस्त नियमों से जकड़ी हुई का पालन करती आयी। यह कुटील एवं संकीर्ण व्यवस्था चारों ओर फैली हुई थी। इसी कारण अनेक ऊँच-नीच के भेदभाव, अस्पृश्यता का भाव मनुष्यों को मनुष्य न बना पाई। आज के समाज में हिंसा, हत्या, आगजनी, लूटखसोट आदि फैलने लगे आज धर्म इतना संकीर्ण हुआ है।

“संप्रदायिकता ने समाज को अपने गलीज शिंकजे में जकड़ लिया है। यह बीमारी एक जाती विशेष की न होकर पूँजीवादी व्यवस्था की है जो आदमी के अंदर खूँखार होकर बैठ गई है समाज के विकास में अवरोध उत्पन्न करती है।”<sup>34</sup>

अनेक नेता जैसे गाँधी जी, डॉ० अम्बेडकर और श्रीनिवास ने इस छुआछूत जाति-व्यवस्था आदि की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया। स्वामी विवेकानंद ने भी कहा है - “ईश्वर एक है, वही पूर्ण सत्य तथा सर्वव्यापक है, यह प्रत्येक जीव में

विद्यमान है।”<sup>35</sup> इस प्रकार सभी श्रेष्ठ, महान व्यक्ति जाति-पांति, अस्पृश्यता को तोड़ना चाहते थे।

समाज में स्वतंत्रता - पूर्व चलने वाले अंधविश्वासों, रुढ़िग्रस्त एवं कुसंस्कारों को ब्रह्म, आर्य आदि सुलझाना चाहा। अंग्रेज के आने के पूर्व भारतवासियों के जीवन में धर्म का अत्यधिक महत्व था। यही धर्म समाज में जाति-व्यस्था, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध आदि कुप्रथाओं का चलने लगा। पाश्चात्य शिक्षा व आदर्शों ने भारतीय समाज सुधारकों को इस ओर क्रियात्मक कदम उठाने के लिए प्रेरित किया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती 19वीं शताब्दी के सबसे बड़े भारतीय समाज सुधारक थे। हिन्दु जाति में निहित अनेक दुर्बलताओं को दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहे। इसी का रूप है आर्य समाज। इसमें स्त्रियों का शिक्षणालय एवं अनाथालय चलाने की प्रवृत्ति को ग्रहण किया। इसमें दलितोद्धार, जाति-पांति के भेदभाव, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि का उन्मूलन किया। “सब मनुष्यों के हितार्थ आर्य समाज का होना आवश्यक है, आर्य समाज का उद्देश्य सब मनुष्यों का हित करना है।”<sup>36</sup>

इस प्रकार समाज में कुरीतियों को दूर करने के लिए आर्य, ब्रह्म समाज आरंभ हुए। इसके अतिरिक्त अन्य समाज सुधारक भी प्रवेश हुए जो हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए अनेक धार्मिक आन्दोलन चलाये।

आज समाज में धार्मिक पाखंडियों का बोलबाला है। धर्म के नाम पर अनेक बुरे कर्म होने लगे। धार्मिक अनुष्ठानों के नाम पर बालाओं को फंसाना, ढोंगी-पाखंडी साधुओं का निर्माण होने लगा। ये पाखंडी देश को खोखला बना रहे हैं। आज यह धार्मिक रुढ़िग्रस्त विचार औद्योगिकरण के कारण ऊँच-नीच का भेदभाव रखने लगा अन्तर्जातीय विवाह अधिक होने लगे।

आज समकालीन युग में पुरातन परंपराओं और मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन हुआ। आज पूरी तरह स्वतंत्रता के पश्चात् भी समाज में जातिभेद अभिशापों से मुक्त नहीं हो पाये।

## सांस्कृतिक

आस्था और विश्वास को ही संस्कृतिक का नाम दिया जा सकता है। संस्कृतिक संस्कारजनित होती है। संस्कृति मनुष्य को प्रभावित करती है और वह अपनी विचारधारा बनाता है। संस्कृतिक और परंपरा द्वार प्रदत्त मूल्यों का भी प्रयोग और विकास होता है। यह मन को, हृदय को तथा उनकी कृतियों को संस्कार के द्वारा सुधारना तथा उदात्त बनाना ही अच्छे संस्कार का रूप है। संस्कृति में ज्ञान, संस्कार, विश्वास, कला, आचरण, कानून, समाज की प्रथाएँ इत्यादि सम्मिलित हैं।

भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से चली आ रही है। जीवन मूल्य का अर्थ ही मनुष्यों का अच्छे संस्कार से है। स्वतंत्रता पूर्व भारतीय संस्कृति में खान-पान, आचार-विचार, रहन-सहन आदि में अलग थे और अब अलग बनते जा रहे हैं। पहले स्त्रियाँ अपने घर से बाहर नहीं निकलती। परिवार में भयभीत होकर घर की चार दिवारों में ही अपनी कलाओं व इच्छाओं को दबाती थी। मगर स्वतंत्रता के बाद अनेक संशोधन हुए हैं।

अंग्रेजों के आगमन के बाद से भारतीय संस्कृति में पाश्चात्यों का व्यवहार का प्रभाव हुआ है। आज स्त्री-पुरुष खुलमखुल्ला एक साथ बाहों में हाथ डालकर चल रहे हैं। स्त्रियों ने फैशन के नाम पर अपनी वेशभूषा ही बदल ली है, अपने पहनावे, ओढ़ावे में भारतीय नहीं रही। अश्लील पहनावा को ओढ़ रही है। स्त्री अपनी संस्कृति के मूल्य को भूल रही है। आज के शिक्षा प्रसार ने मनुष्य के दृष्टिकोण को ही बदल दिया। आज मनुष्य झूठे आडंबर जीवन का सहारा लिये हुये हुई है। अपनी मातृभाषा

का प्रयोग करना भी हेय समझने लगे हैं। अंग्रेज तो चले गये मगर उनकी संस्कृति छोड़ गये।

### 1.7 मूल्यों का वर्गीकरण

देशकाल के परिपेक्ष्य में जीवन के विभिन्न स्तरों में अन्तर घटित होता रहता है जो मूल्यों की प्रवाहमानता में विघटन उपस्थिति करता है। मनुष्य नयी-नयी आधुनिकता प्राप्त करता चलता है और उसका पिछला जीवन परम्परा में जुड़ता चलता है। जीवन के समानान्तर ही मूल्यों में भी यही क्रम चलता है। स्थूल दृष्टि से मूल्यों के पारम्परिक और आधुनिक दो भेद किये जाते हैं। ये दोनों मूल्य युगानुरूप मानव चेतना अर्थात् भौतिक जीवन और इतिहास संस्कृति तथा दर्शन के विशिष्ट लक्षण होते हैं।

मूल्यों के संबंध में वर्गीकरण को लेकर कई प्रकार के मतभेद हैं। स्वरूप के आधार पर इन्हें कुछ इस प्रकार बाँटा जा सकता है। आर्थिक मूल्य, शारीरिक मूल्य, चारित्रिक मूल्य, कलात्मक मूल्य, बौद्धिक मूल्य तथा धार्मिक मूल्य आदि।

कुछ विद्वानों के अनुसार मूल्य दो विभागों में बाँटा जा सकता है। - आंतरिक एवं बाह्य मूल्य है। रामशंकर मिश्र के अनुसार - “बाह्य मूल्य जीवन की व्याख्या करने में असमर्थ रहते हैं। आंतरिक मूल्यों का चयन जीवन की यथार्थता के आधार पर होना चाहिए तभी जीवन की व्याख्या होना संभव है।”<sup>37</sup>

स्टेड्स ने मूल्य के दो प्रकार बताए हैं - आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ।

“किसी मूल्य को हम आत्मनिष्ठ कहेंगे। यदि उसकी सत्ता पूर्णतः अथवा अंशतः किन्हीं मानवीय इच्छाओं, संवेदनाओं, सम्मितियों अथवा दूसरी मनोदशाओं पर निर्भर रहती है। किन्तु वस्तुनिष्ठ मूल्य इसके विपरीत होगा। वह एक ऐसा मूल्य होगा जो मानव की किसी इच्छा, संवेदना अथवा दूसरी मनोदशाओं पर निर्भर नहीं करता।”<sup>38</sup>

इन दोनों का संबंध मानवेच्छा से है। इन दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। क्योंकि संवेदना और सृजन आत्मनिष्ठता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। योगेन्द्र सिंह ने मूल्यों के तीन प्रकार बताए हैं - रुढ़ या स्थिर मानव मूल्य, विकसित या स्थायित्व प्राप्त मानव मूल्य तथा विकासशील या नए मूल्य। ये मूल्य वर्गीकरण इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि - “*वैचारिक प्रक्रिया के किसी संदर्भ से मनुष्य जुड़ता, किसी का बहिष्कार करता है और निरंतर संक्रमित रहता है। इसीलिए मूल्य भी संक्रमित रहते हैं। स्थिर, मानव मूल्यों की दशा में व्यक्तित्व का जीवन बड़ा सरल रहता है। स्थायित्व प्राप्तिकाल में व्यक्ति वर्तमान से असंतुष्ट महत्वाकांक्षी या भूत के प्रतिमोह व आस्थावान या फिर संशयशील रहता है। विकासशील सन्दर्भ में व्यक्तिनिष्ठा प्रधान रहती है।*”<sup>89</sup>

मूल्यों में परिवर्तन सहसा या एक झटके के साथ नहीं होता, किसी घटना या चमत्कार की तरह नहीं होता। यह विज्ञान और संस्कृति के प्रभाव के कारण रहन-सहन में परिवर्तन होता है। मूल्यों की जीवन के भौतिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक अथवा आध्यात्मिक स्तरों पर आवश्यकता रहती है।

### 1.7.1 सामाजिक मूल्य

सामाजिक मूल्य की मूल प्रकृति उसकी समष्टिवादिता है। यह संपूर्ण लोक को एकत्र करने में समर्थ रहता है। इसके अन्तर्गत एक व्यक्ति की अपेक्षा समग्र समाज को एक इकाई के रूप में देखता है। समाज मानव का प्रारम्भिक स्वरूप ही थे। समाज में मनुष्यों के संगठन का ही दूसरा नाम है। जब कभी दो या दो से अधिक मनुष्य संगठित होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, उन्हें एक सामाजिक समुदाय के निर्माता कहा जा सकता है। यह जगत मूल्यों से भरा पड़ा है।



मनुष्य समाज में रहकर एक-दूसरे के सहयोग से ही अपने समस्त कार्य सिद्ध कर सकता है। वह अपनी इच्छा से बहुत से कार्य कर तो सकता है परन्तु उनके प्रयोग के लिए समाज का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है। और यही वैयक्तित्व और सामाजिक मूल्यों का समभाव है। अतः मूल्यों के बिना जीवन, जीवन ही नहीं है। समाज में सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि के बिना मनुष्य का अस्तित्व ही नहीं है। सम्पूर्ण मानव-समाज कल्याण के लिए इन मूल्यों का संरक्षण आवश्यक है।

### 1.7.2 आर्थिक मूल्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जनता ने अपने लिए अच्छे दिनों के जो सपने संजोये थे वे शीघ्र ही टूटते चले गये। दसवें दशक तक पहुँचते-पहुँचते आम आदमी की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई। अर्थ जीवन की धूरी बन गया और अभावों ने उसके जीवन को घोर निराशा से भर दिया। प्रत्येक युग का सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन किसी सीमा तक आर्थिक मूल्यों से जुड़ा है। अर्थ पर ही समाज का विकास आधारित है। अर्थ केन्द्रित समाज में जन-जीवन के उतार-चढ़ाव का कारण अर्थ ही होता है। आजादी प्राप्त होने के बावजूद भी अर्थ व्यवस्था पर पूँजीवादी का क्षेत्र विस्तार हो गया है। इससे जनसाधारण की आर्थिक विषमता बढ़ती गयी। गरीबी हटाओ और समाजवादी के घोष उठाने पर भी जन-असन्तोष को शान्त करने में असफल सिद्ध हुए। इससे बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी का शिकार बन जाते हैं।

भारतीय दर्शन के अनुसार अर्थ का मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया है। डॉ० राधाकृष्णन भी अर्थ को जीवन के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं। मगर इस जीवन मूल्य का उद्देश्य केवल वैयक्तिक लाभ न होकर लोक मंगल होना चाहिए। वे इस सन्दर्भ में कहते हैं - “आर्थिक उपादान (साधन) मानव जीवन का एक अत्यावश्यक तत्व है।

सम्पत्ति में स्वतः कोई पाप नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे गरीबी में स्वतः कोई पुण्य नहीं है। किसी व्यक्ति के अपनी सम्पत्ति को बढ़ाने के प्रयत्नों से दूसरों लोगों को आर्थिक या नैतिक हानि पहुंचती हो तो सवाल पैदा होता है कि क्या ऐसे उपायों से सम्पत्ति एकत्रित करना, इसमें हिन्दु शास्त्र में कहा है कि उसका उद्देश्य वैयक्तिक लाभ न होकर समाज सेवा होना चाहिए।”<sup>40</sup>

भारतीय दर्शन के अनुसार मानव जीवन के चार पुरुषार्थ में से अर्थ भी एक है और हमारे यहाँ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की सिद्धि ही मानव जीवन का लक्ष्य माना गया है। भारतीय चिन्तकों ने इन चारों पुरुषार्थों में ‘अर्थ’ को सर्वोपरि दर्जा दिया नहीं। अर्थ महत्वपूर्ण होते हुए भी ‘साधन’ ही रहा, साध्य नहीं। फिर भी अर्थ को ज्यादा महत्व प्राप्त हो गया है। मजदूर, किसान एवं मध्यवर्गीय परिवार आर्थिक शोषण के शक्तिशाली शिंकजे में फंसे नाली के कीड़े की तरह रेंगते हुए एक दयनीय स्थिति को पहुँचते जा रहे हैं।

अर्थ की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा ने हमारे बीच एक स्पर्धा की स्थिति पैदा कर ली है। अधिकांश लोग अच्छे बुरे तरीकों से धनराशि इकट्ठा करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। हमारे चारों ओर भ्रष्टाचार की नदी बह रही है। अर्थ के कारण अमीर और गरीब के बीच की खाई बढ़ती गई है। परिणामतः सभी मनुष्य अर्थ के लिए सभी मूल्यों को कुचलता जा रहा है।

### 1.7.3 राजनीतिक मूल्य

राजनीति राजधर्म कही जा सकती है क्योंकि धर्म शुभ की रक्षा के लिए होता है। नीति नियामक होती है। राजनीति में नीति के अंतर्गत मूल्य स्वतः समाहित हो जाते हैं। राजनीतिक मूल्यों के माध्यम से व्यवस्था स्थापित की जाती है। जिसमें स्वतंत्रता और समानता की रक्षा निहित है। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी’

कहकर मातृभूमि का सम्मान किया जाता था। सभी की अपेक्षा थी कि गाँधी जी ने जिस रामराज्य के स्पन् देखे थे, उसके दर्शन स्वतंत्र भारत में होंगे तथा देश भौतिक और आध्यात्मिक दोनों रूपों में समृद्ध बनेगा।

जैसे -

इसी बात के थे वे इच्छुक

रहे राज्य में सुखी सभी

हो न सके निज अधिकारों से

वंचित कोई कहीं कभी<sup>41</sup>

राजनीतिक दृढ़ता में ही सभी क्षेत्रों का विकास समविष्ट हो जाता है। जब भी राजनीतिक भ्रष्टता उत्पन्न होती है तब ह्रास, विनाश, अवनति और भ्रष्टता उत्पन्न होती है। राष्ट्रों का विघटन होता है। इस प्रकार राजनीति का विघटन या शिथिलता होता है। नैतिकता के सभी मूल्य ध्वस्त कर देते हैं। राजनीतिक का उद्देश्य तो मानव का हित चिन्तन है। सत्ता के नीति निर्वाह में भ्रष्टाचार और दुश्चरित्रता के संरक्षण एवं अपराध जनजीवन में सहायता और असुरक्षा की भावना भर दी। सैद्धांतिक दृष्टि से तो राजनीतिक में मानव मूल्यों की सारी व्यवस्था निहित होती है। मगर व्यावहारिक दृष्टि से मूल्यों में सत्ता के तंत्र के द्वारा राजनीति में हनन होता है।

व्यंग्य लेखक हरिशंकर परसाई ने लिखा है कि - “वास्तव में यह दौर राजनीति के मूल्यों की गिरावट का था। इतना झूठ, फरेब, छल पहले कभी नहीं देखा। दगाबाजी संस्कृति, दो मुँहपन नीति। बहुत बड़े-बड़े व्यक्तित्व बौने हो गये। श्रद्धा सब से टूट गयी, आत्मपवित्रता के दम्भ के इस राजनीतिक दौर में देश के सामाजिक जीवन में सब कुछ टूट सा गया। भ्रष्ट राजनीतिक दौर के संस्कृत ने अपना असर सब कहीं चला। किसी का किसी पर विश्वास नहीं रह गया, न व्यक्ति पर, न संस्था पर, कार्यपालिका, विधायिका और न्यायापालिका का नंगापन प्रकट हो गया। श्रद्धा का

भी दौर था सरकार बदलने के बाद स्थितियाँ सुधरी नहीं। गिरावट बढ़ रही है। किसी दल का बहुत अधिक सीटें जीतना और सरकार बना लेना लोकतन्त्र की कोई गारन्टी नहीं है। लोकतान्त्रिक स्पिरिट गिरावट पर है।”<sup>42</sup>

राजनीतिक मूल्यों में परिवर्तन से अन्य सभी तंत्र प्रभावित होते हैं, विशेष तौर पर अर्थ व्यवस्था और जनसाधारण का सीधा संबंध अर्थ से है क्योंकि रोटी, कपड़ा और मकान तीनों अर्थ पर निर्भर करते हैं। आर्थिक विषमताओं के कारण मानव-मूल्यों का सबसे अधिक हनन होता है। राजनीतिक जागरूकता के बाद भी आज हमारे समाज का अधिकांश भाग आज भी समस्याओं और रुढ़ियों से बुरी तरह ग्रसित है।

#### 1.7.4 धार्मिक एवं सांस्कृतिक

##### धार्मिक

मनुष्य का धर्म वह है जो प्रकृति के साथ तालमेल रखने का काम है। धर्म वही है जो प्रकृतिक के अनुकूल हो और अधर्म वही जो प्रकृति के विरुद्ध हो। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के अपने कुछ नियम होते हैं। इन निश्चित नियमों के अनुसार वस्तु की गतिशीलता निर्भर रहती है। इसी को उस वस्तु का धर्म कहा जाता है। धर्म का अर्थ धारण करने से हैं। इसी को ‘धृ धारणपोयोः’ कहा गया है। अर्थात् वस्तु कुछ विशिष्ट तत्वों को धारण किये रहती है। इसी वस्तु के स्वभाव ही उस का धर्म है। ‘वस्तुस्वभावो धर्मः।’

मनुष्य निश्चित सीमाओं से हटकर रहना उनका अस्तित्व मिट जाता है। निश्चित सीमाओं में रहकर ही गतिशील होना ‘मूल्य’ कहे जाते हैं। गतिशील स्वभाव को उसका धर्म ही कहा गया है। स्वभाव या धर्म पर ही गतिविधि निर्भर रहती है। अर्थात् धर्म की उपज है : मूल्य। धर्म का स्वभाव ‘धारण’ से है, और मूल्य का संबंध ‘आचरण’ से है।

मनुष्य के असामाजिक वृत्तियों पर नियन्त्रण रखकर मानव-मर्यादा की स्थापना करता है। जीवनोन्मुख धर्म व्यक्ति को नयी दिशा देता है और मूल्यों के विघटन को रोकता है। हृदय की पवित्रता और उदारता, चित की शान्ति, मनुष्य के गुणों के विकास में सब का कल्याण सद्वृत्ति करता है धर्म को संस्कृति से जोड़कर देखा गया। संस्कृति और धर्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इन दोनों का उद्देश्य है मानव का परोपकार, और शरीर की ओर शुचिता, स्वच्छता, धर्म है - इन्द्रियों का संयम। विद्या और बुद्धि से युक्त होना दूसरों के प्रति क्षमा और दया, प्रेम तथा करुणा का भाव रखना।

आधुनिक युग में धर्म शब्द का प्रयोग जाति और सम्प्रदाय इत्यादि के अर्थ से संकीर्ण हो गया है। अंग्रेजी 'रीलीजन' का पर्यायवाची बन गया है। धर्म का धारण व्यष्टि मूलक है। अतः धर्म रिलीजन नहीं है, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता रिलीजन में धर्म के तत्वों का एकदम अभाव है। आज जातियों के सन्दर्भ में प्रयुक्त होने के कारण धर्म कभी-कभी मूल्यहीनता का बोध देता है।

प्राचीनकाल में धर्म के दो स्तरों पर व्याख्या की जाती है। धर्म का जाति एवं सम्प्रदायगत संकीर्णता के रूप में प्रयोग किया जाता है, उसमें अध्यात्मिक और दैवीय शक्ति के महत्व का भी प्रयोग हुआ है। अन्धविश्वासों ने मोक्ष अथवा आध्यात्मिक की प्राप्ति के लिये धर्म को भौतिक आवश्यकताओं से भिन्न ईश्वरीय शक्ति को प्रसन्न करने के लिए 'साधना' के रूप प्रतिष्ठित कर दिया है। अर्थात् धर्म में निहित कर्तव्य-भावना और मनुष्य की भौतिक सुरक्षा का भाव समाप्त होता चला गया और धर्म मानव-मात्र की कल्याण भावना से विमुख होता चला गया।

जे. फ्रेजर के अनुसार - "धर्म से अभिप्राय है कि वह उन शक्तियों को प्रसन्न और अनुकूल करने का प्रयत्न है जिनके बारे में यह विश्वास है कि वे मनुष्य से ऊँची हैं। मनुष्य तथा प्रकृति की प्रगति पर नियंत्रण रखती हैं।" <sup>43</sup>

धर्म तो मानव जाति की सर्वोत्तम उपलब्धि है। मानव मात्र की आत्मा में ईश्वर का निवास है। यही आध्यात्मिकता का मूल मंत्र है। धर्म मानवीय शक्ति के दुरुपयोग पर नियंत्रण करने का साधन है। धर्म मनुष्य को प्रेरित, उत्सुक और जीवन की यात्रा है। इसका सम्बन्ध जीवन मूल्यों से है, मनुष्य को सुसंस्कृत बनाता है। धर्म अविवेक को पराजित करने वाला चरम मूल्य है। धर्म-कर्म की विधि है, साथ ही विश्वास की संस्था भी। “धर्म को धारण करने से ही धर्म कहते हैं। धर्म प्रजा की धारणा करता है। जो धारण के साथ बहे वह धर्म है - यह निश्चय है।

*धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयतेप्रजाः*

*यत स्यादरण संयुक्त सधर्मद्वति निश्चतः॥” 44*

धर्म मो मनुष्य धारण करता है तो जीवन व्यवस्थित करता है। यही मानव जीवन की स्थिति, गति और रक्षा का आधार होने के नाते अत्यन्त मूल्यवान और श्रेयस्कार है।

## सांस्कृतिक

मानव की सामाजिक अथवा भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद उसका सांस्कृति स्तर का जीवन प्रारम्भ होता है। ‘संस्कृति शब्द का अर्थ है मन को, हृदय को तथा उनकी वृत्तियों को संस्कार के द्वारा सुधारना तथा उदात्त बनाना।’ संस्कृति मनुष्य के ऐसे संस्कारों का समन्वय है जो उसकी प्रवृत्तियों, उसकी प्रकृति तथा जीवन-दृष्टि का परिष्कार करते हैं। सामान्य मानव-प्राणिमात्र से विशिष्ट या संस्कारित सुसंस्कृत मनुष्य बनने की प्रक्रिया संस्कृति से ही परिचालित रहती है।

संस्कृति विचारों की दुनिया है। पूजा, धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, सामाजिक, संगठन उसकी मंजिलें हैं। हमारे रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार, विश्वास, चिन्तन-मनन, नैतिक-अनैतिक आचरण सबको इसमें सम्मिलित किया है। समाज में मनुष्य का जीवन

इन्हीं गुणों से पता लगा सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य को उसकी सांस्कृतिक परिवेश (अथवा पर्यावरण) जन्म से मिलता है, कुछ ज्ञान से, पीढ़ियाँ कालान्तर से अपने आप को परिवर्तन कर लेता है।

पंडित नेहरू जी के अनुसार - “संस्कृतिक का अर्थ मनुष्य का भीतरी विकास और उसकी नैतिक उन्नति है। एक दूसरे के साथ सद्व्यवहार व समझने की शक्ति है।”<sup>45</sup>

काका कालेकर ने कहा - “हजारों और लाखों वर्षों के उस पुरुषार्थ से मनुष्य जाति ने जो कुछ भी पाया वही उसकी संस्कृति है।”<sup>46</sup>

मूल्य मानव-साक्षेप होते हैं। विवेक और बुद्धि द्वारा अर्जित व्यवहारिक और प्रयुक्त होने के कारण जीवन के लिए मूल्यों और संस्कृति की अनिवार्यता असंदिग्ध है।

डॉ० देवराज के अनुसार - “किसी व्यक्ति की संस्कृति वह मूल्य चेतना है जिसका निर्माण उसके संपूर्ण बोध के आलोक में होता है। सांस्कृतिक मूल्य चेतना भी है तथा चेतन भी। यह यथार्थ तथा संभाव्य को अर्थवत्ता के रूप में ग्रहण करती है। मनुष्य लगातार जीवन की नई संभावनाओं का चित्र बनाता है, यही मूल्य है; जिसके लिए वह जीवित रहता है। उसकी गरिमा और सौन्दर्य उस मनुष्य के सांस्कृतिक महत्व का माप प्रस्तुत करते हैं।”<sup>47</sup>

संस्कृति समग्र जीवन का पर्यायवाची शब्द है। जीवन की भौतिक आवश्यकताओं के लिए उपयोगी सृजनशीलता के रूप में संस्कृति सभ्यता कहलाती है। और जीवन की निरुपयोगी अर्थवान् सृजनशीलता के रूप वह केवल संस्कृति कहलाती है।

सभ्यता साधनात्मक मूल्य हैं। यह मानव मात्र को सामाजिक भी बनाया है और मूल्य भी दिये हैं तथा से जाति, पद-श्रेणी आदि के भेदों के रूप में मूल्यहीनता और कभी अमानवीयता को भी जन्म दिया है। सभ्यता सांस्कृतिक का एक अंग प्रमाणित होती है। क्योंकि मानव की समस्त उपलब्धियाँ संस्कृति में ही आ जाती है। “सभ्यता

की उपलब्धि के पश्चात् संस्कृति विकसित होती है। संस्कृति सभ्यता की मूलभूत है। सभ्यता द्वारा अस्तित्व की समस्या और दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ती किये जाने पर ही संस्कृति प्रदुर्भूत हुई है।”<sup>48</sup>

संस्कृति मनुष्य को उत्कृष्ट बनाने के लिए बहुत कुछ ऐसा प्रदान करती है जिससे व्यक्ति के स्वार्थपरक विचारों में आमूल परिवर्तन हो जाता है और उसके मानवीय गुणों का विकास होता है। तब मनुष्य अपने वातावरण को सुसंस्कृत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। परिणामतः सांस्कृतिक मूल्य में परिवर्तन, संशोधन हो जाता है। संस्कृतिक कुल मिलकर महत्तम मूल्य है। जीवन के सभी कार्य और संभावनाएँ निहित हैं। उसमें मनुष्य का सम्पूर्ण बोधा होता है। “संस्कृति शिक्षित मानव व्यवहार रूपों का समनव्य है।”<sup>49</sup> “Culture is sum total of learned behaviour patterns” प्रत्येक राष्ट्र की निर्धारित सांस्कृतिक मान्यताएँ होती हैं जिनके द्वारा वह अन्य राष्ट्रों को प्रभावित करता है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान से सौहार्द एवं सामंजस्य बढ़ता है। परिणामतः वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना परिवर्तित होती है। जीवन मूल्य संस्कृति काल-क्रम की श्रृंखला न होकर काल के माध्यम से कालातीत होती है।

### 1.8 आधुनिक मूल्यों का संक्रमण

जब किसी युग और समाज में अन्यन्य कारणों से मूल्यों के प्रति अनास्था निर्माण हो जाती है, तो पुराने मूल्य तो टूटकर बिखर जाते हैं और आस्थाहीन समाज नये मूल्यों को भी सहजता से नहीं अपना पाता। तब मूल्य में संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। आधुनिक संकट की प्रकृति का निरूपण करते हुए यह स्पष्ट किया है कि यह केवल आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक संकट नहीं वरन्-जीवन के मौलिक प्रतिमानों का संकट है।



आज का सर्वाधिक ज्वलंत प्रश्न, मानव-मूल्यों के विघटन, संरक्षण और उनके पुनर्मूल्यांकन से संबन्धित है। आज के आधुनिकरण युग में मनुष्य की तार्किक बुद्धि परंपरागत जीवन-मूल्यों का अंधानुकरण कर दिया है। यह प्रक्रियामूल्यों में सहजात संबंध है। आधुनिककाल में पुराने तथा पुरानी मान्यताओं और मूल्यों के बीच टकराहट होती रहती है।

आज के वैज्ञानिक शक्ति से पूर्व मनुष्य अपनी ही शक्ति सामर्थ्य और पराक्रम पर आस्था या, उसी के अनुसार जीवन निर्वाह करता था।

डॉ० महावीर दधीच के अनुसार “वैज्ञानिक प्रगती ने प्राचीन धर्म दर्शनजन्य मूल्यों का नाश तो किया, किन्तु मानव जाती को निश्चित मूल्य नहीं दिए। मनुष्य को बाहरी पक्ष अर्थात् शरीर, व्यक्तित्व और समाज का स्थानीय केन्द्र बन गया। मनुष्य को विवेकी और सामर्थ्यवान बनाकर उसे अविवेकी और अशक्त साबित किया।”<sup>50</sup>

मनुष्य अपने अस्तित्ववाद चिंतन के कारण ही रूढ़िवादी मान्यताएँ समाप्त कर नए नैतिक मूल्यों का जन्म हुआ। उसके साथ स्पष्ट हुआ है कि सृष्टि प्रयासों और विचारशील चयन से ही कर्म का निर्माण किया जा सकता है।

एच. मास्लो के अनुसार - “मूल्य मनुष्य के अस्तित्व संबंधी स्थितियों के मूल में होते हैं। इसलिए इन दशाओं का ज्ञान तथा मनुष्य की स्थिति का परिचय हमें इन मूल्यों के सृजन की ओर ले जाता है जिनमें वैषयिक यथार्थता होती है। यह यथार्थता केवल मनुष्य के अस्तित्व के साथ ही रहती है। उसके बाहर उसका कोई मूल्य नहीं।”<sup>51</sup>

इस मशीनीकरण के कारण मनुष्य एक वस्तु बनकर रह गया जबकि वह अपनी क्षमता को सृजनात्मक ढंग से कर्ममय जीवन तक चारितार्थ करना चाहता है। मानव-मानव के बीच अंतर बढ़ता जा रहा है और व्यक्ति अत्यंत आत्मकेन्द्रित तथा आत्मनिर्वासन होता जा रहा है। मशीनी सभ्यता ने मनुष्य और उसके जगत के बीच

अलगाव और विसंगति खड़ी कर दी। इसका परिणाम मूल्य विघटन जो प्राचीन काल से हो रहे हैं। इस विषय में डॉ. धर्मवीर भारती ने कहा है - “समस्त मध्यकाल में इस निखिल सृष्टि और इतिहास-क्रम का नियंतक किसी मनोपरि अलौकिक सत्ता को माना जाता है। समस्त मूल्यों का स्रोत वही था और मनुष्य की एकमात्र सार्थकता रही थी कि वह अधिक से अधिक उस सत्ता से तादात्म्य करने की चेष्टा करें।”<sup>52</sup>

मूल्यों के संक्रमण के कारण मानवीय संकटबोध का अनुभव कर रहा है। इस वैज्ञानिक युग जिससे हम प्रगति, सुरक्षा, समृद्धि और मुक्ति की आशा करते थे, हमें अस्तित्व संबंधी असुरक्षा, कुंठा, मानसिक तनाव और युद्ध की विभीषिका देने में समर्थ हुए। इस बदलते युग में मूल्यों के बीच मनुष्य की समस्याओं का समाधान कर नहीं पा रहा। यह बदलते संघर्ष भारत के सामाजिक क्षेत्रों में सबसे अधिक मुखरित होती है। अर्थ के प्रति अत्याधिक मोह के कारण पुरुष अपनी पत्नी के अस्तित्व को विस्मृत कर उसे अपनी तरक्की का साधन बनाता है।

मूल्य से ही समाज की गतिविधियाँ निर्धारित और नियंत्रित होती हैं। यदि हम राजनैतिक क्षेत्र में दृष्टि डालें तो आज का विश्व, राजनीति के हाथ की कठपुतली मात्र बनकर रह गया है। देश के चारों ओर भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, जातिवाद का नारा बुलंद हो रहा है। “राष्ट्र का समस्त परिवेश एक तरह के कैंसर वार्ड में बदल गया है।”<sup>53</sup> वर्तमान वैज्ञानिक युग में बिगड़ती अर्थव्यवस्था और परिवर्तन के बीच गुजरती भ्रष्ट राजनीति के बीच राष्ट्र टूटकर भी अटूट बने खड़े हैं। परन्तु वर्तमान राजनैतिक प्रणाली इतनी दूषित एवं कलुषित हो गई है कि स्वार्थ राजनीतिज्ञों की बाढ़ सी आ गई है।

भारतीय समाज में धर्म और समाज के क्षेत्र में सुधारवादी दृष्टिकोण प्रविष्ट हुआ, आर्थिक क्षेत्र में भौतिकवादी और राजनीति के क्षेत्र में स्वाधीनतावादी चेतना ने जन्म लिया। औद्योगिकरण विकास के कारण उद्योगों के निर्माण, सार्वजनिक क्षेत्र के

निर्माण व विस्तार समाजवादी देशों से सहयोग तथा अंतराष्ट्रीय क्षेत्र में सम्राज्यवाद विरोध नीति, रजवाड़ों की समाप्ति, भूमि सुधार तथा इज्जतदारों के हितों पर चोट इत्यादि हुआ। समाज में व्यक्ति की प्रसन्नता, संपन्नता एवं पूर्ण विकास ही सर्वोपरि है। नए यथार्थवाद से समाज को समृद्ध करने का दायित्व भी समाज द्वारा अपनाई जानेवाली चिंतनधारा का ही है। प्रचलित मान्यताओं और व्यवस्थाओं की आलोचना कर व्यक्तिवाद के नाम पर कुछ विद्रोही बातें कर लेने से समाज का कल्याण नहीं हो सकता। आज की नवयुवा पीढ़ी नैतिकता की बातें करने में हिचकिचाते हैं। यही कारण है कि वर्तमान संदर्भों में नैतिक मूल्य मात्र को लेकर ही आधुनिक युग के साहित्यकारों में स्वार्थ की भावना आ गई है, जिस कारण वे निजी हित स्वार्थपरक राजनीति, इत्यादि को लेकर लिखता है। आधुनिक युग में समाज की और नैतिक व्यवस्था अवनती के कगार पर है।

मनुष्य अपने अस्तित्व संघर्ष के लिए निरन्तर जूझता चला आ रहा है। मनुष्य प्रकृति के साथ अपना अनुकूलन करता चला आया है और कई बार उसने प्रकृति का दोहन, शोषण और उस पर अधिकार करते हुए उसे अपने हित के लिए बदलता है। मनुष्यों का मूल्यों का व्यक्तित्व न मानकर समाजगत मानना है। भारतीय विचारक के अनुसार मूल्यों को निरपेक्ष रूप से आत्मगत मानना व्यक्ति व समाज को मूल्यहीनता का प्रसार होना अनिवार्य न था।

*“आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मनुष्य अपनी परंपरागत जीवन-पद्धति से मुक्त होकर अधिक सफल, यांत्रिक और तेज गति से चलने वाली पद्धतियों की ओर से जाता है।”*<sup>54</sup>

इन आधुनिक मूल्य संक्रमण के पतन के संशोधन के लिए भारतीय सामाजिक चिन्तक सनातन काल से ही मूल्यों की स्थापना की है जिसे शाश्वत मूल्य कहा जाता है। जिसमें सत्य, अहिंसा, शान्ति, ईमानदारी, सहिष्णुता, स्वच्छता, सदभाव, त्याग आदि

अस्तित्वता का महामंत्र गूंजे है। यही हमारी भारतीय संस्कृति की धार्मिक गीता में भी भगवान श्री कृष्ण की वाणी हुई उद्घोषण का प्रमाण है -

यदा यदा ही धर्मस्य, ग्लानिर्भवती भारत।

अभ्युत्थानाम धर्मस्य, तदात्मानम् सृजाम्यहम्॥ गीता 4-7

परित्राजाय साधूनाम्, विनाशायच दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥ गीता 4-7

इन्हीं विचारों को रामचरित्र मानस तुलसीदास ने व्यक्त किया है।

जब-जब होय धर्म की हानी, बाढ़ाहि असुर अधमम अभिमानी।

तब-तब प्रभु धरी मनुज सीका, हरहि धेनु द्विज सज्जनपीरा॥

इन्हीं विचारों और संस्कृति को विविध धर्मों में अपना विचार व्यक्त किया है।

## सन्दर्भ सूची

1. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य, डॉ. हुकुमचंद, पृ: 2
2. नयी कविता मूल्य मीमांसा, पृ: 51
3. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, भाग 22, पृ: 962
4. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, भाग 2, पृ: 360
5. मनुस्मृति (1-75)
6. नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण, डॉ. संगमलाल पाण्डेय, पृ: 304 - 305
7. A General Theory of Society, R.K. Mukharjee, P 29
8. साहित्य और सामाजिक मूल्य, डॉ. हरिदयाल, पृ: 58
9. भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की परिभाषा, पृ: 160
10. The analysis of Value by Dewit H. Parker, P:178
11. Towards the psychology of being, A.H. Maslo, P: 163
12. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, अज्ञेय, पृ: 9
13. हिन्दी साहित्य कोश: भाग 1, तृतीय संस्करण, पृ: 353
14. हिन्दी कामसूत्र, भी वेदान्त शास्त्री, पृ: 3
15. एलिमेन्ट्स ऑफ सोसाइटी, राइट, पृ: 5
16. साहित्य की सामाजिक भूमिका, डॉ० देवेश ठाकुर, पृ: 12
17. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास, डॉ. हरवंशलाल शर्मा, पृ: 55
18. साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. नगेन्द्र, पृ: 12
19. आंचलिक कथा, दशा और दिशा, सप्ताहिक हिन्दुस्तान, 3 - 9 मई 1992;  
मैत्रयी पुष्पा
20. समसामयिक नाटकों में वर्ग चेतना, डॉ. देवकिशन चौहान, पृ: 104
21. भारतीय संस्कृति के आदान, डॉ. डी.एन. मजूमदार, पृ: 51

22. हिन्दी उपन्यास साहित्य में दाम्पत्य चित्रण - डॉ. उर्मिला भटनागर, पृ: 7
23. समकालीन हिन्दी कहानी : मानवीय चरित्र और संबंधों की विकृति, डॉ. पुष्पवाल सिंह, पृ: 121-122
24. समसामयिक नाटकों में वर्ग चेतना, देवकिशन चौहान, पृ: 102
25. B.R. Achievements of planing in India, Chakrabarty, P: 412
26. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी कथ्य और शिल्प, डॉ० शिवशंकर पांडेय, पृष्ठभूमि: परिस्थितियाँ एवं प्रेरणाएँ, पृ: 35
27. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास (सन् 1942-1962), डॉ० रामगोपाल चौहान, पृ:3
28. समकालीन हिन्दी कहानी; कथ्य के सरोकार, सामाजिक चिन्तन, डॉ. पुष्पपाल सिंह, पृ: 68 - 69
29. साठोत्तरी हिन्दी काव्य में राजनीतिक चेतना, डॉ. एस.गम्भीर, पृ: 32
30. राजनीति में लेखकों की सक्रिया भागीदारी; 'वैचारिक' त्रैमासिक, जनवरी से मार्च 1992, गिरिराज किशोर, पृ: 44 - 45
31. महात्मा गाँधी के राजनीतिक दर्शन, धवन, पृ: 324
32. साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना, नरेन्द्र सिंह, पृ: 135
33. समकालीन कहानी और समाजवादी चेतना : समालीन हिन्दी में लोकतांत्रिक समाजवादी चेतना : राजेन्द्र भटनागर, पृ: 173
34. समकालीन हिन्दी कहानी और समाजवादी चेतना : समकालीन हिन्दी कहानी में लोकतांत्रिक समाजवादी चेतना, डॉ. किरन बाला, पृ: 172
35. स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना, डॉ. सुरेन्द्र प्रताप यादव, पृ: 53
36. स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी, कृष्ण अग्निहोत्री, पृ : 14
37. नई कविता संस्था और शिल्प - रामशंकर मिश्र, पृ: 6

38. रीलीजन एंड द मॉडर्न माइंड - डब्ल्यू टी. स्टेड्स, पृ: 26
39. नई कविता संस्कार और शिल्प - रामशंकर मिश्र, पृ: 6
40. धर्म और समाज, डॉ. राधाकृष्णन, पृ: 122
41. भारत-भारती, मैथिलीशरण गुप्त, अतीत खण्ड, छन्द, पृ: 14
42. विकलांग श्रद्धा का दौर-हरिशंकर परसाई कैफियत की भूमिका से है।
43. द गोल्डन बुक, जे. फ्रेजर, पृ: 451
44. महाभारत, वर्ज पर्व, पृ: 69-58
45. निराला की समाज-जन्य संस्कृति, पृ: 93
46. समकालीन कविता में नवीन जीवन मूल्य, डॉ. हुकुमचन्द, पृ: 535
47. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डॉ. देवराज पथिक, पृ: 173
48. Our Heritage, Humayun Kabir, P6
49. Man in the primitive world, E.A. Hobel, P4
50. आधुनिकता और भारतीय परंपरा, पृ: 22
51. न्यू नॉलेज इन ह्युमन वेल्थ, पृ: 15
52. मानव मूल्य और साहित्य, पृ: 9
53. आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिका, सुशीला मित्तल
54. नई कहानी में आधुनिकता बोध, डॉ. साधना शाह, पृ: 36
55. मानव मूल्यों की खोज, डॉ. नत्थूलाल गुप्त, पृ: 100

# **द्वितीय अध्याय**

**बीसवीं सदी के अंतिम दशक के  
हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण**



## द्वितीय अध्याय

### बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण

इस अध्याय में बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के उपन्यासों का सामान्य सर्वेक्षण है तथा अध्यायन के लिए चयनित प्रमुख उपन्यासों का परिचय है।

#### 2.1 समर्पिता - डॉ० ब्रजनारायण सिंह

इस उपन्यास में पाश्चात्य संस्कृति के स्वरूप को दर्शाया गया है। उपन्यास की नायिका समर्पिता अभिजात्य जीवन जीने के लिए गूंगे-बहरे युवक अविनाश से विवाह कर लेती है। मगर वह मन से उसे पति नहीं मानती। भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी अपना पति चाहे कैसा भी हो उसके साथ दाम्पत्य जीवन का रिश्ता निभाती है। उसकी महत्वाकांक्षा का पूरा लाभ उठाया उसके एक मुँहबोले जीजा संजय ने। धीरे-धीरे ससुराल में संदेहशील के लायक बन जाती है। उसके माता-पिता से लेकर सास-ससुर, पति और नन्हीं बेटी की निगाहों से गिर जाती है।

संजय उसे धोखा देकर अपने मित्रों के विलास के लिए उसे साधन बना देता है। समर्पिता अपने स्वार्थ महत्वाकांक्षी सुख के लिए अपने ही परिवार को तबाह कर बैठती है। 'अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार लेती है।'

इस उपन्यास में निम्न मध्यवर्गीय आधुनिक उच्च महत्वाकांक्षी नारी के बारे में उल्लेख किया है। भारतीय संस्कृति के अनुसार त्रास, पारिवारिक मूल्य, दाम्पत्य विघटन को प्रस्तुत किया है। दाम्पत्य जीवन में अंधविश्वास की भावनाओं के परिणाम को बताया गया है।

## 2.2 दीक्षांत - सूर्यबाला

इस उपन्यास में डॉ. विद्याभूषण शर्मा आदर्शपरक चरित्र के पात्र हैं। वह मूल्यों को बचाए रखने की कोशिश में धीरे-धीरे स्वयं विलीन हो जाते हैं। वे सच्चे और ईमानदारी व अच्छे संस्कारों के सूत्र में बंधे हुए हैं। उन्हें जीवन की आर्थिक विषमताएँ एवं नितांत अस्वाभाविक विसंगतियों और विद्रुप जकड़कर उन्हें तोड़ देते हैं। अपने जीवन से विस्वन्न होने के बावजूद भी मूल्य संस्कारों के विमुख कार्य नहीं किए।

डॉ. विद्याभूषण शर्मा एक सार्वजनिक कॉलेज में अस्थायी रूप में कम वेतन में प्राध्यापक थे। इनके निर्धन परिवार अशक्त इन पर पूरी तरह निर्भर रहे। इनके वैयक्तिक मूल्य के सारे गुण विद्यमान थे। वे नेक, परिश्रमी एवं शिष्टाचारी, विनयपूर्वक संस्कारों से सम्पन्न थे। वे कॉलेज में प्राध्यापक बनने के पहले विद्यालय में शिक्षक थे। भौतिक और पारिवारिक में एक ही जैसे विनय, शांत एवं स्थिर स्वभाव के थे। इसके अतिरिक्त पिता-शिक्षक के रूप में कर्तव्यपरायणता निभाते थे।

वे नये पीढ़ी को अपना अर्जित ज्ञान और संस्कारों को अर्पित करना चाहते थे। मगर इनके विचार समाज ने बहिष्कृत कर दिया। समाज नये संस्कारों से लगाव रखते थे। इस कारण इनकी अमर्यादा की गुंजाइश ही होती थी। उनके जीवन यापनमें उन्हें विभिन्न अध्यापकों से या ट्यूशन के बच्चों के परिवारों से अवमानना और अवहेलना जीवन ही मिला। उन्हें जीवन में आस्था, उत्साह नहीं रहा।

इनके कॉलेज में एक अमीर घराने के छात्र नितान्त बरुआ के परीक्षा पेपरों में पास न कराने के कारण शर्मा को प्रिंसिपल राजदान व चैयरमेन चन्द्रभान सिंह बिना किसी कारण से नौकरी से निकाल देते हैं क्योंकि उसके पिता ही कॉलेज को हजारों के डोनेशन व अधिक सहायता करते थे। इसके साथ अन्य प्राध्यापक भी साथ नहीं देते। सभी अपने काम और वेतन से मतलब रखते थे। हजारों कठिनाइयों के बावजूद भी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुए।

शर्मा अपने आर्थिक दयनीय स्थिति से जूझनेवाले परिवार को सोचते ही हताश हो जाते हैं। कॉलेज के क्रूर विडंबनाओं व बदमाशों द्वारा बेइज्जती को सोचते-सोचते अपनी हालत बिगाड़ लेते हैं। एक दिन घर आने पर रास्तों में बेगम बुर्जी की रेलिंग पर चक्कर आकर पानी में गिर जाते हैं। मगर आत्महत्या के सोच से नहीं। वे असहाय। स्थिति में भी विरोधियों को बचाने की खातिर बयान में अशक्त स्वरों में परिवार की चिंता व शारीरिक कमजोरी ही बता देते हैं। इनके मृत्यु के पश्चात् कॉलेज के अध्यापक बेरुखी भरा दृष्टिकोण अपनाते। शिक्षार्थी अपरिपक्व बुद्धि वाले दिशाभ्रष्ट होने लगे। तीसरा इस विद्रुप को पूरी तरह अपना के शैक्षणिक संस्था को मिलने वाली ग्रांट तथा राजनीतिक मुहरों की चालों से अपनाके निहित स्वार्थों से परिलक्षित होकर समाज में एक अलग वर्ग स्थापित कर लेते हैं।

शर्मा के परिवार में कुंती अपने कानों की बालियाँ बेचकर शर्मा का अंतिम संस्कार करती है। विजयेन्द्र और शंशाक ट्यूशन के शिक्षार्थी के परिवार ही कुंती एवं उसके दो बच्चे विनय और भूषण को गाँव भेजने में मदद करते हैं। उसमें विजयेन्द्र के पिता भूषण के अंधतोतली आवाज से अभिभूत होकर उसकी शिक्षा-दीक्षा का भार अपना लेते हैं यह सोचकर की यह मेरे गुरु के पुत्र के परिवार के लिए मेरी छोटी-सी गुरुदक्षिणा होगी।

इस उपन्यास में यातनामय के विरुद्ध मानवीयता के नये उद्गम स्रोतों की तलाश की है। इसी में लेखिका ने मानव-जीवन में मूल्यों से प्रवाहित होने वाले दुष्प्रभावों को दर्शाया है। आधुनिक समाज के विभिन्न क्षेत्रों जैसे आर्थिक, शैक्षणिक स्थलों में राजनीतिक का घुसना, कहीं कहीं अध्यापिका के कपड़ों में सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिपादित किया है।

उपन्यास में मूल्यों से अर्जित व्यक्ति शर्मा आर्थिक तंगी के कारण प्रतिष्ठा की उपेक्षा और तिरस्कृत बनाता है।

### 2.3 करवट लेता वक्त - डॉ. मधु धवन

इस उपन्यास में डॉ. मधु धवन ने सांस्कृतिक और समाज में चलने वाली कुरीतियों व त्रासदियों को उजागर किया है। इस उपन्यास में वक्त की करवटों में सिमटे दर्द से उठने वाले उफानों की झलक मिलती है। स्त्री-पुरुष को सदियों से विवाह के सम्बन्ध में बांधा जाता है। आज पश्चिमी संस्कृति को अंधाधुन अपनाने वाले भारतीयों के लिए निश्चय ही विवाह एक प्रमुख समस्या बनी है। आज कान्ट्रेक्ट मैरिज, लव मैरिज हो रहा है। जिसका नतीजा विवाह-विच्छेद, उत्पन्न हो उठते हैं।

इस उपन्यास में प्राचीन संस्कारों एवं संस्कृति को मानने वाली करिश्मा एवं पश्चिमीकरण के मोह में फंसे सुप्रिया जैसे युवा वर्ग के बीच के तनाव को दर्शाया है। करिश्मा कॉलेज की प्रवक्ता है जो अपनी छात्राओं के संघ अध्ययन यात्रा पर प्रस्थान करने की तैयारी कर रही है। उसके साथ उसी कॉलेज की अन्य प्रवक्ता निशा एवं जैरी है जो पश्चिमी संस्कृति से उलझी हुई है। पश्चिमी संस्कृति को उपासिका निशा की बेटी सुप्रिया ने कान्ट्रेक्ट मैरिज कर ली है। खत्म होने की स्थिति में माँ अपनी बेटी के अंधकारमय भविष्य के बारे में सोचकर परेशान एवं तनावग्रस्त स्थिति से गुजर रही है। लेखिका के अनुसार 'जहाँ करिश्मा भारतीय जीवन-मूल्यों की अनिवार्यता के पक्ष में विचार प्रकट करती थी वहीं निशा मूल्यों को वैयक्तिक उन्नति में बाधा समझती थी।'

युवा वर्ग सोचता है कि विज्ञापनों के युग में अनेक टी.वी. के द्वारा लोगों में जागृति आई है। जिससे भारत में युवा वर्ग कान्ट्रेक्ट विवाह की परम्परा को प्रचलित करेगा। इसे विधवा, दहेज व गरीबी का अंत हो सकता है। साथ ही जातिगत भेदभाव और साम्प्रदायिकता का भी अंत होगा। भारत के सभी प्रांत, धर्म एवं संप्रदायों में नेटवर्क हो जायेगा।

जब छात्राएँ रेल यात्रा के दौरान, छात्राओं की लीडर मालती ने प्रेम की महान समझ अपने ग्रुप की हेमा एवं मुद्रा को उनके पुरुष मित्रों से मिलने बाहर जाने में सहयोग दिया। पहले झूठ बोलकर सभी छात्राएँ बच गईं, जब करिश्मा अध्यापिका को पता लगाने पर संकुचित हो जाती है। जब वे संकुचित होने लगे उससे ही पता चलता है उनके खून में अभी भी भारतीय संस्कृति के परंपराओं का मूल्य दिखाई देता है। करिश्मा ने बड़े प्यार से उन्हें मूल्यों की एहमियत समझाती है फिर भी जय एवं अश्विनी को अन्य लड़कियों के साथ अपने डिब्बे में रख लिया। हेमा को जब अपनी गलती का एहसास हुआ तो वह शर्म से कुण्ठित हो गई और उसने आत्महत्या करने की कोशिश की।

दार्जिलिंग में पहुँचकर वे दिवली होटल में ठहरे। जब करिश्मा जानने लगी कि दीपाली अविनाश से विवाह करना चाहती थी, परन्तु उसके पुरुष अहंकार, अकड़ के कारण वह नहीं करता। करिश्मा अपनी ममता, स्नेह और अपनापन से गलती का एहसास कराती है और उनका विवाह कराने में सफल हो जाती है।

इस उपन्यास के द्वारा कान्ट्रेक्ट मैरिज जैसी नई जीवन पद्धतियाँ हमारे समाज में उभरी है। सांस्कृतिक मूल्यों का विघटित रूप दर्शाया है।

## 2.4 मैं सृष्टि की आत्मा हूँ - डॉ. मधु धवन

यह उपन्यास सामाजिक उपन्यास है। यह अत्याधुनिक विकसित समाज में नारी की दशा-दिशा पर समुचित प्रकाश डालता है। आज भी समाज में नारी की स्थिति दयनीय ही है। आज भी बच्ची का गर्भ में या पैदा होते ही वध कर देते हैं। नारी का अस्तित्व पूरी तरह निभा नहीं पाया। उसका अस्तित्व पुराने खड़िवादी संस्कारों को तोड़कर ही होता है। आज भी बालिका से ज्यादा बालक को ही महत्व दिया जाता है। औद्योगिक विकास के बाद भी लोग पुराने संस्कारों को ही लागू करते हैं।

इस उपन्यास में महिमा नारी उत्थान के लिए भरसक प्रयास करती है। वह अपनी बहन मेघना की बेटी की शादी अच्छे खानदान के रईस लोगों से करना चाहती है जो लड़की की नापसंदी के पश्चात् भी जबरदस्ती करते हैं। लेखिका कहती है स्वतंत्रता के पश्चात् भी नारी की अपनी इच्छा, अनिच्छा कहने का अधिकार भी नहीं रहा।

महिमा की माँ ने बेटे-बेटियों में बहुत फर्क किया है। बेटियों से नफरत करती थी। माँ सबके लिए माँ ही होती है। यहाँ खून के रिश्ते में प्यार, ममता नहीं रही। नारी ही नारी की प्रगति में रोड़ा बन जाती है। अपनी बेटियों के अतिरिक्त आनेवाले मेहमानों की बेटियों से भी कठोर व्यवहार ही करती थी।

माँ के घर में प्रवेश नई बहु के साथ ही रूखा व्यवहार करती थी क्योंकि वह सह नारी के प्रति द्वेष रखती थी। इस उपन्यास में दहेज प्रथा पर डाला गया है। आज विवाह का अर्थ पशु सुलभ कामनाओं को पूरा करने का दूसरा नाम है। जीवन की सारी चरितार्थता सिर्फ संभोग में है।

इसमें दाम्पत्य जीवन में तीसरे पर (पुरुष/स्त्री) के आने से भी दरारें उत्पन्न होती है। इसी प्रकार मेघना की दीदी का हर काम में टांग अड़ाना पसंद नहीं करती। उसे लगता कि नेहा और अजय के बीच दूरियाँ बढ़ाने का कारण भी दीदी ही है। महिमा हर बात में न्याय और नीति को लेकर पहुँच जाती थी।

महिमा की शादी में दहेज अधिक न मिला। इस कारण ससुराल वालों से बदनामी हुई। नेहा के विवाह में महिमा ने काफी कुछ देखकर उसके ससुराल वालों को चुप किया। महिमा की माँ ने इनकी मेहमाननवाजी नहीं की। इस कारण नाराज होकर उसका पति चला जाता है। वह कुछ नहीं कर पाती। व्यक्ति न ही अपना अधिकार छीने और न ही दूसरों का अधिकार सौंपे इसमें वैयक्तिक मूल्य विघटित हुआ है।

नेहा और अजय का दापत्य रिश्ता भी टूटता है क्योंकि अजय उसको ले जाने के लिए मायके से दस लाख बार पूछता है जब इन्कार कर देते हैं तो भी नेहा को परित्यक्त कर देता है इसलिए कि बेटा पैदा नहीं कर पायी। अन्त में महिमा अपनी बहुओं को नौकरी करने को इजाजत देती है। उनकी अपनी लड़कियों की तरह देखभाल करती है।

इस उपन्यास में दो पीढ़ियों का कथा उजागर किया है। सामाजिक, धार्मिक में रूढ़िवादी विचारों को बोलबाला हुआ है। इन नारी की विघटित मूल्य का महिमा के ख्यालातों के द्वारा संशोधित मूल्य दर्शाया है। पुराने मूल्यों को अपनाते हुए विघटित मूल्यों में नए संस्कार को अपनाया है। इस कारण नारी की दयनीय स्थिति को सुधारने का प्रयास किया है।

## 2.5 आघात - सुदेश भाटिया

यह उपन्यास आर्थिक बेरोजगारी की समस्या से सम्बन्धित है। इस कथा का नायक विजय आर्थिक विषमता से जूझने लगता है। उपन्यास की कथा में विजय के माता-पिता उसका विवाह गाँव की लड़की से करते हैं। जिसकी उम्र विजय से मेल नहीं खाती थी। विजय की पूरी पढ़ाई नहीं हो पाती। उसकी नौकरी मिलने के पहले ही उसकी शादी करवा देते हैं।

विजय होनहार होने पर भी उसे दर-दर नौकरी के लिए भटकना पड़ा। उसे कहीं नौकरी नहीं मिलती। इसी बीच उसके दो बच्चे हो जाते हैं। पहले से आमदनी नहीं होती, ऊपर से बच्चे, पत्नी और माँ बोझ बन जाते हैं। उसकी जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। इस बेरोजगारी के कारण परिवारों के कर्तव्य को भली-भाँति कुछ नहीं कर पाता। इसका दाम्पत्य जीवन आर्थिक पत्नी के विचार पर अहमियत रखता है।

अन्त में इनकी आर्थिक स्थिति अत्याधिक दयनीय बन जाती है। वह नौकरी ढूँढ़ना बन्द कर स्वयं दुकान खोलने की इच्छा रखता है। उसकी माँ की तबीयत ठीक नहीं होती अस्पताल में भती करवा देता है। मरने से पहले कहता है, 'माँ तुम्हें कुछ न दे सका।'

इस उपन्यास में माँ-बेटे, दाम्पत्य जीवन के रिश्तों में अटूट प्रेम सम्बन्ध को दर्शाया है। आर्थिक विषमता के बावजूद भी सभी का वैयक्तिक जीवन संस्कार भरे मूल्यों से गुजरने की संभावना है।

## 2.6 घूँघट - सुदेश भाटिया

घूँघट उपन्यास एक भारतीय नारी जीवन की कथा है। उपन्यास की नायिका ममता के दहेज प्रथा के कारण उसका जीवन बर्बाद हो जाता है। ममता अपने परिवार के वंशज में ही इकलौती लड़की थी। उसकी शादी मनीष नाम के लड़के से होती है। ममता की सास उनके पाँच लाख रकम, और सभी घर की चीजें मिलने पर भी संतुष्ट नहीं होती।

ममता की सास अपनी बेटियों की शादियों के लिए ममता के परिवार से दहेज के नाम पर ममता की शादी पर पाँच लाख की रकम हासिल कर लेती है। शादी के बाद सास-बहू में अच्छा समझौता नहीं रहता। उसकी सास अपने बेटे से पत्नी को पैसे कमाने के लिए आग्रह करती है। ममता डाक्टर थी उसे मनीष विदेश (इराक) भेज देता है। वहीं पैसा कमाने और एम.एस. करने के लिए कह देता है। इस कारण उनका दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं रहता। उसे सिर्फ पैसे कमाने वाली एक साथी के रूप में माना जाता था।

ममता सभी जानते हुए भी पति का विरोध नहीं कर पाती। क्योंकि वह अपने माता-पिता को दुःखी देखना नहीं चाहती। उनके सुख के लिए सभी कष्टों को झेलती



है। वह अपने भारतीय संस्कृति को अपनाकर जीवन बिताती है। मनीष किसी दूसरी लड़की के साथ रिश्ता कायम कर लेता है। इस वजह से ममता को बेइज्जत करता है। उसके ही पुत्र को अपनाने में इन्कार कर देता है और तलाक़ चाहता है। ममता अपने माता-पिता की खुशी को सोचकर अपने बेटे नीतिष को लेकर अस्पताल से दिये हुए क्वार्टर में रहने लगती है।

इस उपन्यास में दो पीढ़ियों का अन्तर दर्शाया है। पहली पीढ़ी में ममता के माता-पिता उनके जेठानी-जेठ, सास-ससुर के समष्टि परिवार के आत्मीयता, प्रेम, स्नेह को उजागर किया है। मगर ममता की पीढ़ी में सास-बहू के जीवन की बर्बादी को प्रतिपादित किया है। उपन्यास में रिश्ते दहेज के पैसों के कारण सास-बहू के रिश्तों में बिखराव उत्पन्न हो जाता है। दाम्पत्य जीवन में तीसरे पर - स्त्री के कारण अटूट बन जाता है। उपन्यास में दहेज प्रथा के साथ नारी की सांस्कृति मूल्य को भी प्रतिपादित किया है।

## 2.7 अर्थांतर - चन्द्रकांता

अर्थांतर उपन्यास में नायिका कम्मो के पारंपरिक संस्कारों एवं आधुनिक संस्कारों के बीच चलने वाले अंतर्द्वन्द को उभारा गया है।

कम्मो की परवरिश उनके माता-मामी के घर होती है। मामा बीमार हो जाते और उनकी मृत्यु हो जाती है। वहाँ से शहर में अपने माता-पिता के साथ रहने लगती है। माता-पिता विजय से उसका वैवाहिक रिश्ता तय कर देते हैं। विवाह के पश्चात् दाम्पत्य जीवन में लगाव नहीं रहता क्योंकि मामू द्वारा सुने राम कथा में राम मर्यादा पुरुष धोबी के कहने पर सीता को वन में भेजकर अग्निपरीक्षा ली। इस वजह सभी पुरुषों को नफरत करनी आयी। वह सोचती है कि सभी पुरुष स्त्री पर अत्याचार करते हैं। जैसा पुरुष के बारे में सोचती रही उसी प्रकार विजय भी निकला। विजय

विवाह पूर्व से जूही नामक लड़की से यौन सम्बन्ध रखता था। इसी कारण कम्मो के दाम्पत्य जीवन में एक बहुत समस्या बनकर सामने आती है।

कम्मो कॉलेज में प्राध्यापिका बन जाती है। विजय अपने बिजनेस में ध्यान देने लगता है। वह धीरे-धीरे अपने पति को खुश रखना चाहती थी। संस्कार भरे उसकी इच्छा असफल रह जाती है। कम्मो विरक्त हो उसी कॉलेज में साथ काम करने वाले प्राध्यापक प्रशांत से अवैध संबंध जोड़ लेती है। उसकी मूल्य विघटन की स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि दूसरे प्राध्यापक शर्मा भी उस पर बुरी नजर डालने लगता है।

विजय को पत्नी के प्रति सन्देह होने लगता है। इस शक्की नजर को कम्मो पहचान लेती है। अन्त में जीवन को समझ लेती है। वह सोचती है समाज में नारी का अलग अस्तित्व बनाना कठिन है, किसी के भरोसे ही रहना पड़ता है। वह पत्नी, माँ के रूप में उन्हीं के साथ अकेले ही जीवन गुजारती है और सोचती है कि जिस कटघरे में खड़ी है वह गलत है। जीवन की वास्तविकता को समझकर परिवार के कर्तव्यों में लीन हो जाती है।

उपन्यास में दाम्पत्य जीवन में अर्थ लोलुपता से उत्पन्न संवेदनशून्यता को प्रकट किया है। स्वार्थ - साधना और प्रलोभन ने व्यक्ति की संवेदना को पूरी तौर पर नष्ट कर दिया है। आज दाम्पत्य जीवन एडजस्टमेंट हो गया है। नारी को पुरुष ने भोग वस्तु ही समझा है। नारी की दयनीय स्थिति को उजागर किया है। इसमें पारंपरिक संस्कारों के विरुद्ध विजय और कम्मो विवाहेतर और विवाहोपपूर्व अवैध सम्बन्धों के जरिए दाम्पत्य मूल्यों में विघटन की को स्थिति चित्रित किया है।

## 2.8 अंतिम साक्ष्य - चन्द्रकांता

चन्द्रकांता के इस उपन्यास कृति में आधुनिक संस्कृति एवं पारंपरिक संस्कारों के बीच चलने वाली अंतर्द्वन्द को दर्शाया गया है।

इनके उपन्यास अंतिम साक्ष्य में जीवन मूल्य को प्रधानता दी गयी है। इसमें परंपरावादी आचार-संहिता के विरुद्ध व्यक्ति मन का विद्रोह और एक स्वस्थ स्वाभाविक जीवन जीने की उत्कट आकांक्षा व्यक्ति की गई है। उपन्यास के सुरेश, मीना और विकी एक नए जीवन की तलाश और अपने अस्तित्व को पहचानने की ऊर्जा से भरे हुए हैं।

इस उपन्यास के पात्र मीना का विवाह बारह साल की छोटी उम्र में ही अधेड़ उम्र वाले पुरुष से हो जाता है। मीना के चाचा-चाची पैसों के लालच में मीना का जीवन बर्बाद कर देते हैं। लाला का तीसरा बेटा विमाता मीना पर वासना दृष्टि रखता है। लाला मीना को पाँच हजार रुपये देकर उसकी चाची के घर भेज देता है। चाची उसे आठ महीनों के बाद जगन नाम के गुंडे से ब्याह कर देती है। उसे थोड़े महीनों के बाद जगन वैश्यावृत्ति में ढकेल देता है। वहीं गाना सिखाने वाले मास्टर इसकी सुरीली आवाज देखकर उस कोठे से भागकर आकाशवाणी में काम दिलाता है। एक महफिल में कैलाश और रमेश जोड़ी के परिवार से मीना की दोस्ती हो जाती है। उसके माध्यम से बीजी और उसके प्रति प्रताप सिंह जोड़ी से परिचित होते हैं।

बीजी, प्रताप इसकी यातना भरी दुःखी कथा सुनकर उसके प्रति सहृदय और संवेदनशील होते हैं। प्रताप मीना के प्रति हृद से ज्यादा हमदर्दी दिखाता है। यही हमदर्दी बीजी और प्रताप के बीच दाम्पत्य जीवन में दरार उत्पन्न कर देती है। यही अंतरंग संबंध को देखकर बीजी मीना से नफरत करने लगती है। धीरे-धीरे यह चिंता बीजी के मौत का कारण बन जाती है। बीजी के मौत के तेरह दिन में ही मीना को प्रताप घर में लेकर आ जाता है। प्रताप के दो बेटे सुरेश और विकी इस नफरत से अलग-अलग हो जाते हैं। सुरेश एक लड़की को लेकर भाग जाता है। फिर सुधरने के पश्चात् फौज में चला जाता है। विकी घर के मोह की कड़ियाँ तोड़कर दिल्ली होस्टल चला जाता है। वह अपनी माँ और प्रेमिका तनु के यादों को भूल नहीं पाता। माँ की

मृत्यु और पिता के कार्य को देखकर गलत रास्तों की ओर उन्मुख हो जाता है। वह प्रेमिका तनु के याद में निला सिंह नाम लड़की से अवैध सम्बन्ध रखता है।

इस उपन्यास में नारी की मूल्य विघटन की स्थिति का चित्रण दिखाया है। समष्टि हो या व्यष्टि, दाम्पत्य ही परिवार को मजबूत करता है। तीसरे पर-स्त्री के कारण दाम्पत्य विघटित हो जाती है। इस दाम्पत्य से परिवार भी छिन्न-भिन्न हो जाता है।

इसके अतिरिक्त समष्टि परिवार के चाचा-चाची अर्थ लोलुपता के कारण बीजी का जीवन ही बर्बाद कर देते हैं। उपन्यास में मीना का दाम्पत्य जीवन का विघटित रूप को दर्शाया है। इसके विघटित दाम्पत्य के कारण मीना अपने संस्कारों से भूलकर बीजी के परिवार को बिखरने के कारण बन जाता है।

## 2.9 अधिकार - यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र

यह उपन्यास एक स्त्री-पुरुष के बीच के सम्बन्धों की कथा है। एक कॉलेज का लड़का राजेश एक वैश्या पुत्री प्रेमा जो समाज में डांसर के नाम से प्रचलित है उससे विवाह करना चाहता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार वैश्या समाज के लिए निष्कासित वस्तु है। मगर राजेश वैश्या को दिलोजान से चाहता है। इस निष्कासित वैश्या पुत्री प्रेमा का राजेश की क्रांतिकारी भाई रमेश एवं परिवार नकार देते हैं। राजेश की वैयक्तिक इच्छा को रमेश अस्वीकार कर देता है।

प्रेमा इस अवमर्यादा को ध्यान में रखकर रमेश को मानवीय संवेदना सिखाने के लिए उसी से नाटकीय प्रेम रचाती है जिसमें वह भी गिर जाता है। अंत में प्रेमा और रमेश के शादी में असलियत जानने लगता है कि प्रेमा भी राजेश से उतनी ही प्यार करती है जितना रमेश प्रेमा से। रमेश भी इस वेदना को अनुभव करता है, और

अपने क्रूर विचारों में सुधारने लगता है। उनकी शादी करवा देता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार स्त्री-पुरुष जिससे प्रेम करते हैं उसी से विवाह करना चाहते हैं।

इस उपन्यास के द्वारा सांस्कृतिक मूल्य को बचाते हुए इस वैश्यावृत्ति के उन्मूलन का प्रयास किया गया है।

## 2.10 यातना घर - यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र

यह उपन्यास राजनीतिक से सम्बन्धित है। उपन्यास के पात्र हजारी नौकरी पाने के लिए वरिष्ठ अधिकारियों को रिश्वत देता है। जब उसे नौकरी मिल जाती है, वो भी रिश्वत लेकर पैसे कमाने में लग जाता है। पैसों की लालसा में पड़कर अपनी पत्नी का ख्याल भी नहीं रख पाता। वह दुर्घटनाग्रस्त यात्रियों के अटैचियों को लूट लाता है। उनसे पैसे लूटने की कोशिश करता है। इसका खामियाजा उसे अपने बेटे की मौत से भुगतना पड़ता है। वह सभी अनैतिक कर्मों से परिचित हो जाता है।

इस उपन्यास में राजनीतिक मूल्य विघटित हुआ है। इसमें हजारी को प्रतिनिधित्व रखकर उपन्यासकार समाज में अन्य पुलिसकारों भ्रष्ट नीति का आदमखोर स्थितियों का विसंगतियों का आंकलन किया है। जिसके कारण आदमी अपने सुख-सुविधाओं के लिए मानवीय संवेदना को नष्ट-भ्रष्ट कर रहा है।

## 2.11 रुको द्रोपदी - बलभद्र तिवारी

इस उपन्यास की कथा एक यूरोपीय प्रदेश की नारी की कथा पर आधारित है। उपन्यासकार बलभद्र तिवारी ने इस उपन्यास में पुरुषों द्वारा नारी पर किये जाने वाले यौन शोषण का चित्रण किया है। इस उपन्यास की नायिका योन्ना इसकी एक प्रतीक है। उपन्यासकार भारतीय नारी और पाश्चात्य नारी के विचारों को सम्बन्धित करने का प्रयास किया गया है। योन्ना हमारी भारतीय संस्कृति से प्रभावित थी।

भारतीय से यूरोपीय प्रदेश में शशि को अध्यापिका के तौर पर नियुक्त किया गया। अध्यापिका शशि अपने छात्र योन्ना को गलत निगाहों से हड़पने की कोशिश करता है। उसकी पत्नी मीतू विषय को जान लेती है, उसके पश्चात् ही सुधरने लगता है।

योन्ना का यौवन को उसके संपर्क में आने वाला हर पुरुष लूटना चाहता है। इस कारण उपन्यासकार कहते हैं, यूरोप के देशों में लड़कियाँ महाभारत की द्रोपदी की तरह पंचब्याही नहीं होती, वे स्वतः पंचवरण करती; कदाचित्त ऐसा करने में उनकी अपनी परवशता नहीं है : धर्म और नैतिक मूल्यों की यहाँ कोई प्रधानता नहीं है। वे उस समाज के एक अंग बने हैं, जिनमें यह सब मामूली से चलता है, कोई उसे जीवन - मूल्यों के साथ जोड़ने के लिए तैयार नहीं है।

योन्ना अपने सुखमय जिन्दगी के लिए लालायित बन जाती है। नये व्यक्तियों से उसकी दोस्ती कायम हो जाती है। किन्तु यह दोस्ती उसे कई हालातों से गुजरने के लिए बाध्य कर देती है।

उपन्यास में लेखक पूर्वी यूरोप के देशों की सभ्यता और भारत की सभ्यता के बीच अंतर को प्रभावशाली ढंग से रेखांकित किया है। मगर भारतीय जीवन मूल्यों के आधार पर भारतीय संस्कृति केवल स्त्री के लिए ही नहीं बल्कि पुरुष के लिए भी निर्धारित है। योन्ना के द्वारा भारतीय संस्कृति के अवमूल्य को दर्शाया गया है। क्योंकि जहाँ भारतीय संस्कृति में स्त्री सीमित दायरा बनाये रखती हैं, वहीं योन्ना इस दायरे को तोड़कर सांस्कृति व मूल्यों को नष्ट कर देती है। भारतीय पुरुष भी अपने संस्कार को भूलकर दूसरी नारी पर बुरी नजर रखते हैं। भारतीय संस्कृति का संस्कार मीतू के पति शशि के द्वारा नष्ट होते हुए दिखाया है। दूसरे पात्र त्रिदेव के द्वारा मूल्यों को बचाया गया है।

## 2.12 टूटा हुआ आदमी - डॉ. विष्णु पंकज

इस उपन्यास की कहानी एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो आर्थिक विषमताओं से जूझ रहा है। आर्थिक तंगी के कारण उसकी पढ़ाई नहीं हो पाती। वह अपने परिवार के सदस्यों और दोस्तों का अपने कम आमदनी में भी मदद करता है। मगर उसका भाई, दोस्त स्वार्थी निकलते हैं। सभी धोखा देते हैं। उसका भाई, दोस्त अहमद इसकी मानवीयता भरी अच्छे कर्मों का दुरुपयोग कर लेता है।

बिस्मिल की कम आमदनी के कारण उसकी लड़की बैनजीर नौकरी ढूँढ लेती है। नौकरी का मैनेजर बैनजीर का बलात्कार कर देता है। उसके लड़के को भी नौकरी नहीं मिलती। वह सारे कष्टों को झेलता है, मगर समाज के आगे झुकता नहीं। अपना कर्तव्य करता रहता है। अपने परित्यक्त बहन को भी आश्रय देता है।

अंत में बिस्मिल बीमार पड़ जाता है। उसके बच्चों के भविष्य को सोचकर चिंतित रहता है। उसका दोस्त पण्डितजी दोस्ती के एहमियत देखकर बेनजीर का ब्याह और बेटे की नौकरी की जिम्मेदारी ले लेता है। उसके बेटे से बिस्मिल की लड़की बेनजीर का ब्याह तक कर देता है। बिस्मिल के अंतिम घड़ी पर अपनी बीबी से कहता है मेरी एवज में उसके बेटे सलीम को नौकरी हासिल हो जायेगी और मालिका बेनजीर का ब्याह भी हो जाएगा। मेरे फण्ड की रकम से उसकी ब्याह का खर्चा हो जाएगा। तुझे पेंशन मिल जाएगी।

मानवीय विचारधारा का प्रमुख रूप चित्रित किया गया है जिससे मनुष्य-मनुष्य में भाईचारे के गुण विकसित होते हैं।

## 2.13 अग्निपंखी - सूर्यबाला

सूर्यबाला का 'अग्निपंखी' उपन्यास आर्थिक विषमताओं से जूझते हुए परिवार की कथा है। जयशंकर को उसकी माँ अत्यंत दयनीय स्थिति में पढ़ा-लिखाकर बड़ा

करती है और शादी करवा देती है। जयशंकर को नौकरी नहीं मिलती। वह शहर में नौकरी ढूँढ़ने आ जाता है।

शहर में नौकरी मिलती है तो भी कम आमदनी में इसमें उसे झुग्गी-झोंपड़ी में ही रहना पड़ता है। इसमें उसकी पत्नी एवं माँ को लेकर आता है। माँ इसे झोंपड़ी को देखकर संतुष्ट नहीं होती। मगर जयशंकर अपने बच्चे के दूध का डिब्बा भी नहीं खरीद पाता। वह नगरीय जीवन से संतुष्ट हो जाता है।

गाँव वाले सोचते हैं कि जयशंकर शहर में बड़ा नौकरी पर काम कर रहा है, वेतन भी ज्यादा ही होगा। वह ऐशोआराम की जिन्दगी जी रहा होगा। माँ जब इस झोंपड़ी से अपना संतुलन खो बैठती है। वह उसे गाँव छोड़ आता है, वह निमोनियाग्रस्त हालत में माँ पहुँचती है। जयशंकर उसकी माँ को दुबारा वापस शहर ले आता है।

अर्थात् इस उपन्यास में जयशंकर पात्र के जरिये समाज में अन्य बेरोजगारियों व्यक्ति के जीवन का प्रतिनिधित्व बनता है। उपन्यास में औद्योगिकरण व मशीनीकरण के कारण मध्यवर्गीय परिवार आर्थिक विषमता से जूझने लगता है।

## 2.14 सत्य की ओर - डॉ. अनुराधा भार्गव

इस उपन्यास में नायक - नायिका के द्वारा दाम्पत्य जीवन के सही अर्थ को प्रस्तुत किया गया है। भारतीय संस्कृति के अनुसार पति-पत्नी में जो प्यार, आत्मीयता, त्याग, समझौता होनी चाहिए वह सब इस उपन्यास के कुलविन्दर नायक-नायिका नयन के बीच दाम्पत्य जीवन में मिलता है। इसके साथ ही उनकी वैयक्तिक चरित्र के मूल्य भी श्रेष्ठ हैं।

इसी उपन्यास में धर्म और जाति के नाम पर जो आज कुचित खेज समाज और राजनैतिक धरातल पर खुलकर खेला गया है। इस धार्मिक सम्प्रदाय के कारण न



जाने कितने जीवन मानव की इस अंधी आस्थ की भेंट चढ़कर अपना सर्वस्व गंवा बैठे हैं।

इसी पहलू पर आधारित एक नारी जो इस उपन्यास की नायिका है, उसके जीवन का मार्मिक चित्रण हुआ है। जो मखकर यह सोचने पर बाध्य कर देता है कि समाज की हर कुरीति, विसंगति का शिकार आखिर नारी क्यों होती है। अपने आत्मीय से प्रताड़ित होकर बिछुड़ने के बाद भी वह विरह की आग में जलती रहती है और यादों को भुला पाने का असफल प्रयास उसे और निकट लाता है।

एक देवता स्वरूप पवित्र व्यक्ति के सहारे प्राप्त होने के पश्चात् भी जीवन अतीत को लेकर निराशमय बन जाता है। जब उसका बिछुड़ा हुआ पति वर्तमान बनकर अनायास जीवन में आ जाता है तो वह प्रेम या कृतज्ञता के बीच फेसला लेने पर मजबूर बन जाती है। तब अपने दाम्पत्य जीवन के प्रेम से ज्यादा मनुष्य के कृतज्ञता को चुन लेती है। कृतज्ञता के खातिर आत्महत्या कर लेती है। अपना जीवन न्यौछावर कर देती है। वह मानवीयता को श्रेष्ठ बना देती है।

## 2.15 सवालों के बीच - बनाफर चन्द्र

इस में पूँजीवादी समाज में अपनी श्रम शक्ति को बेचकर जीनेवाले मजदूर-किसान को सर्वहारा कहा है। इसमें मजदूर किसान की मुक्ति का मार्ग लेखक ने उपयोग किया है। इसमें नैतिक-दायित्वों को उजागर किया है। जन-समुदाय को अपनी वर्ग-चेतना का बोध कराया है।

इस उपन्यास कल-कारखाने तक सीमित हुए कथा विस्तृत है, क्योंकि समाज के सभी वर्गों को अपने घेरे में समाहित किया हुआ है। उपन्यास में दिनेश कुमार चिंदबरा लखीम अग्रवाल दोस्त होते हैं। दिनेश का विवाह छोटे उम्र में हो जाता है, तीन बच्चों का बाप बन जाता है। लखीम दूसरे जाति की लड़की पूनम से प्रेम करता है, मगर

विवाहित करने में उसके विचार संकुचित बन जाते हैं। वह अपने माता-पिता के विरुद्ध जाने के लिए तैयार नहीं होता।

इस कारण पूनम से शादी नहीं करता। लखीम और दिनेश एक ही कारखाने में काम करते हैं। लखीम दिनेश का उच्च अधिकारी बन जाता है। लखीम के उच्च अधिकारी लखीम को मजदूरों से प्रतिपादित व्यवहार करने को कहता है वह भी विशेषतः उसके दोस्त दिनेश के साथ।

मजदूरों की लड़ाई, हड़ताल, टूल डाउन, बोनस, वेतन, प्रमोशन आदि के साथ-साथ ही समग्र कल्याण व उत्थान के लिए भी होनी चाहिए। उन कारणों व कर्ताओं की खोज ही हमारे सामने 'सवालों के बीच' में मौजूद है।

उपन्यास में दिनेश की आदर्श वैयक्तिक मूल्य के कारण लखीम अपना जीवन को ही सुधार लेता है और पूनम को शादी करने के लिए तैयार हो जाता है। कल-कारखानों में अधिकारियों के भ्रष्ट नीति को उजागर किया है।

## 2.16 गिद्धलोक - रामदेव शुक्ल

इस उपन्यास में लेखक रामदेव शुक्ल विश्वविद्यालयों में शोध की आड़ में व्याप्त शोषण और भ्रष्टाचार के भयानक दुष्प्रक्र का, जो देश की प्रतिभाशाली नयी पीढ़ी को न केवल संवेदनशून्य का सक्रिय अंग अमानवीय तंत्र से बन रहे हैं। यह यंत्र जो ध्वस्त कर रहा है शिक्षा के आदर्श और सनातन जीवन मूल्य को।

इसमें किशन नामक ग्रामीण युवक हिन्दी में पी.एच.डी. करने की आड़ में परिवार को छोड़कर शहर में आ जाता है। वह उच्च शिक्षा और शोध की मरीचिका में विस्मृत कर बैठा है। उपन्यास में वर्तमान शोध व्यवस्था की सार्थकता और उपादेयता पर एक विराट चिन्ह लगाये हुए है।

किशन एम.ए. में तीसरे डिविजन के कारण उसे विश्वविद्यालय में एडमिशन नहीं मिलता। सोमेश्वर और उदय उसके दोस्त हो जाते और साथ देते हैं। वह शोध की उपाधि हासिल कर लेता है। इसी बीच उसी के साथ पढ़ने वाली 'उमा' के साथ विवाहोत्तर यौन सम्बन्ध रखना चाहता था। उमा को पति विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे और वे राजनीतिक हथकंडों के लिए विशेष रूप से जाने जाते थे। किशन शैक्षणिक भ्रष्ट नीति को देखकर शिक्षा को छोड़ राजनीति में घुसना चाहता था। मगर उदय के कारण उस रास्ते से वापस शिक्षा के स्तर में पहुँच जाता है। अपनी जिम्मेदारियों से विमुख होने से बचता है। किशन के माध्यम शोध करने का रहस्य उजागर होता है। शोध में शोध नहीं करते बल्कि गाइड के परिवार में नौकरों का काम करना पड़ता है। शोध करने वाले उच्च घराने के हो या राजनीतिक से सम्बन्ध रखने वाले हो उनको कोई कष्ट के बिना शोध नहीं होता है।

अर्थात् उसकी शोध उपाधि उसके पति के द्वारा आसानी से मिल जाती है, मगर किशन नहीं। उपन्यास में शैक्षणिक शिक्षा के भ्रष्ट नीति को उजागर किया है। किशन और उमा दोनों की शादी होने के बावजूद भी उनका अस्थायी अवैध सम्बन्ध संस्कृति के विरुद्ध होता है।

## 2.17 जिद्दी - इस्मत चुगताई

'जिद्दी' उपन्यास सामाजिक संरचना से जुड़ी हुई है। इसमें वर्ग संघर्ष के कारण अन्तर्जातीय विवाह नहीं हो पाता। इसका अंतर्विरोध ही होता है। इस उपन्यास में हरिजन प्रेम का पाखंड करने वाले राजा साहब का पर्दाफाश भी करता है, साथ ही औरत पर औरत के जुल्म की दास्तान भी हुई है।

इस उपन्यास में दो पात्र हैं - पूरन और आशा। पूरन एक अर्द्ध - सामंतीय परिवेश में पला बढ़ा नौजवान है जिसे बचपन से ही वर्गीय श्रेष्ठता बोध का पाठ

पढ़ाया गया है। उसने राजसी वैभव से मुक्त अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के निर्माण की जिद्द पकड़ी हुई है। वह आशा नाम लड़की जो उसके खानदान की आया (बच्चों को खिलाने वाली स्त्री) की बेटी है। नौकरानी आशा के प्रति पूरन आसक्त हो जाता है। वर्गीय हैसियत का अंतर इस प्रेम को एक त्रासदी में बदल देता है। पारिवारिक दबाववश उसका विवाह शांता के साथ हो जाता है। आशा और शांता का जीवन एक साथ ही उजड़ जाता है। वे दुःख को एक जैसा ही भोगती है। मगर शांता उसके दोस्त के साथ भाग जाती है। दोनों स्त्रियाँ इसी नैतिक संकोच की बलि चढ़ी है। फिर अन्त में पूरन आशा को देख लेता है और अलग चला जाता है।

उपन्यास में दाम्पत्य जीवन का विघटित मूल्य दर्शाया है। वर्ग हैसियत के कारण अन्तर्जातीय विवाह का अन्तर्विरोध हुआ है।

## 2.18 दौड़ - ममता कालिया

‘दौड़’ उपन्यास की कथा उस मनुष्य की कथा है जो बाजार के दबाव - समूह, उनके परोक्ष अपरोक्ष मारक, तनाव, आक्रमण और निर्ममता तथा अंधी दौड़ में नष्ट होते मनुष्य के आसन्न खतरे में पड़े मनुष्यत्व को उजागर करती है।

यह रचना मनुष्यों की पारस्परिक संबंधों की परंपरा और वर्तमान की जटिलताओं के मध्यवर्गीय मनुष्यों के बीच विकराल होते हुए उनमें सूक्ष्म अंतराल को दर्शाया है।

आर्थिक उदारीकरण ने मनुष्यों को बाजारी व्यवस्था को महत्व दिये है यानि अर्थ के पीछे दौड़ने वाले अंधी दौड़ को कहा है जिसने अपने पारस्परिक रिश्ते-नाते को अनुदार, मतलबी और अर्थ-केन्द्रित बना दिया है। वे बिगड़े हुए वातावरण में भी आज संबंध अपने ही मतलब से रहने लगे। इस कारण सम्बन्धों के मूल्य और अर्थ बदल गये हैं। आज मनुष्य-मनुष्यता का प्रमाणित नहीं रहा।

इस उपन्यास में शरद-दीपेन्द्र, रोजविन्दर और शिल्पा इंडिया लीवर दूधपेस्ट डिविजन कम्पनी में एक साथ काम करते हैं। सभी अपने परिवार को छोड़कर पैसे कमाने में तुले हुए हैं। इस उपन्यास के कथा में पवन आई.आई.एम. पढ़ाई करता है और धीरे-धीरे उसे दूसरे राज्य में नौकरी मिल जाती है। और वहीं स्तेला नामक लड़की को चाहता है और उसी से विवाह भी करता है मगर स्तेला और पवन एक साथ नहीं रहते क्योंकि स्तेला पैसे कमाने 'स्टेट्स' चली जाती है। इनका दाम्पत्य जीवन भी इन्टरनेट एवं फोन के द्वारा ही होता है। संस्कृति के बदलते रूप को उजागर किया है।

पवन का छोटा भाई सघन जो अपने भाई से अत्यधिक प्रेम करता था, वह भी अपने भाई की तरह पैसे कमाने अलग जगह चला जाता है। परिवार में इनके माता-पिता अकेले ही जाते हैं। वे नहीं चाहते कि बेटे अलग जगह पर रहे इनके दुख पर संवेदना दिखाने वाला भी कोई नहीं रहा।

अर्थात् उपन्यास के द्वारा नगरीय जीवन के त्रासदी को उजागर किया है। मनुष्य अर्थ के पीछे भागने लगा। इस कारण परिवार, दाम्पत्य आदि रिश्ते शून्य बन गये हैं।

## 2.19 काली सुबह का सूरज - रामधारी सिंह दिनकर

'काली सुबह का सूरज' उपन्यास रामधारी सिंह दिनकर के द्वारा लिखा गया है। इसमें समष्टि परिवार को ही चित्रित किया है। मगर यह समष्टि व्यष्टि की ओर उन्मुख हुआ है। यह समष्टि अर्थ के कारण अलग हो जाते हैं। खून के रिश्ते ही भाई और बहन के जीवन को अपने स्वार्थ विचारों के कारण जीवन बर्बाद कर देते हैं।

उपन्यास का पात्र नरेन्द्र शहर में प्राध्यापक होता है। उसी की इच्छा के अनुसार विभा नामक लड़की से विवाह कर लेता है। वह भी स्वच्छंद विचार की होती है। जिसमें दोनों ही नौकरी करने वाले हैं। शहरी वातावरण में जीवनयापन करते हैं।

नरेन्द्र का छोटा भाई दिनेश जो अर्द्धविकसित बुद्धि होने के कारण इलाज के लिए उसकी माँ, बुआ उसके साथ भेज देते हैं। मगर शहर में विभा और उसका भाई उसे बोझ समझने लगते हैं और उसकी भाभी दिनेश पर अत्याचार करने लगती है। भारतीय संस्कृति के अनुसार भाभी माँ होती है। नरेन्द्र अपने दाम्पत्य जीवन में बाधा होने के कारण उसे वापस भेज देता है।

उसी प्रकार नरेन्द्र अपनी मुँह बोली बुआ की लड़की की शादी एक अधेड़ उम्र वाले से रिश्ता तय कर देता है। उसकी बुआ नरेन्द्र के पढ़ाई में अपने सभी गहने बेचकर पैसा देती है। मगर कृतज्ञता के भाव में भी उसकी लड़की की शादी अच्छे रिश्तों में नहीं करता बल्कि अधेड़ उम्र वाले से रुपये लेकर बहन का जीवन बर्बाद करता है। उसकी बहन भी मुश्किल से स्वीकृति दे देती है। क्योंकि संस्कार में आये बारात को जाना अपशकुन मानते हैं। फिर लड़की की शादी होना मुश्किल हो जाती है। गरीब होने के कारण कोई और रिश्ता आना भी मुश्किल बन जाता है। इस कारण उसकी बुआ शादी करने को कहती है।

इस उपन्यास में आर्थिक तंगी के कारण मूल्य विघटन की स्थिति को उजागर किया है। मनुष्य अर्थ लोभी होने के कारण इन्सानियत को ही खो देता है। मनुष्य स्वार्थी बन जाते हैं। आर्थिक विषमता व विपन्नता के कारण दहेज न देकर नरेन्द्र अपनी बहन की शादी अधेड़ उम्र वाले आदमी से कर देते हैं।

## 2.20 पिंजरे के पंछी - राजदेव प्रियवंर

यह उपन्यास जमींदारी व्यवस्था और मजदूरों के बीच के सम्बन्धों को लेकर लिखा गया है।

उपन्यास की नायिका सीमा गाँव के जमींदार के लड़के कृष्णकुमार से प्रेम करती है। दोनों एक दूसरे को चाहते हैं और शादी करना चाहते थे। सीमा अपने भाई

हेमन्त से कहती है। हेमन्त अपने हैसियत को सोचता है। फिर भी बहन की इच्छा पूरी करने के लिए पूछने जाता है। अगर वे पसन्द नहीं करते थे तो मना कर सकते थे। वे हेमन्त को अपमानित कर देते हैं। और दो लाख की रकम दहेज में पूछते हैं।

इस बीच जमींदार इन्द्रसेन अपने बेटे कृष्णकुमार की इच्छा के विरुद्ध सीमा को अपने चमचे शकुनि द्वारा हड़पने का षड़यन्त्र रचता है। शकुनि और तीन गुण्डे सीमा को अचेतन कर बलात्कार कर देते हैं और वैश्यावृत्ति में भेज देते हैं। सीमा वहाँ से भागकर धर्माश्रम में पहुँच जाती है। कृष्णकुमार यह सुनते ही घर से बाहर सीमा को ढूँढने जाता है। धर्माश्रम में साधु उसको हड़पने की कोशिश करता है। वहाँ से भाग कर आ जाती है।

कृष्णकुमार सीमा को ढूँढने एक राजनीति नेता जगमोहन के घर में आश्रय लेता है। नेता की पत्नी सुमिता आदर्शमयी है और उसका पति सभी अनैतिक कार्य करता है। दूसरी नारी को रखैल मोनिका को रख लेता है। उसी के सामने सहधर्मिणी का अत्याचार करता है। इसे सहे बिना कृष्णकुमार बाहर निकल जाता है। सीमा और कृष्णकुमार मिल जाते हैं। और कृष्ण सीमा के हुए अत्याचार को जानते हुए उसे अपना लेता है। यहाँ गाँव में इन्द्रसेन की गलती का पश्चाताप करता है। हेमन्त बहन की चिन्ता में मरीज बन जाता है अन्त में सीमा को देखने के बाद मृत्यु हो जाती है।

उपन्यास में समाज में चलने वाली कुरीतियों को उजागर किया है। धर्म के साधु सन्त नारी को भ्रष्ट करना चाहते हैं। साधुओं की कथनी में जो विरोधाभास है इसका उपन्यास में चित्रण हुआ है।

## 2.21 जर्जर सेतु - देवराज पथिक

इस उपन्यास में आम आदमी की जिन्दगी का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में समष्टि परिवार के विघटन के साथ समाज में आधुनिकता बोध भारतीय सांस्कृतिक का ह्रास एवं अवमूल्यन को चित्रित किया है। उपन्यास में नैतिक मूल्यों का पतन, परिष्कार एवं मानवीय संस्कारों का व्यापक दृष्टि का संकल्प किया गया है। इस कथा में व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और मानव के संस्कारों को उजागर किया है।

उपन्यास में चित्रित समष्टि परिवार में चार भाई एक बहन होते हैं। सबसे बड़ा शीलभद्र जो अपने तीन भाइयों को अपने बेटों की तरह पालता है। लेकिन भाइयों के विवाह के बाद पत्नियों के कारण वे उस परिवार से अलग हो जाते हैं। सब के सब अपने बड़े भाई की उन पर जो सेवाएँ थी सब को भूलकर अपने-अपने वैयक्तिक आनन्द को पाने की होड़ में लग जाते हैं। परिवार में खर्च करने के लिए तैयार नहीं होते। इस कारण समष्टि व्यष्टि की ओर उन्मुख हुआ है। उपन्यास में भाई-भाई का प्यार दिखाया है, मगर जेठानी-देवरानी के बीच बेरुखा व्यवहार ही हुआ है।

उपन्यास में भाभी व ननद के बीच की ईर्ष्या भाव को उजागर किया है। ननद अपनी शादी में कम दहेज मिलने के कारण सोचती है भाभी ने ही सब हड़प लिया है। इस कारण द्वेष भावना जागृत कर उसकी बेटी की शादी यानी भतीजी की शादी गंवार युवक से करवाकर बदला लेती है।

उपन्यास में दाम्पत्य जीवन के द्वारा आर्थिक मूल्यों में विघटन की स्थिति का चित्रण किया गया है। छोटी देवरानी निशा पैसों के लोभ में पत्नी के दायित्व को भूलकर बड़ी चतुराई से अपने जेठ दीपक से कहती है कि उसका पति पवन पागल हो गया है। उपन्यास के माध्यम से दाम्पत्य जीवन अस्वस्थ बना है। समष्टि का विघटित रूप दर्शाया है। मनुष्य अर्थ लोलुपता के कारण मानव के खून रिश्तों सम्बन्धों को ही



भूल रहे हैं। इसमें आर्थिक विघटित मूल्य, रिश्तों के बिखराव आदि को उजागर किया है।

## 2.22 समय सरगम - कृष्णा सोबती

‘समय सरगम’ उपन्यास कृष्णा सोबती का उपन्यास है। युगांतर पीढ़ी के वैचारिक भिन्नता को प्रकट करता है। जिसके तहत आधुनिक और पुरानी पीढ़ी के दो छोरों को उपन्यास में समेटा हुआ है। नैतिक मूल्यों का पतन बखूबी से दिखाया है। जब आज की युवा - पीढ़ी बड़े बूढ़ों का अनादर करती है, उनकी मरजी के मुताबिक नहीं चलती है। उपन्यास में निम्न वर्ग लोग अपने बच्चों को शिक्षित करना चाहते थे। आर्थिक तंगी होने के बावजूद धोबी अपने बच्चों को शिक्षित करता है। धोबी कहता है मैं तो पुश्तैनी काम को अपने बच्चों को करने नहीं दूंगा। उनका विचार है शिक्षा बच्चों को भविष्य में बेहतर नौकरी दिलवायेगी।

इसमें दार्शनिक विचारों का प्रकटीकरण गुरुजी के माध्यम से किया गया है जब वे मानते हैं कि हमें कर्म करते रहना चाहिए फल हमें कर्मों के मुताबिक ऊपर वाला देता है। आज के शिक्षित वर्ग को भी अंधविश्वास में जकड़ा हुआ दर्शाया है। आरण्या द्वारा लाये गये केक को बहादुर कूड़े में फेंक देता है तो ईशान कहता है कि उसके सिर पर देवता सवार है। इस पर नरसिंह उतरता है। उपन्यास के उग्र चित्रण में मानव जीवन में अर्थ की प्रधानता बतायी है। जिसके तहत परिवार में शान्ति, समृद्धि तथा सम्पन्नता लाने का माध्यम धन है। सुख आत्मिक अनुभूति यही सब आर्थिक क्षमता का किस्सा है। न्याय को अन्याय होते हुए दिखाया है। भ्रष्टाचार और रिश्वत का बोलवाला व्याप्त है। सामान लूटकर ले जाते हैं। वह पुलिस में रिपोर्ट भी दर्ज करना चाहती है पर उसे फोन तक करने की भी सुविधा नहीं मिलती। इस तरह उपन्यास में धार्मिक, रूढ़िवादी विचार व मिली-जुली युगांतर पीढ़ी की समालोचना की गई है।

## 2.23 सयुक्ताक्षर – राजेन्द्र पाण्डेय

इस उपन्यास में रामअवतार की दो बेटियों के माध्यम से दहेज की समरूप पर विचार किया गया है। रामअवतार की पहली लड़की का विवाह अपने पास जो भी था उसे दहेज के रूप में देकर अच्छे घराने के लड़के से शादी करवा देता है। लेकिन दूसरी लड़की श्यामा का विवाह दहेज न देने की स्थिति में एक अधेड़ आदमी, विश्वेश्वर से करवाता है।

श्यामा शादी के पूर्व शम्भू नामक लड़के से प्रेम करती थी। जब शम्भू आई.ए. एस. बन जाता है तब वे रिश्ता तोड़ कर अलग जगह लड़की ढूँढने लगते हैं। यहाँ आर्थिक अंधी दौड़ के कारण मानव-मानव के प्रति मूल्य संकीर्ण बन जाता है। इस कारण रामअवतार श्यामा का विवाह अनमेल व्यक्ति से बिना दहेज शादी कर देता है।

श्यामा विवाह पूर्व प्रेम को भूल नहीं पाती है। इसलिए वह अपने पति को पूरी तरह अपना नहीं पाती। भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी विवाह के पश्चात् पति को ही सर्वस्व मानती है। उसकी मानसिक और शारीरिक में पति का ही अधिकार बनता है। नारी या पुरुष शादी के बाद किसी और को चाहता है तो वह संस्कार के विरुद्ध व पाप बनता है।

उपन्यास के अन्त में पड़ोसन के परिवार में नारी अपने बच्चों के साथ घूमने से हिचकाती है। वह कहती है कि 'मुझे असुविधा होगी।' यह घटना श्यामा के आंतरिक मन में छिपी हुई भावना को दिखाता है। दृश्य को देखकर खुद-ब-खुद अपनी गलती का पश्चात्ताप करने लगती है और पति को अपनाने लगती है। भारतीय

## 2.24 चुटकी भर चन्दन - राजेन्द्र पाण्डेय

राजेन्द्र पाण्डेय के द्वारा रचित उपन्यास 'चुटकी भर चन्दर' धार्मिक व राजनीतिक के पत्र-पत्रिकाओं के नीति व्यवहार को उजागर किया है।

उपन्यास का नायक प्रभात अपने परिवार को छोड़कर नौकरी के लिए शहर पहुंचता है। वहाँ ढंग की नौकरी न मिलने के कारण वहाँ के आश्रम में सेवक का काम करने लगता है वही आश्रम पर ढोंगी व धर्म के जरिए पाखंडी साधु-सन्त धन इकट्ठा करने लगे। नौजवान लड़के-लड़कियों को गलत रास्ते पर ले गये। वहाँ के सन्यासी नारियों का चीर हरण करने लगे। प्रभात उसी शहर में अपने खोयी हुई बाल्या प्रेमिका चिदंबरा को देखता है, उसका भी यही हाल होता है।

चिदंबरा प्रभात को देखकर भी अनजान बन जाती है। चिदंबरा अपने आर्थिक दयनीय स्थिति के कारण वैश्या बन जाती है। उस कारण प्रभात की तीन भेटों पर भी पहचान देने में असमर्थ बन जाती है।

प्रभात इस आश्रम के धार्मिक अत्याचारों को सह नहीं पाता। वहाँ पत्रकारिता में काम मिलता है। जब पत्र के जरिये चिदंबरा से इन्टरव्यू लेता है तब उसको देखकर अपना काम पूरी निष्ठा से नहीं कर पाता। उसे काम से निकाला जाता है। फिर उसे कहीं नौकरी नहीं मिलती। चिदंबरा अन्त में मदद करती है और अपनी असलियत बता देती है। प्रभात चिदंबरा की कथा सुनकर, वैश्या होने के बावजूद उसे अपना लेता है और गाँव ले जाता है। यह घटना उसके श्रेष्ठ मानवीय गुणों का प्रमाण है।

आज धर्म ठेकेदार साधु-सन्त पूजा कर्मकाण्ड के नाम पर पाखंड फैलाते हैं। वे

## 2.25 अपनी सलीबे - नमिता सिंह

इस उपन्यास में लेखिका नमिता सिंह के धार्मिक मूल्य को दृष्टिगोचर किया है। उपन्यास की नायिका नीलिमा ईशू नामक नीच जाति से प्रेम कर ब्याह कर लेती है। यह एक अंतर्जातीय विवाह है। नायिका नीलिमा ईशू के चरित्र, पढ़ाई उसके अच्छे गुण से प्रभावित होकर विवाह करती है। मगर ईशू निचली जाति का होने का पता चलने के बाद उसके पति से अलग होकर एक महिला कॉलेज में लेक्चरर का काम ढूँढ लेती है, वहीं हॉस्टल में रहने लगती है। अन्त में नीलिमा की माँ सुमित्रा देवी के कहने समझाने के बावजूद दाम्पत्य मूल्य को जान लेती है।

इसमें छूआछूत की जाति-भेद का उजागर किया है। लेखिका कहती है - 'दरअसल ईशू खुद भी भीतर तक हिल गया था। नीलिमा उसे फिर उन्हीं अंधेरों में ढकेलने का प्रयास कर रही थी जहाँ वापस लौटने का अर्थ ईशू के लिए आत्महत्या होता। वह इस दुनिया को बहुत पीछे छोड़ आया था जहाँ रोज मरना और रोज जीना मजबूरी है। उसने अपने हर कदम के लिए चट्टान तोड़ी थी, इसलिए कि वह ऐसे माँ - बाप से जन्मा था जिन्हें छूट लेने भर से लोग इन्सार नहीं रह पाते। ऐसे माँ-बाप उसे दुनिया में लाये थे जिनके हिस्से में समाज अपनी जूठन और तलाछट ही फेंकता है।

यह कहानी आज की बदलती सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों में एक और खड़िगत पूर्वग्रहों और संस्कारों तथा दूसरी ओर यथार्थ और मानवीय नैतिक मूल्य के संघर्ष और अन्तर्द्वन्द को चित्रित किया है।

## 2.26 सूखे आँसू - सविता राघव अविनाश

'सूखे आँसू' उपन्यास की लेखिका सविता राघव अविनाश द्वारा लिखित नारी के संघर्षमयी जीवन को प्रकट करता है। सरला देवी के पति प्रताप सिंह शराब के नशे

में, दूसरी औरत के संसर्ग में अपनी पत्नी पर अत्याचार करता है। भोग-विलास का जीवन चाहता है। उनका बेटा विजय अपनी माँ पर बेवजह हो रहे अत्याचारों के खिलाफ नारा उठाता है और वह माँ से तलाक लेने के लिए कहता है। पर सरला देवी भारतीय नारी तुल्य है। वे अपने पति को देवता तुल्य मानती है। अपना जीवन सात-फेरों के कारण दाँव पर लगा देती है। उसे भय रहता है कि समाज में तलाकशुदा नारी को हेय दृष्टि से देखें, माँ के साथ-साथ बेटे के चरित्र पर लांछन लगते हैं।

विजय शंकर नामक बदमाश के चंगुल से एक नारी को बचाते हुए अपने प्राणों की आहुति दे देता है। इस कारण शंकर के प्रति विजय की बहन संध्या आक्रोश उत्पन्न हो गया है। संध्या एक डाक्टर है, उसके पास शंकर इलाज के लिए आता है पर अपने भाई के कातिल का इलाज करने के लिए वह इन्कार कर देती है। शंकर की बहन सोचती है कि एक गरीब है इसलिए मेरे भाई का इलाज कौन करेगा। धन-दौलत की चकाचौंध में डाक्टर भी स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने कर्तव्य से विमुख हो रहे हैं। पर अन्त में कर्तव्य बोध का आभास होते ही संध्या शंकर का ऑपरेशन करती है। विजय असामयिक मृत्यु उसकी मौत पर शोक मना रही है। अन्त में कैप्टन विजय की मौत पर उसका शरीर तिरंगे झण्डे में लिपटा यह सन्देश दे रहा है कि सब कुछ नाशवान है, क्षणभंगुर है।

## 2.27 तीसरा मोड़ - महेश गुप्त

महेश गुप्त का उपन्यास 'तीसरा मोड़' में ईश्वर की सृष्टि में सर्वोत्तम कृति मानव को माना है। साहित्य, कला, शिक्षा, दर्शन, युद्ध, विनाश, मनोविज्ञान इत्यादि प्रक्रियाओं का केन्द्र बिन्दु मानव है। लेकिन भावुकता तथा मौलिकता के मध्य विचरण करता मानव जितना शक्तिशाली है उतना दुर्बल भी।

उपन्यास का नायक देवव्रत विभिन्न स्थितियों से उभरता हुआ सुख-दुःख से परे एक ऐसी तीसरी श्रेणी में पहुँचता है जहाँ न सुख है न दुःख, न मान न अपमान, और न ही कोई मोह।

देवव्रत के पिता की असामयिक मृत्यु के कारण परिवार में आर्थिक संकट के बादल मंडराने लगते हैं। आर्थिक विकटताएँ देवव्रत की माँ को स्वावलंबी बनाती हैं। उसे समाज में अपनी पृथक् पहचान बनाने को प्रेरित करती है और वह सिलाई, बुनाई करके अपना तथा देवव्रत का जीवन निर्वाह करती है।

नेताओं की नेतागिरी का चरित्रांकन हुआ है जब देवव्रत की अध्ययन कुशलता का राज्य के शिक्षामंत्री का बेटा विजय देवव्रत का सहपाठी है सहन नहीं कर पाता और देवव्रत पर पेन चुराने का झूठा इल्जाम लगाकर उसे विद्यालय से निष्कासित करवा देता है। देवव्रत बेकसूरवार होते हुए भी सजा भुगत रहा है और विजय मंत्री का बेटा होने के कारण कसूरवार होते हुए भी सजा से परे है। देवव्रत विद्यालय से निष्कासित होकर एक साइकिल स्टोर पर नौकरी करता है। दूषित वातावरण के उपरांत भी मानव में एक श्रेष्ठता बची हुई है। इसमें मानव ही मानव के काम आता है।

सूर्यकांत देवव्रत से प्रसन्न हो मानवीयता का परिचय देते हुए उसे उद्योग धन्धा खुलवाने में मदद करता है। देखते ही देखते मेहनत और लगन से पाँ-पाँच फैक्टरियों का मालिक बन जाता है। देवव्रत सूर्यकांत की नातिन पूजा को हॉस्पिटल खोलने के लिए तीन लाख रुपये देता है उसके बेटे इस पर आपत्ति उठाते हैं। पर देवव्रत मानवीयता का प्रदर्शन करते हुए कह रहा है कि तुम्हें नहीं मालूम, उनका मुझ पर कितना अहसान है। आज की पीढ़ी अहसान फरामोश नहीं। देवव्रत का ज्येष्ठ पुत्र विनायक कहता है कि भावनाओं से रुपया नहीं कमाया जाता, पापा को क्या अधिकार है तीन लाख रुपये देने का। पुत्र की बात पिता को धन विरक्ति की ओर उन्मुख

करती है और वह सुख, दुःख, राग, द्वेष, भय, क्रोध को छोड़कर एक तीसरे मोड़ की ओर अग्रसर होता है।

जीवन में सुख-दुःख, व्यवस्था-अव्यवस्था आती रहती है। उलझाव व विसंगतियों से अलग आत्म निर्णय का स्वर उपन्यास में है। जीवन की यथार्थता का सिद्धहस्त चित्रण महेश गुप्त ने किया है।

## 2.28 मंगल सूत्र - बृजलाल हांडा

‘मंगल सूत्र’ में चन्द्र और चन्दा के बचपन की क्रीड़ा, स्नेह, ममत्व आदि को दर्शाता है। चन्द्र एवं चन्दा के बीच बाल्यावस्था का स्नेह कब यौवन प्रेम में परिवर्तित हो जाता है पता ही नहीं लगता, परन्तु विधि को उनका मिलना मंजूर नहीं होता। चन्दा के माता-पिता उसकी शादी एक सम्पन्न परिवार में कर देते हैं। उधर चन्द्र के माता-पिता उसे शिक्षा हेतु शहर भेज रहे हैं। हताश चन्द्र शहर आकर कॉलेज में दाखिला लेता है। उसी कॉलेज में चन्द्र के मामा का लड़का गुड्डू भी पढ़ता है। गुड्डू एक बिगड़े हुए लड़के के रूप में दिखाया गया है। वह मदिरापान करता है। उसके मन में पैसा कमाने की ललक है, जिसके लिए वह फिल्मी दुनिया में प्रवेश के लिए प्रयास करता है। अचानक एक दिन उसके दरवाजे पर पुलिस वाले दस्तक देते हैं। वे कहते हैं कि गुड्डू ड्रग्स का धन्धा करता है।

चन्द्र अपनी माँ की मृत्यु का समाचार सुनकर अपने घर जाता है। वह चन्दा से भी मिलने जाता है। उसके वैभवशाली घर को देखकर दंग रह जाता है। चन्द्र के जीवन में दूसरी लड़की पायल आती है जो चन्द्र की क्लासफेलो (सहपाठी) है। वह चन्द्र से प्यार करती है। पायल के परिवार में आर्थिक तंगी का वातावरण है जिसके कारण उसके माता-पिता अपनी बेटी पायल की शादी दो बच्चों के पिता एक रंडुए से करने की सोचते हैं।

यहाँ रानीतिक हलचलें चलती रहती हैं। जिसमें चन्द्र की मुलाकात शरणबंधु नेता जी होती है। चन्द्र तथा शरणबंधु मिलकर समाज सेवा का काम करते हैं। वे गरीबी तथा समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार व शोषण को समाप्त करना चाहते हैं। चन्द्र मजदूरों की हर मांग को लेकर हड़ताल पर गायब हो जाता है। वहाँ से भागकर ऋषिकेश पहुँचता है। जहाँ उसके जीवन में तीसरी लड़की सुवर्णा आती है जो कि एक विधवा नारी है। सुवर्णा भी चन्द्र से प्यार करती है पर उसके प्यार में वैधव्य जीवन आड़े आता है। इसलिए वह चन्द्र को वहाँ से जाने के लिए कहती है। चन्द्र उसका घर भी छोड़ देता है और अपने एक सहायत्री महेश के साथ कुल्लू पहुँचता है। वह एक शिक्षित बेरोजगार है और अपनी पत्नी के जेवर बेचकर धन जुटाता है और सेब के बगीचों का मालिक बन बैठता है जिसे वह कर्म का फल मानता है।

सुवर्णा चन्द्र को अपने सारे गहने देकर उसकी सहायता करना चाहती है। पर चन्द्र उपन्यास के अन्त में सुवर्णा को उसकी धरोहर लौटाना चाहता है। वह सुवर्णा के गले में मंगलसूत्र डाल देता है और सुवर्णा की माँग भर देता है। यही उसकी मंजिल है।

## 2.29 टूटते बनते रिश्ते - योगेन्द्र प्रताप सिंह

‘टूटते गाँव बनते रिश्ते’ ग्रामीण समस्याओं पर आधारित योगेन्द्र प्रताप सिंह का उपन्यास है। इसमें पूँजीपति वर्ग का मजदूरों पर शोषण हुआ है। जिसे देखकर ओलिया के मन में आक्रोश होता है और वह कहता है कि ऊँची जाति के लोग अभी भी निचली जाति वालों का शोषण करते हैं, हमें इसे सहन नहीं करना चाहिए।

उपन्यास में न्याय भी बिकाऊ बताया गया है। रघु पढ़ा - लिखा है। गाँव के प्रधान की चाकरी न करने पर उस पर मवेशी चुराने का झूठा आरोप लगा दिया जाता है और जब वह न्याय पाने जाता है तो वहाँ भी पेशकर के लिए रिश्वत ली जाती है।



मुकद्दमें की तारीख लगाने की भी रिश्वत मांगी जाती है। पुलिस तथा वकील न्याय का जामा पहने हुए निम्न वर्ग को रिश्वत देने को मजबूर करते हैं, जो कि एक जुल्म है। प्रशासनिक भ्रष्टाचार, नेताओं की नेतागिरी का बोलबाला है। शिक्षित बेरोजगारी रघु के माध्यम से बतायी गयी है। भ्रष्टाचार के कारण रघु शिक्षित होते हुए भी बेरोजगार है। क्योंकि उसके सिर पर किसी नेता का हाथ नहीं। वर्ग भेद का चित्रण भी हमें देखने को मिला है। एक ओर तो प्रधान के कुत्तों और दलालों के नाम जमीन लगी है क्योंकि वे प्रधान के मुताबिक हैं, दूसरी तरह रघु प्रधान के इशारों पर नहीं चलता है जिसके कारण उसे स्वयं की भूमि से बेदखल किया जाता है। यह कहाँ का न्याय है।

उपन्यास में अन्धविश्वास अभी व्याप्त है। रघु की माँ के मरने पर चौधरी की बेटी रामरती रघु से दस दिन तक जमीन पर सोने को कहती है क्योंकि दाग देने वाले को भूत-पिशाच का डर रहता है। अब रघु के माध्यम से गाँव के लोगों को शिक्षित करने के लिए पाठशाला खोलना उसकी शिक्षा के प्रति जागृति करता है। इस उपन्यास में नैतिकता, जीवन-मूल्य और भूमि संबंधों के बदलाव में गाँव को खंड-खंड कर दिया है।

### 2.30 गौरी - राजेन्द्र शर्मा

‘गौरी’ उपन्यास विधवा नारी जीवन की त्रासदी पर आधारित है। इस उपन्यास की मुख्य नायिका गौरी एक विधवा तथा असहाय नारी है। गौरी के पति की हत्या गाँव के जाने माने गुण्डे जुमना पाण्डे ने की है। यद्यपि अपने पति की मृत्यु के पीछे गौरी

संघर्ष और विपत्तियों से जूझती हुई गौरी महिलाश्रम में शरण लेती है। वहाँ पर भी नारी जीवन का सौदा होता है। धनलोलुपता के कारण नारी ही नारी के शोषण का कारण बताया गया है।

चारों तरफ भ्रष्टाचार नौकरशाही व्याप्त है। जमींदार गंगा पांडे का बेटा जमना पांडे गौरी के साथ छेड़-छाड़ करता है जिसे गौरी के पिता सहन नहीं कर पाते और आक्रोश में कहते हैं हम गरीब है तो क्या हमारी भी इज्जत है। गौरी जहाँ भी जाती है उसकी बदनसीबी उसका पीछा करती है। वह गाँव छोड़कर हरिद्वार जाती है। वहाँ भी होटल का मैनेजर नारी का सौदा करता है। नारी पर हो रहे अत्याचारों के कारण गौरी के मन में पुरुषों के प्रति आक्रोश उत्पन्न होता है और वह कहती है आखिर क्यों? समाज में नर पिशाच है जो नारी का सौदा करते हैं, उसे खिलौना समझते हैं, उसे धोखा देते हैं।

आर्थिक तंगी के कारण एक पिता अपनी बेटी को सुरती को कांग्रेसी एम.एल.ए. को बेचता दिखाया है। धर्म की आड़ में पांखड़ी, ढोंगी लोग बड़ा-बड़ा तिलक लगाकर मुसीबत की मारी युवतियों से पैसा कमाते हैं। रिश्तत, घूस के माध्यम से बड़े से बड़ा पाप करके भी सजा नहीं मिलती। जमना गाँव की लड़कियों की इज्जत लूटता है। पर पुलिस उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाती क्योंकि वह पुलिस के सिपाहियों को बोतल पिलाता है। उपन्यास में आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्रों में व्याप्त मूल्य विघटन स्थिति का चित्रण किया गया है।

### 2.31 अक्षरों के आगे मास्टरजी - भैरव प्रसाद गुप्त

‘अक्षरों के आगे मास्टरजी’ उपन्यास भैरव प्रसाद गुप्त द्वारा लिखित है। इसमें मास्टरजी तथा मास्टरनी के माध्यम से दाम्पत्य जीवन को उल्लेखित किया है। मास्टरनी विवाह के पन्द्रह वर्ष के बाद तक जब माँ नहीं बन पाती, मास्टराइन को उनके पड़ौसी

डॉ. के यहाँ जाने की सलाह देते हैं पर मास्टरजी अंधविश्वास को नहीं मानते। वे कहते हैं कि भगवान की इच्छा के बिना कोई काम नहीं चलता। वैज्ञानिक हो या बुद्धिजीवि, शिक्षित हो या अनपढ़, ईश्वरीय शक्ति के बिना वह कुछ भी उपलब्ध नहीं कर सकता। साधु-सन्त की ढकोसलेबाजी का भी यहाँ प्रदर्शन है पर मास्टरजी इसका विरोध करते हैं। वे मानते हैं सन्त, फकीर, औलिया और पादरी समान रूप से मनुष्य को संसार की नश्वरता का, मृत्यु का, नरक की यातना, पूजा-पाठ को कुंठित कर देती है।

मानव शरीर की नश्वरता को महात्मा बुद्ध द्वारा एक स्त्री को समझाते हुए दिखाया गया है। अपने पुत्र के मरने पर जब वह उसे पुनः जीवित करना चाहती है तो वे समझाते हैं कि मृत्यु तो एक सामान्य घटना है जो सब चीजों के साथ घटित होती है। मास्टरजी के जरिए प्रदर्शित किया है कि सामाजिक एवं पारिवारिक सुख में धर्म, दर्शन, नियम और कानून सहायक होते हैं जो शाश्वत नहीं होते। युग परिवर्तन के साथ-साथ ये परिवर्तित हो जाते हैं और उनका स्थान नये धर्म-दर्शन आदि ले लेते हैं।

## 2.32 अभिज्ञान - नरेन्द्र कोहली

नरेन्द्र कोहली का 'अभिज्ञान' दार्शनिक पृष्ठभूमि को लेकर लिखा गया है। इस उपन्यास की रचना 'कर्म सिद्धान्त' की पुष्टि को समझने के लिए की गयी है। उपन्यास के आरंभ में सुदामा को आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है। पर पुरुष की अहम् भावना अपनी पत्नी की नौकरी नहीं करने देती। सुदामा की पत्नी सुशीला में नारी अस्मिता के गुण होते हैं। नारी का भरण-पोषण नहीं कर सकता तो क्या भूखी मर जाएगी। उपन्यास को गति प्रदान श्री कृष्ण तथा सुदामा के मध्य संवाद तथा वार्ता के द्वारा किया गया है। जिसमें श्रीकृष्ण सुदामा को उपदेश में निष्काम कर्म का उपदेश देते

7-5962

हैं। वे कहते हैं इन्सान को कर्म करते रहना चाहिए। फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए। फल की इच्छा कर्म की संकुचित तथा फल को सीमित करती है। निष्काम कर्म व्यक्ति के स्वार्थ को संयत करने का प्राकृतिक सिद्धांत है।

श्री कृष्ण अग्र भाग में सार्वजनिक हित को मान्य मानते हैं। उनके अनुसार अपनी ही पीढ़ी नहीं अगली पीढ़ियों के विषय में भी सोचना चाहिए। सांसारिक भोग-विलास आवश्यकता से अधिक संजय करना बुरा है क्योंकि इससे कुछ लोग अपना जीवनयापन भी नहीं कर पाते हैं और कुछ आरामतलब जीवनयापन करते हैं। सुदामा मानव की सजीवता के लिए आत्मा अपरिहार्य बताते हैं। जब तक मानव में आत्मा है, मानव शरीर संजीव है, आत्मा के बिना शरीर निर्जीव है।

अर्थ व ज्ञान दोनों में से अर्थ की प्रधानता बतायी है क्योंकि सुदामा के पास ज्ञान है पर अर्थाभाव है तो उनकी समाज में महत्ता व सम्मान नहीं है तभी सुदामा अपने पुत्र से कहते हैं कि हमारा समाज उसी को बड़ा आदमी मानता है जिसके पास धन है। समाज तो अर्थ से ही चलता है। समाज पर राजनीति छापी हुई है। हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। इन्सान की योग्यता तथा ज्ञान का फैसला घूस के माध्यम से किया जाता है। अयोग्य योग्य साबित हो जाते हैं और योग्य बैठे रह जाते हैं।

### 2.33 तोड़ो कारा तोड़ो - निर्माण - नरेन्द्र कोहली

‘तोड़ो कारा तोड़ो’ उपन्यास स्वामी विवेकानन्द की जीवन कथा पर आधारित है। इस बृहत उपन्यास का प्रथम खंड ‘निर्माण’ स्वामी विवेकानन्द व्यक्तित्व के निर्माण के विभिन्न आयामों तथा चरणों की कथा है। इसकी कथा उनके जन्म से, श्री रामकृष्ण परमहंस तथा जगन्माता महाकाली के सम्मुख निर्दुध तथा पूर्ण आत्मसमर्पण तक की घटनाओं पर आधारित है।

स्वामीजी का जीवन बंधनों तथा सीमाओं के अतिक्रमण के लिए सार्थ संघर्ष था, बंधन चाहे प्राकृतिक हो, सामाजिक हो, रानीतिक हो, धार्मिक हो या आध्यात्मिक हो। उन्होंने सारे मानव समाज का उठ खड़े होने तक का ही नहीं बल्कि बंधनों को तोड़ने का आह्वान किया है।

### 2.34 तोड़ो कारा तोड़ो - साधना - नरेन्द्र कोहली

यह उपन्यास 'तोड़ो कारा तोड़ो' का दूसरा खंड है। इसमें स्वामी विवेकानन्द तथा उनके गुरु भाइयों द्वारा अपने गुरु की सेवा, उनके द्वारा एक भुतहे मकान में मठ की स्थापना और उनकी कठोर तपस्या की कथा है। स्वामी विवेकानन्द अपने गुरु के देहत्याग के पश्चात् अपने गुरु भाइयों को उनके घरों से खींच लाती है और उन्हें मठ में बसा कर स्वयं एक अज्ञात सन्यासी के रूप में भारत भ्रमण के लिए निकल जाते हैं।

### 2.35 हैमबरगर - कमल कुमार

इस उपन्यास में नारी जीवन की त्रासदी की तस्वीर खींचता है। भारतीय नारी को तिस-तिस कर मरना पड़ता है। उसे पुरुष के अत्याचारों का शिकार होना पड़ता है और उसे छोड़ देता है समाज में पतित नारी कहलाने के लिए। रतीन्द्र औरत होने की त्रासदी को भोगती है। वह अपने होने वाले पति की वासना का शिकार होती है और जब वह गर्भवती होती है जब उसके पिता ही उसे प्रताड़ित करते हैं। रतीन्द्र का पति कुलविन्द्र के कुमर्षों की सजा रतीन्द्र भुगवती है। माता-पिता अपनी मर्यादा की रक्षा हेतु अपनी बेटी को विदेश भेज देते हैं। ताकि वहाँ वह नया जीवन आरंभ कर सके। यंत्रणाभरी तथा संघर्षमयी रतीन्द्र का यह उल्लेख है।

कुलविन्दर को एक वासनामयी व्यक्ति के रूप में दर्शाया गया है। वह रतीन्द्र के बाद जस्सी को रतीन्द्र की बहन को अपना शिकार बनाता है। वह उससे शादी भी कर लेता है। पर एक के बाद एक लगातार चार लड़कियाँ होने पर कुलविन्दर जस्सी को मारता है। लड़का-लड़की में असमानता के कारण एक पत्नी को अपने पति के द्वार दूसरी शादी की धमकी दी जाती है। अपनी बरबाद जिन्दगी से परेशान रतीन्द्र अपने कर्मों पर विश्वास करते हुए कहती है कि उसके दुःखों का निवारण अवश्य होगा।

इस उपन्यास में वर्ग वैमनस्य का उल्लेख भी हुआ है। जिसे गोरे वर्ण वाले काले वर्ण वाले को हीन दृष्टि से देखते हैं। यहाँ तक की मोना जिन्दगी और मौत से जूझ रही है। वह डॉक्टर के पास जाती है। पर डॉक्टर गोरे वर्ण का है इसीलिए इन्कार कर देता है। मानवीयता का यहाँ पर लुप्त होना दिखाया गया है। रतीन्द्र पूरे उपन्यास में नारी जीवन जीवन की त्रासदी का जीता - जागता उदाहरण है।

इनके अतिरिक्त इस विषय में प्रमुख रूप में उल्लेखनीय उपन्यासों में 'सूर्यबाला' - मेरे संधि पत्र, सुबह के इंतजार तक; 'यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र' - तलाक दर तलाक, शतरूपा, दो रंग, अन्तर्मन, 'राजेन्द्र पाण्डेय' - श्रद्धांजलि, 'मधु धवन' - आकांक्षा, उस मोड़ पर, जुमाना; 'नरेन्द्र कोहली' - महासमर (अधिकारी), (कर्म), (धर्म), (अंतराल), (प्रच्छन्न), (प्रत्यक्ष), 'डॉ. कश्मीरी लाल' - खूटे; 'रविन्द्र थापर' - आराधना; 'कुसुमांजलि' - सीपी भर सुख; 'हृदयेश' - दंडनायक; 'चित्रा मुद्गल' - एक जमीन अपनी; 'नागार्जुन' - वरुण के बेटे; 'पुष्पा हीरालाला' - रिश्तों के बीच; 'रासबिहारी बेहेरा' - विजयी; 'जैन कुमार' - बात अडतालीस घंटों की आदि प्रमुख उपन्यास हैं।

# **दृतीय अध्याय**

**बीसवीं सदी के अंतिम दशक  
के उपन्यास और सामाजिक  
जीवन मूल्य**

## तृतीय अध्याय

### बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यास और सामाजिक मूल्य

भारतीय संस्कृति में आदर्श समाज की स्थापना आदर्श परिवार से आरंभ होती है। समाज में जीवन मूल्य युग परिवर्तन के साथ सामाजिक मूल्य भी बदलते रहते हैं। इन्हीं परिवर्तनों के आधार पर जीवन मूल्यों का विकास होता है। समाज में स्थायित्व के लिए शाश्वत मूल्यों का स्थायित्व भी उतना ही जरूरी है। इनके विघटन से समाज में अव्यवस्था पैदा हो जाती है।

सामाजिक मूल्य का महत्व बताते हुए डॉ. जानसन ने - “*दुनिया को प्रजातन्त्र के लिए एक सुरक्षित स्थान बनाने के लिए युद्ध करो*”<sup>1</sup>

#### 3.1 वैयक्तिक जीवन मूल्य

व्यक्ति और समाज में एक अविच्छन्न संबंध है। व्यक्ति का अपने- माता-पिता से वंशानुक्रमण द्वारा शरीरिक तथा मानसिक विशेषताएँ प्राप्त होती रहती है, पर इन विशेषताओं का पूर्ण विकास समाज या सामाजिक परिस्थितियों में ही होता है। व्यक्ति के सामाजिक जीवन का आधार समाज ही है।

आज समाज में व्यक्ति का दृष्टिकोण समय के साथ बदलता जा रहा है और उसके साथ मूल्यों में भी बदलाव आ रहे हैं। मगर अच्छे आदर्शपरक व्यक्ति के वैयक्तिक मूल्य बढ़ते हुए अन्याय और अत्याचार से भी नष्ट होते हैं जैसे नमिता सिंह का उपन्यास ‘अपनी सलीबे’ की नायिका नीलिमा अपने कॉलेज के विद्यार्थियों से कहती है जब काउन्सलिंग करने के लिए विद्यार्थी टीचर्स के साथ आसपास के गाँव में जाते हैं, वहाँ किसी लड़की के मामले में अन्याय के खिलाफ जुलूस निकालते हैं - “*जुलूस*



के लिए जरूर जाओ। ये पुण्य का काम है। किसी दुखिया के प्रति अन्याय के लिए सबको लड़ना चाहिए।”<sup>2</sup>

यह वैयक्तिक स्वार्थ न रखकर दूसरों की सेवा करना चाहती थी। जहाँ हमारे समाज में नारी की जिम्मेदारी सिर्फ घर की चार दीवार तक सीमित रहती है। इस सन्दर्भ में इसी उपन्यास के दूसरी टीचर्स नीलिमा से कहते हैं कि - “बस नेतागिरी तो उतनी ही होनी चाहिए जितनी खुद से सध सके। हम औरतों की तो और बहुत जिम्मेदारियाँ होती हैं। घर है, बच्चे हैं। महिलाओं को कैसे भी फूँक-फूँककर कदम रखना होता है।”<sup>3</sup> आज के बदलते परिवेश में लोग अपने स्वार्थ के बारे में ही सोचते हैं। दूसरों के दुःख सुनना आवश्यक नहीं समझते हैं।

### 3.1.1 परिवार के प्रति व्यक्ति की नैतिकता

आज आधुनिक चिंतन के प्रभाव से मूल्यों में अपने स्वार्थ के अनुकूल परिवर्तन व व्याख्याएँ करने लगे हैं। आज परिवार का हर सदस्य अपने बारे में सोचता है। वह स्वार्थी एवं आत्मसीमित भी हो गया है।

दो बहनों के बीच निजी स्वार्थ, ईर्ष्या के कारण क्लेश उत्पन्न हो जाता है। इस वैयक्तिक स्वार्थ का चित्रण यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र अपने उपन्यास ‘अन्तर्मन’ में कस्तूरी के जरिये करते हैं - “मेरे स्वर्गीय पति ने, कौन-सी प्रवृत्ति मुझे भयभीत व आतंकित करके झूठ बोलने को बाध्य करा रही है? वह मेरा पति नहीं था, वह था मुकुन्द। मुकुन्द ने एक बार मेरे साथ ऐसा ही व्यवहार किया था तो ये दिलीप, कितने पतनशील है। मेरी सगी बहन मेरे सुख में क्यों आग लगा रही है? मैं फिर नैतिक आदर्शों से निजी स्वार्थ पर आ गई। अपने सुख की चिन्ता सता रही।”<sup>4</sup>

जहाँ एक दूसरे के प्रति स्नेह, दया, अपनापन पनपना चाहिए। यही हमारे समाज का नैतिक मूल्य है। सभी अपने ही हित में बारे में अपनी पत्नी, बच्चे के बारे

में ही ख्याल रखते हैं। इस संदर्भ में डॉ. विष्णु पंकज का उपन्यास 'टूटा हुआ आदमी' में आर्थिक तंगी होने के बावजूद भी नायक बिस्मिल भाई-बहन को बेहद प्यार करता है। वह पत्नी से कहता है - *“मेरी एवज में सलीम को नौकरी हासिल हो जाएगी और उसकी परेशानी दूर हो जायेगी। मलिका, बेनजीर का निकाह पण्डितजी के लड़के से कर देना। मेरे फण्ड की रकम से उसकी शादी हो जाएगी। तुझे भी पेंशन मिल जायेगी। सबकी मंशा पूरी होगी।”*<sup>5</sup>

नैतिकता का आधार मानव जीवन है और वह मानव जीवन को व्यवस्थित, संतुलित एवं विकसित करती है। यही कर्तव्य बोध का उद्देव करती हुई उसके जीवन का नियमन और उन्नयन करती है। महात्मा गाँधी का मत था - *“सर्वोच्च नैतिक नियम है मानव-मात्र की भलाई के लिए निरन्तर कार्य करते रहना।”*<sup>6</sup> आदर्श व्यक्ति जीवन की व्यापकतम विविधताओं, जटिलताओं और जीवन की समग्रता का प्रभावी रूप से अपने में समाहित कर लेता है।

### 3.1.2 वैयक्तिक और नैतिक जीवन मूल्य

आज के आधुनिक समाज में व्यक्ति-व्यक्ति के बीच सौहार्द, मानवीयता, सद्भावना की कमी है। मधु धवन के उपन्यास 'उस मोड़ पर' लेखिका द्वारा यह कहलाया गया है कि *“मानव का भोलापन, लापरवाही, आलस्य अथवा क्षणिक सुख की प्राप्ति उसे ऐसे मोड़ पर ला खड़ा करती है जहाँ अंधकार ही अंधकार है।”*<sup>7</sup>

आज व्यक्ति केन्द्रित होने के कारण वैयक्तिक नैतिकता का स्वरूप सामाजिक नैतिकता से भिन्न है। नैतिकता अनेकता में एकता व्यक्ति के कल्याण, उसकी मान-मर्यादा का ख्याल रखती है। जैसे रामदेव शुक्ल का उपन्यास 'गिद्धलोक' का नायक किशन प्राध्यापक होता है। वहाँ के चपरासी दोनों एक ही कमरे में रहते हैं। वे दोनों सहभाव से मिलजुल कर रहते हैं। वह कहता है, *“रोज तुम मेरे लिए खाना*

बनाते हो। एक दिन मैंने तुम्हारे लिए बना दिया तो क्या हो गया? और चपरासी वाली बात तुम क्यों कह रहे हो? पहले तुम आदमी हो...। चपरासी को साहब लोग आदमी नहीं मानते।”<sup>8</sup>

इस प्राध्यापक के द्वारा लेखक ने मानवता को श्रेष्ठ कहा है। वहीं ‘दीक्षांत’ सूर्यबाला के उपन्यास में अध्यापक आर्थिक विषमता के कारण स्कूल के बच्चों को अपने घर में ट्यूशन लेता है वहीं उसका वैयक्तिक चरित्र निरामित हुआ है। इसी कारण वह बच्चों को पढ़ाना लिखाना ही नहीं, दूसरों के कामकाज में भी सहायता करता है। बच्चों को पढ़ा चुकने के बाद दरवाजे पर आने से पहले कोई न कोई थैला या टोकर लिये खड़ी रहेगी। मास्टरजी, जरा लौटते हुए लक्ष्मी ऑयल मिल में ये थैला देते आइएगा, या फिर बड़ा वाला कहेगा - सर, मम्मी ने कहा है जरा ये लेटर रजिस्ट्री करने को।”<sup>9</sup>

आर्थिक कमी से जूझने वाले व्यक्ति को समाज अपमानजनक दृष्टि से देखता है। इसका प्रमाण राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ में हेमन्त के माध्यम से देखा जा सकता है। हेमन्त बहन की शादी का प्रस्ताव लेके, इन्द्रसेन जो धनवान है, के पास जाता है क्योंकि इन्द्रसेन का लड़का कृष्णकुमार और हेमन्त की बहन दोनों एक दूसरे से प्यार करते हैं। हेमन्त बहन की इच्छा पूरी करने जाता है तो वहाँ अमीरी और गरीबी का भेद स्पष्ट परिलक्षित होता है। “आपके और हमारे बीच तरीके से बातचीत होनी चाहिए मुखिया जी। आप तो ऐसे शब्दों का इस्तेमाल कर रहे हैं जैसे मैं आपका गुलाम हूँ”<sup>10</sup>

कमजोर व्यक्ति की बेइज्जती होती है। इसी तरह का एक उदाहरण डॉ. कश्मीरी लाल का उपन्यास ‘खूँटे’ में भी मिलता है। गरीबी से नफरत बड़ों से ही नहीं बच्चों से भी की जाती है। सत्तूशाह नामक बारह साल का लड़का एक घर पर नौकर रहता है। वहाँ की मालिकन थोड़ी सी भी हमदर्दी नहीं देती। मानवीय व्यवहार से

बदत्तर पेश आते हैं वहीं दूसरे नौकर सत्तूशाह से कहता है - “लोग बड़े बेदर्द हो गए हैं सत्तूशाह। लोग बड़े ही बेदर्द हैं। कोई किसी पर रहम नहीं करता। वो कहते हैं न... कमजोर की बेगम सबकी भाभी।” जिसका तात्पर्य गरीब व्यक्ति सबका गुलाम बन जाता है। अर्थात् नैतिकता का मूल उद्देश्य मानव का आत्मिक विकास करना है। इसके जरिये समाज का निर्माण होता है, व्यक्ति के सामाजिक संबंधों में प्रेम, सौहार्द, सद्भाव, सरसता लाती है।

## उदारता

उदारता मनुष्य की महानता की अन्यतम कसौटी रही है। डॉ. विष्णु पंकज का उपन्यास ‘टूटा हुआ आदमी’ का नायक बिस्मिल के मित्र पण्डितजी उसकी लड़की की दशा जानते हुए भी अपने लड़के से रिश्ता तय कर लेता है और उसके लड़के सलीम को भी अपने बिजनेस में रख लेता है। वह कहता है - “बात सीधी सी है। बेनजीर का निकाह अपने छोटे लड़के के साथ कर लेता हूँ और सलीम को लखनऊ ले जाकर अपने बिजनेस में एडजस्ट कर दूँगा। बोल, हो गई न तेरी समस्या का हल?”<sup>12</sup> उसकी लड़की शादी से पूर्व एक दफ्तर में काम कर रही थी। वहाँ का बॉस उसका जीवन बर्बाद कर देता है। यहाँ इस लड़की की दशा जानकर भी रिश्ता तय करने पर उसका उदार दिल सामने आता है। इसके अतिरिक्त इन दोनों का मैत्रीभाव भी स्पष्ट झलकता है।

दूसरों की मदद करना, उसी रास्ते पर जिन्दगी गुजारना, इससे व्यक्ति का उदार दिल झलकता है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ का नायक कृष्णकुमार समाज की स्त्रियों के कष्टों को देखकर उनकी सेवा करना चाहता था। उनके पिताजी को भी किए पापों का प्रायश्चित्त करवाता है। उसके पिताजी कहते हैं - “तुमने जो सोचा है बेटे, ठीक ही सोचा। वास्तव में सच्ची जिन्दगी तो उसी की है जो

परोपकार और त्याग के रास्ते पर जीते हैं। तुम जो चाहें सो करो - परन्तु मुझे मुक्त करो इस माया से।”<sup>13</sup>

यहाँ प्रायश्चित्त करना भी एक प्रकार का नैतिक मूल्य है। और किए करतूतों को सहन या क्षमा करना मनुष्यता का सात्विक गुण है। महाभारत में युधिष्ठिर से 23 प्रश्न पूछे गये तो उन्होंने कहा ‘क्षमा याने द्वन्द सहिष्णुता है।’

### ईमानदारी, सत्य, कृतज्ञता

मनुष्य में सत्य, ईमान, नैतिक गुण विद्यमान होना अनिवार्य हैं। भारतीय समाज में हर धर्म में व्यक्ति के यही श्रेष्ठ गुण हैं। आज का स्वार्थी व्यक्ति दूसरों के ईमान, सत्यता के जीवन को उजाड़ने में तुला हुआ है। डॉ. विष्णु पंकज का उपन्यास ‘टूटा हुआ आदमी’ का बिस्मिल के दफ्तर के लोग उसी को दोषी करार करने के लिए रिश्वत देना चाहते हैं। क्योंकि उन्हें उस व्यक्ति को दोषी कहलाने में उनका लाभ है। उनके विचारों का खण्डन करते हुए बिस्मिल यहाँ अपने वैयक्तिक मूल्यों को अपनाता है। उन लोगों से कहता है कि - “अबे चुप भी करा। काम की बात करा। जब देखों तब बकरीर झाड़ने लगता है। कुत्ते की हड्डी है क्या तेरे मगज में? बेईमानी और बदमाशी से भी रईसी से तो ईमानदारी और शराफत की गरीबी अच्छी।”<sup>14</sup>

जीवन में सत्य और ईमानदारी ही मनुष्य को सुखी बनाते हैं। यादवेन्द्र शर्मा का उपन्यास ‘यातना घर’ का नायक हजारी पुलिस में है। उसका फर्ज यह होता है कि समाज में व्याप्त अन्याय, भ्रष्टचार इत्यादि को रोकना और समाज में शान्ति लाना। लेकिन उसमें न मूल्यों की चिन्ता है न ही अपनी नौकरी का दायित्व। वह स्वयं अपने स्वार्थ के लिए हर काम करने के लिए तत्पर है। इसके बारे में इस उपन्यासकार का विचार है कि “सच्चाई से साक्षात्कार करने वाला व्यक्ति ज्यादा सुखी होता है। असत्य की सबलता ज्यादा नहीं होती। सत्य की दुर्बलता और असत्य की सबलता का योग

बराबर होता है। सत्य बार-बार पराजित होकर भी अंततोगत्वा वह विजयी ही होता है। पाप अधर्म हिंसा कभी न कभी अवश्य मरते हैं। वे अगर नहीं हैं मगर धर्म, अहिंसा, सत्य और नैतिकता चिरंजीवी हैं। वे कभी-कभार मरणासन्न अवश्य लगते हैं पर सही मायने में वे उस युयासु की प्रतीक्षा करते हैं जो उसे पुनः चिन्मय कर सके।”

15

आजकल के बदलते परिवेश में व्यक्ति का वैयक्तिक स्वाभाव मूल्यविहीन होता जा रहा है। इन वैयक्तिक नैतिक मूल्यों से व्यक्ति का जीवन अकेलापन, कुण्ठा ही है मगर जीत भी होती है। सत्य और ईमानदारी के कर्तव्य के कारण ही व्यक्ति व्यक्ति का कृतज्ञता भी बन जाता है। डॉ. अनुराधा भार्गव का उपन्यास ‘सत्य की ओर’ की नायिका नयना और नायक कुलविन्दर देश के विभाजन में अलग हो जाते हैं। नायिका और उसकी बच्ची अलग हो जाते हैं। यहाँ रवि साहब नामक दूसरा नायक इनकी मदद करता है। वह कहती है - “रवि साहब जैसे इंसान इस दुनिया में बहुत कम हैं। वरना इस दुनिया में हर आदमी खुदगर्ज है। उन्होंने मेरी बहुत मदद की है। उनकी बातों में बहुत अपनापन है। उनका एहसान में किस तरह उताखूंगी।”<sup>16</sup>

जहाँ इस समाज में सभी अपने तक सीमित रहते हैं, ईर्ष्या भाव जागृत करते हैं कोई दूसरे की मदद करना नहीं चाहता, दूसरों का नुकसान ही चाहता है।

## सहनशीलता

अपने तन-मन पर किये गये आघातों का प्रत्योत्तर न देकर क्रोध को भी पी जाने वाली प्रवृत्ति को सहनशीलता कहते हैं।

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र के उपन्यास ‘शतरूपा’ में सास बहु शतरूपा पर बदचलन औरत होने का आरोप लगाते हुए यह प्रचार करती है कि बन्नों के पति की सहेली शतरूपा के साथ अवैध संबंध है। इस असत्य को शतरूपा सहन नहीं कर पाती।

भाववेश में वह आत्महत्या कर लेती है। शतरूपा के आत्महत्या की इस घटना के बारे में लेखक का विचार है - “यहाँ की स्त्रियाँ ऐसी स्थितियों में अपने को सहज रखने की आदी नहीं हैं। फिर उसने आत्महत्या कर ली। शतरूपा यदि चरित्रहीन होती तो बदनाम होने के बाद वह किसी से भी नहीं डरती।”<sup>17</sup>

हमारे समाज में चाहे जितना भी चरित्रवान व्यक्ति हो, एक बार चरित्रहीन हो जाता है। परिणामस्वरूप मानसिक तनावपूर्ण स्थिति से गुजरना पड़ता है। इस संबंध में मधु धवन का उपन्यास ‘मैं सृष्टि की आत्मा हूँ’ की मेघना कहती है - “ऊँचे नैतिक मूल्यों पर चलते-चलते व्यक्ति कभी-कभी मनोवैज्ञानिक कटुताओं का शिकार हो जाता है।”<sup>18</sup> सहनशीलता में हर व्यक्ति प्राचीन और नवीन पीढ़ियों के मूल्यों में टकराहट होती है।

मूल्य परिवर्तन की स्थिति हर किसी की इच्छाओं की पूर्ति में लिये जाने वाले निर्णयों पर आधारित है।

### 3.1.3 पुरुष एवं नारी का त्याग में व्यवहार

भारतीय संस्कृति में नारी को समर्पणमयी पत्नी, वात्सल्ययी माता और ममतामयी बहन के रूप में चित्रित किया गया है। वह अपनी वैयक्तिक इच्छाओं को दबाकर समाज एवं परिवार के लिए त्याग करती है वह सब कष्टों को सह लेती है। मधु धवन का उपन्यास ‘मैं सृष्टि की आत्मा हूँ’ में महिमा अपने परिवार के लिए छोटी-छोटी से लेकर बड़ी-बड़ी इच्छाओं को दबाकर जीती है। जब उसे घर में उसकी माँ लड़कों पर ज्यादा प्यार देती है, वह सोचते हुए कहती है - “मैं आप लोगों की चिंता में रात दिन लगती रहती हूँ किन्तु आपने कभी कोई फिक्र की? अगर मैं मर जाती तो मेरी लाश न जाने कितने घंटे यूँ ही पड़ी रहती? मैंने खुद को घर-परिवार,

मायका हो या ससुराल दोनों के लिए अपने को खपा दिया... मुझे क्या मिला...  
उपेक्षा, दर्द।”<sup>19</sup>

चाहे नारी में कितनी ही योग्यता क्यों न हो मगर समाज के सामने झुककर और त्यागमय जीवन व्यतीत करती है। मधु धवन के उपन्यास ‘जुर्माना’की शुचि को अपने आदर्शपकर वैयक्तिक जीवन को बचाये रखने के लिए समाज व परिवार से उलाहना, तिरस्कार, अपमान आदि मिलता है। लेखिका का प्रमाण है कि - “जितनी योग्यता उसमें होती है उतना बड़ा जुर्माना उसे भरना पड़ता है। क्या हो गया है समाज को? जुर्माना तो अपराधी को भरना चाहिए, जो अयोग्य हो, जो समय के साथ नहीं चलते हो, कामचोर हो, किन्तु आज मूल्यों ने करवट किस ओर ली है?”<sup>20</sup>  
आज नारी भी अपने मूल्यों के तहत कितनी संतप्त जिंदगी जीती है।

पुरुष समाज में पिता, पुत्र, पति, चाचा, देवर, भाई के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। बनाफर चन्द्र के उपन्यास ‘सवालियों के बीच’ में लखीम और दिनेश दोस्त रहते हैं। दूल डाउन कारखाने में दिनेश लखीम का उच्च अधिकारी होता है फिर भी उनके बीच दोस्ती कायम रहती है। कारखाने के हड़ताल के समय अधिकारियों और मजदूरों के बीच कटुता फैल जाती है। एक दुर्घटनावश दिनेश को अस्पताल में दाखिल किया जाता है। तब लखीम और दिनेश की पुरानी प्रेमिका पूनम दोनों ही उसे खून देकर बेसहारा हालत में मदद करते हैं। वे चाहते तो उसकी करतूतों को देखकर छोड़ सकते थे। दिनेश सोचता हुआ कहता है कि - “दुर्घटना के बाद लखीम और पूनम दिनेश को करीब ला दिया। वहाँ दूल डाउन हड़ताल में जो कटुता और दूरी हमारे उसके बीच आ गयी थी उसे भी खत्म कर दिया। बल्कि दोस्ती का मजबूती से जुड़ गयी। इसका श्रेय लखीम मेरे खून का देता है। अब मेरी तुम्हारा खून है।”<sup>21</sup>



### 3.2 पारिवारिक मूल्य

परिवार समाज की महत्वपूर्ण कड़ी है। परिवार सन्तानोत्पत्ति द्वारा समाज के लिए नवीन सदस्यों की भर्ती करता है जो मृत व्यक्तियों के रिक्त स्थानों की पूर्ति करते रहते हैं और इस प्रकार समाज की निरन्तरता बनाए रखते हैं। “परिवार विश्व का है जैसे समाज में चाहे वह आदिम हो या आधुनिक पूर्व का हो या पश्चिम का, परिवार पाया जाता है। जन्म लेते ही बालक परिवार का सदस्य बन जाता है।”<sup>22</sup>

मधु धवन के उपन्यास ‘करवट लेता वक्त’ में अविनाश कहता है “मूल्य कोई पेट्रोल नहीं की ढक्कन खोला और भर दिया।”<sup>23</sup>

रिश्ते-नाते के आधार पर ही परिवार घटित होता है। पारिवारिक परिवेश के आधार पर ही वैयक्तिक मूल्यों का निर्माण होता है। मूल्यों को प्रसारित करने वाली पारिवारिक व्यवस्था आज परिवारों के सदस्यों के बीच संघर्ष, द्वेष आदि गुणों का केन्द्र बन चुका है।

इसी पारिवारिक रिश्तों में आत्मीयता लाने के लिए नरेन्द्र कोहली का उपन्यास ‘अभिज्ञान’ में सुदामा की पत्नी सुशीला एक अनजान बाबा को अपना ही समझकर उनकी सेवा में घर में ठहरने को कहती है। तब वह कहती है - “रिश्ते केवल रक्त संबंध से ही तो नहीं होते। वे तो आत्मीयता से होते हैं।”<sup>24</sup> परिवार समाज में लघु ईकाई होने के कारण सदस्यों के बीच वैमनस्य उत्पन्न होता है वहीं परिवार में बिखराव हो जाता है। आज अर्थ प्राप्ति के लिए रिश्ते टूटते जा रहे हैं। समष्टि हो या व्यष्टि परिवार, अर्थ को प्रधानता देने लगे हैं। परिवार में चलने वाले झगड़े, अहं, लोभ, अर्थ के कारण ही हो रहे हैं।

पारिवारिक जीवन में केवल पति ही नहीं अन्य सदस्य भी पैसों के लालच में लार टपकाते रहते हैं जिससे बहू का जीवन बर्बाद हो जाता है। रिश्तों में दरार आ जाती है। पति-पत्नी यंत्रचालित से दर्द भरी जिंदगी गुजारने पर मजबूर हो जाते हैं।

साधु धवन के उपन्यास 'आकांक्षा' में जब शीतल अपनी सहेली मृणालिनी से उसके ससुराल के बारे में पूछती है तो वह कहती है - *"मत लीजिए... उनका नाम... उसकी क्रूर धिनौनी योजनायें... परिवार वालों की व्यापारिक सौदेबाजी से मुझे सख्त नफरत है।"* <sup>25</sup>

जब पारिवारिक मूल्य में परिवार के सदस्य अपने सुख की तिलांजलि देते हैं तभी वहाँ पर सौहार्दता कायम रहेगी। अगर परिवार में कोई सदस्य भला, अच्छा, सुशील एवं सीधा हो तो भी मूल्यों की रक्षा करता है। देवराज पथिक के उपन्यास 'जर्जर सेतु' में उसके बड़े भाई शीलभद्र चाहते तो अपनी पत्नी, बच्चों के साथ खुश रह सकते थे, मगर उन्होंने अपने कर्तव्य को निभाते हुए अपने भाई-बहन को पढ़ाया और उनको अपने पैरों पर खड़ा किया। शीलभद्र की बहन कंचन के विवाह में अन्य महिलायें कंचन के भाई के श्रेष्ठ गुणों को देखकर परस्पर चर्चा करती हैं। वे कहती है - *"धन्य है कंचन के बड़े भैया जिन्होंने सभी बहन-भाइयों को खूब पढ़ा-लिखाकर अपने पैरों पर खड़ा किया है।"* <sup>26</sup>

परिवार मानव को आत्मयता एवं प्रेम के बंधन में बांधता है। इसी संदर्भ को नरेन्द्र कोहली अपने उपन्यास 'महासागर - कर्म' में कुंती और हिडिंबा के माध्यम से दर्शाते हैं। कुंती हिडिंबा को सामाजिक दायित्व से परिचय कराती है। कुंती हिडिंबा को पारिवारिक दायित्वों को समझाते हुए कहती है - *"मानव केवल दंपति नहीं, परिवार बनाता है। समाज बनाता है। मनुष्य को प्रकृति ने पशु-पक्षियों की तुलना में कहीं अधिक विकसित बुद्धि दी है। अतः उसका दायित्व भी अधिक विस्तृत है।"* <sup>27</sup>

### 3.2.1 समष्टि परिवार - मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में

आधुनिक युग में लोग स्वार्थ, स्वतंत्रता, अर्थ के कारण समष्टि परिवार से व्यक्ति परिवार की ओर उन्मुख हो गए हैं। इस प्रकार अर्थ समष्टि को बिखेरने में

सफल सिद्ध हुआ है। परिवार में एक दूसरे की सहायता और उदार दिल से रहना है, वहाँ धन रिश्तों को भुला रहा है। आज धन की महिमा गुणगान है। देवराज पथिक का उपन्यास 'जर्जर सेतु' में चार भाई की पत्नियाँ, अपने पति को परिवार के प्रति खर्चा करने से रोकती है। परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारी, कर्तव्य करने से रोकती है। दूसरे भाई दीपक की पत्नी इन्दु यथार्थवादी होती है। लेखक का प्रमाण है कि "उसे दायित्व बोध की शिक्षा तो पर्याप्त रूप से दी गई किन्तु अधिकार भाव के प्रति उसे सदैव वीतरागी बनाये रखा गया। फलतः इन्दु नहीं चाहती थी उसके पति का सुनियोजित ढंग से शोषण जारी रहे।" <sup>28</sup> इस कारण समष्टि परिवार अलग हो रहे हैं।

समष्टि परिवार में शीत युद्ध चलने लगे तो भी जीना दुभर हो जाता है। औद्योगिक विकास के कारण सभी अपने से मतलब रखते हैं। चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में अंकिता की माँ का देहांत हो जाता है। वहाँ उनके भाई-भाभियों का ध्यान संपत्ति पर ही रहता है। अंकिता अपने भाई-भाभियों से कहती हैं - "यह कैसी विडंबना है! क्या होने जा रहा है। अम्मा के फूल तक नहीं सिवाए गए हैं अभी और यहाँ बंटवारे की बात शुरू हो गई? जिन्होंने जीते-जी अम्मा की कभी फिक्र नहीं की, उनके सुख-दुःख में साझीदार नहीं हुए, अवसान पर फकत लोकलाज निभाने आ गए। वे किस अधिकार से उनके घर में प्राधानी कर रहे हैं।" <sup>29</sup>

आज अपनी इच्छाओं के लिए परिवार का वातावरण कलुषित हो चुका है। यहाँ तक कि माँ-बाप की सेवा करना एक स्वांग बन चुका है। बृजनारायण सिंह का उपन्यास 'समर्पिता' की नायिका समर्पिता भी दिखावे के लिए सास-ससुर की सेवा करती है। कहती है - "बीबी बनने के लिए नौकरानी या गुलामी करने के लिए नहीं। जब से वे लोग गये हैं तेरा तो नाक में दम आ गया है। काम करते-करते यह तो चाहते हैं मैं उनके लोग एक-एक पैसे के लिए हाथ फेलाती रहूँ। इनकी मोहताज बनी

रहूँ... पता नहीं यह बुढ़िया... बस करो बहू! मुझे मालूम हो गया, जब तुम मेरे सामने अपनी सास को इतना सम्मान दे सकती हो, तो अकेले में उन्होंने कितना पूछती होगी।”<sup>30</sup>

समष्टि परिवार में इस प्रकार के कलह से बचने के लिए व्यक्ति व्यक्ति का सहारा लेता है। उनमें मानवीयता का गुण मौजूद होता है। मनुष्य कहीं भी रहे अपनी मानसिकता नहीं छोड़नी चाहिए। रामधारी सिंह दिनकर का उपन्यास ‘काली सुबह का सूरज’ का नायक नरेन्द्र की शिक्षा के खर्च के लिए पैसे नहीं होते। तब उनकी माँ चिट्ठी में लिखती है - “नरेन्द्र, बड़ी मुश्किल से पढ़ा रहे हैं हम लोग। अब तो घर का खर्चा-पानी भी बिक गया है। पता नहीं कैसे गुजी-बसर होगी परिवार की। फिर भी हिम्मत है। तुम्हारी बुआ अपने गहने दे रही है बेचने के लिए।”<sup>31</sup>

जीवन की व्यस्तता और अर्थ केन्द्रित दृष्टि ने परिवार की संस्था को सबसे अधिक ठेस पहुँचायी है। परिवार में संबंधों में उतार-चढ़ाव होते ही रहते हैं। पारिवारिक बंधनों में अत्यधिक श्रेयस्कर है मानवीयता का गुण। अगर परिवार में हर एक व्यक्ति त्याग, जीवन में संयम और दृढ़ विश्वास रखेगा तो परिवार को आत्मीयता के सूत्र में बांधे रखेगा। देवराज पथिक का उपन्यास ‘जर्जर सेतु’ में शीलभद्र अपनी पत्नी से, जब उनका परिवार व्यक्ति की ओर उन्मुख होने लगता है तब वह कहता है- “यदि व्यक्ति अपने जीवन में संयम और त्याग का व्रत लेता है, स्वार्थ से ऊपर उठकर जीने का संकल्प करता है तो परिवार की एकता और चरित्र को कोई आँच नहीं आ सकती।”<sup>32</sup>

आज के आधुनिक जीवन में व्यक्ति के नवीन विचारों के समावेश होने के कारण अपना दायित्व व कर्तव्य को भूलकर संबंधों के बीच दरारें डाल देते हैं। पारिवारिक जीवन अनेक प्रकार की समस्याओं से घिरा हुआ है। मनुष्य अत्यधिक महत्वकांक्षी है।

## माता-पिता, बेटा-बेटी के संबंध में मूल्य

भारतीय संस्कृति में माता-पिता का सर्वोच्च स्थान प्रतिस्थापित किया गया है। ये दोनों ईश्वर से भी अधिक वंदनीय एवं पूजनीय हैं। आजकल के नवयुवक पिताजी से औपचारिक रूप से ही संबंध स्थापित करते हैं। वे समझते हैं कि रुपया देना ही उनका कर्तव्य है। जैसे रामधारी सिंह दिनकर का उपन्यास 'काली सुबह का सूरज' का अमिरत्न अपनी माँ के हाथ में पैसे देकर अपने बाबूजी का इलाज करने को कहता है। "ये रुपये रख लीजिए माँ। मुझे तो छुट्टी नहीं मिलती कि यहाँ रहकर बाबूजी का इलाज करा सकूँ। लेकिन रुपये हैं, आप लोग हैं और सिरनाथ चाचा हैं तो इलाज क्या कराना है, बस मन का संतोष देना है। बहुत होगा तो थोड़े दिन के लिए बीमारी कुछ दब जायेगी।" <sup>३२</sup>

जहाँ उसका दायित्व है वहाँ अपने कर्तव्य को निभाता नहीं है। अपनी संस्कृति के अनुसार माता-पिता की देखभाल पुत्र पर सौंपता है। पुत्री माँ-बाप के लिए बोझ बनी रहती है। इनका प्यार सिर्फ ससुराल जाने तक ही कर्तव्य रहता है। इसलिए कहते हैं लड़की दूसरे घर की अमानत है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'अन्तर्मन' में कृष्ण, कस्तूरी, कावेरी के पिता कहते हैं - "जवान बेटी माँ-बाप के लिए बोझ होती है। अब कुछ वक्त ही ऐसा आ गया है कि जो बातें हमने शादी के बाद भी नहीं जानती थी उन्हें आज की लड़कियाँ बचपन में ही सीख कर आती हैं।... कस्तूरी जब कावेरी के हाथ पीले कर दें तो उत्तमा मुझे अपनी संतान से ज्यादा जमाने का डर लगता है।" <sup>३४</sup>

माता-पिता का कर्तव्य एवं जिम्मेदारी होती है कि पुत्री को अच्छे वर से विवाह कराये। उसी प्रकार पुत्र के विवाह के बारे में सोचते हैं। वे अपने संस्कार को छोड़ते नहीं न ही पुत्र अपनी जिद को छोड़ता है। इन दोनों के बीच क्लेश ही पैदा होता है। जैसे इस्मत चुगताई के उपन्यास जिद्दी का नायक पुरन अपने पिताजी से कहता है

कि “बस माताजी रहने दीजिए... पिताजी... भैया मेरा जवाब सुन लीजिए। मैं आशा से शादी करूँगा और आप कहते हैं ये नामुमकिन है तो दिखा दूँगा कि नामुमकिन बातें भी कभी-कभी मुमकिन हो जाती है। मैं आज ही यहाँ से चला जाता हूँ कि आप लोगों को कोई बुराई न देगा।”<sup>35</sup>

आज युवक माता-पिता से ज्यादा अपने भविष्य के बारे में अधिक ध्यान रखता है। वह यह नहीं सोचता कि यह हमें पाला-पोसा है। हमारी एक-एक चाह को पूर्ण करते हैं। मगर संतान नये रिश्ते को जोड़ने के लिए पुराने रिश्ते को तोड़ने के लिए प्रेरित हो जाते हैं। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ का नायक कृष्णकुमार की प्रेमिका सीमा के प्रति प्रेम करना उसके पिता इन्द्रसेन को पसंद नहीं करते। एक दुर्घटना में इन्द्रसेन की टांग कट जाती है तब पश्चाताप कर सीमा के भाई हेमन्त से कहता है - “मुझे और अधिक जलाने का प्रयास मत करो हेमन्त। मेरे जख्म को और मत कुरेदो। तुम्हीं सोचो, मुझे क्या कम सजा मिली है। मेरी एक टांग कट गयी। जवान बेटा मुझे ही ठुकरा कर चला गया।”<sup>36</sup>

चाहे माँ-बाप कितने ही बुरे क्यों न हो मगर संतान का कर्तव्य बनता है कि उन्हें किसी भी हालत में न छोड़ें संतान अपने माता-पिता को मर्यादा देना कर्तव्य होता है। मगर आजकल के नवयुवक-नवयुवती इसे इज्जत देना नहीं समझते। सूर्यबाला का उपन्यास ‘मेरे संधिपत्र’ में रिंकी की सौतेली माँ रिंकी को डांटते हुए कहती है - “बस यही तो मुश्किल है न। वे डांटते नहीं तो तुम लोग उनका रेसपैक्ट ही भुला दो, क्यों? अब तो, कब पूज्य पापाजी की रेसपैक्ट में कमी की मैंने, मम्मी? और की भी तो जाने दो। लौट के जितनी कहोगी उतनी रेसपैक्ट कर दूँगी... ओ.के.?”<sup>37</sup>

आजकल के युवक-युवती रेसपैक्ट न देना फैशन समझते हैं। संतान एवं माता-पिता दोनों को अपना कर्तव्य निभाना चाहिए जैसे संतान का कर्तव्य है उसी प्रकार माता-पिता का फर्ज भी बनता है कि संतान की चाहतों को पूर्ण करें।

कुछ संतान अपने बाप की संपत्ति के मोह एवं प्यार में प्रेमिका को भी ठुकरा देते हैं। बनाफर चन्द्र का उपन्यास 'सवालियों के बीच' में लखीम दिनेश से कहता है कि - "मैं माँ-बाप की मर्जी के खिलाफ जाना मेरे बस की बात नहीं। उनसे विद्रोह करने की हिम्मत मुझ में नहीं है। उसके लिए दिनेश कहता है - सीधा क्यों नहीं कहते कि तुम अपने बाप की लाख रुपये का नुकसान करना नहीं चाहते। तुममें और मेरे क्वार्टर-मालिक के चरित्र में कुछ फर्क नहीं है लखीम।" <sup>38</sup>

- आज के नवयुवक अपने पिता की अर्जित कमाई को लूटना और ऐशो आराम का जीवन व्यतीत करना है। बाह्य आडंबर ने उनके जीवन को अंध बना दिया है।

### माता-बेटा-बेटी के संबंध में मूल्य

भारतीय संस्कृति में माँ का स्थान सदैव सर्वोच्च सानि पर प्रतिस्थापित किया गया है। वह ईश्वर से भी अधिक वंदनीय एवं पूजनीय है।

माँ अपनी पुत्री को अपने काबू में रखती है। उसे लाड़-प्यार के साथ ज्यादा स्वतंत्रता भी नहीं देती है, क्योंकि उसका नतीजा बुरा बन जाता है। 'समर्पिता' उपन्यास में नायिका समर्पिता ज्यादा स्वतंत्रता मिलने के कारण अपना जीवन खुद बर्बाद कर लेती है और अपने माँ-बाप की इज्जत को भी मिट्टी में मिला देती है - "दुनिया जहान में मुँह काला करती फिरती है अब आ गया ससुराल से तलाक का नोटिस... अब भुगतों... जब मैं कहती थी... तुमने एक न सुनी... हमेशा मुझे पैर की जूती समझा... अब उठाओं बेटी को आजादी देने का मजा..." <sup>39</sup>

माँ जो ममतामयी, करुणा और वात्सल्य का प्रतीक है, वह आज अपने कार्यों में इतनी व्यस्त है कि अपनी संतान के प्रति वात्सल्य उमड़ने में भी नाकामयाब होती है। दोहरी जीवन में पिसने के कारण अपने कर्तव्यों और दायित्वों में विमुख होती जा रही है।

डॉ. कश्मीरी लाल का उपन्यास 'खूँटे' में आर्थिक विषमता के कारण सत्तू की विधवा माँ किसी और के साथ अनैतिक संबंध रख लेती है। जब उसके बेटे को पता चलता है तब वह आँख नहीं मिला पाती। लज्जित होके बेटे को मारने लगती है। नायक सत्तू कहता है - "माँ में बदलाव आ गया था। सत्तू से आँख नहीं मिला पाती। कभी-कभी जलती लकड़ी उठाकर मारने दौड़ती। कहती - तेरे जैसे तो खेत-भट्टों में मजूरी करते हैं। खुद भी खाते हैं, माँ-बाप को भी खिलाते हैं। तू रहेगा माँ की कमाई पर। इतनी समझ नहीं कि पढ़ाई के लिए आमदनी कहाँ से आयेगी। तेरा निखट्टू बाप यहाँ घड़े दबाकर नहीं रख गया है धन को।" 40

आजकल के नवयुवक भी अपने माँ-बाप को इज्जत नहीं देते। सभी स्वार्थवश जीते हैं। चंद्रकांता का उपन्यास 'अंतिम साक्ष्य' में मीना का अधेड़ पति लाला का बेटा मीना से कहता है - "मेरा बाप तुझे वापस भेज रहा है, कोरे-कोरे। मीनू के भोले, चेहरे को अपनी गिद्धदृष्टि से कोंधते हुए उसने रहस्य भरे स्वर में जोर दिया था, कोठी में रहना चाहती है, तो मुझे कबूल कर ले, सिफारिश कर दूंगा।" 41

माँ अपनी सारी इच्छाएँ और आकांक्षाएँ अपनी संतान को अर्पित कर देती है। जिस संतान के लिए वह सहस्रों कष्ट को झेलने के लिए तत्पर थी, संतान की नाकामयाबी उसके मन की गहराईयों को ठेस पहुँचा जाती है।

डॉ. अनुराधा भार्गव का उपन्यास 'सत्य की ओर' में कुलविन्दर अपनी मर्जी से शादी करना चाहता था। उसके लिए उसकी माँ कहती है - "यह दिन देखने से तो अच्छा था मैं मर जाती। मेरी तो पूरे शहर में इज्जत मिट्टी में मिल जाएगी। मैंने तो सबसे कह दिया है मैं सोनिया की शादी अपने पुत्र कुलविन्दर से करूंगी। तू चला जा यहाँ से, तेरे-मेरा रिश्ता खत्म। मैं सोचूंगी तू मर चुका।" 42



अपनी संतान के एक-एक पक्ष और पहलू पर माँ जितनी सजग और संवेदनशील होती है उतना अन्य रिश्तों में नहीं पाया जा सकता। अपनी संतान के वैवाहिक पक्ष में भी माँ ही अत्यंत सचेत और जागरूक होती है।

सूर्यबाला का उपन्यास 'अग्निपंखी' में आर्थिक विषमता से जूझने के कारण जयशंकर अपनी पत्नी के साथ अलग स्वच्छन्द नहीं रह पाता। वह सोचता है -  
“औरत के आ जाने के बाद भी अभी कुछ दिनों और माँ को गाँव ही रहने दूंगा। लिख दूंगा अभी नहीं आई। कौन कोई तलाशी लेने आ रहा है यहाँ? सब झख मार के रखेंगे। बहुत पीछे पड़ेंगे तो पच्चीस - पचास भेद दूंगा। यूँ भी रखकर कौन बड़ा एहसान करेंगे।”<sup>43</sup>

माँ सब कुछ न्यौछावर करती है, अपने बेटे को दुखी नहीं देखना चाहती। संतान विवाह के पश्चात् दायित्व भूलकर पीछे भागने लगता है। माता-पिता चिंतित हो जाते हैं। उनका दिल टूटकर बिखर जाता है। कृष्ण सोबती के उपन्यास 'समय सरगम' में आरण्या और ईशान दोनों वृद्धावस्था में होते हैं। वे दोनों अपनी संतानों के द्वारा अलग छोड़े गये हैं। वे आज के बुजुर्ग पीढ़ियों के पर्यावरण को सोचकर वार्तालाप करते हैं और कहते हैं कि - “बूंद-बूंद अर्जित अपनी शक्तियाँ रोग, बीमारी और संकट के लिए संभालकर अपने में धिरे रहते हैं, समय-समय पर बच्चों-बूढ़ों के संस्थानों की मदद को जाते हैं। अकेले, अकेलों की अपनी जीवन शैली है। अकेले, स्व-निर्माण और आराम। फिर भी पुरानी छांह से पितृ पांव, मातृ हाथ, भ्रात और भगनि भाव का गहरा आस्वादन कभी मिलता हो। उमड़ आता है स्नेह माँ की ममता के लिए और पिता के संयम में पके प्यार के लिए।”<sup>44</sup>

माताएँ पुत्रियों के विवाह में ज्यादा एहमियत देती हैं। मगर आज की माताएँ बच्चों को परम्परागत मूल्यों को सिखाने के बजाए खुद कर्तव्य से विमुख स्वच्छंद रहती हैं। वह अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता की खातिर बच्चों को पूरी छूट देती हैं तो बच्चों में

मूल्यहीनता आ जाती है। मधु धवन का उपन्यास 'करवट लेता वक्त' में निशा एवं जैरी दोनों ने ही अपनी पुत्रियों को कभी क्लबों-पार्टियों में रात-भर बैठने से नहीं रोका। विवाह के बारे में भी दोनों ने स्वच्छंद रहने का निर्णय ले लिया। निशा की बेटी सुप्रिया ने कान्ट्रैक्ट मैरिज किया। उसने शादी होने के कुछ ही दिनों में तलाक ले लिया। तब करिश्मा निशा के ही कॉलेज में दूसरी प्रवक्ता से कहती है - "महत्वाकांक्षी नारियाँ क्या कर रही हैं... कौन इन्हें समझायेगा कि इन नये विचारों को मान्यता देने के लिए सम्पूर्ण परिवेश में बदलाव लाना जरूरी है।" <sup>45</sup>

मधु धवन का उपन्यास 'जुर्माना' में शुचि के दादाजी को लगता है कि आधुनिक वर्ग मूल्यों को महत्व नहीं देते तभी दिशाहीन हो भटक रहे हैं। दादाजी का जब किशोर की मरणासन्न स्थिति की खबर मिलती है तो उन्होंने कहा - "यह माताएँ अपने दूध से संतान का पोषण नहीं कर डिब्बे के बने दूध से करती हैं। ममता पिलायी जाती तो मानवीयता या ममत्व की भावना आती। मशीन की बनी चीजें मशीनी रूप ही गढ़ेंगी।"

46

अर्थात् माँ-बेटे-बेटी का रिश्ता सबसे श्रेयस्कर है। माँ ही पिता से ज्यादा मनुष्य को मानवीयता का पाठ एवं संस्कार जागती है।

### भाई-भाई, भाई-बहन के संबंध में मूल्य

भाई-बहन, भाई-भाई का संबंध अटूट है। परिवार में आर्थिक विषमता होने से भी भाई-बहन के रिश्ते कायम ही रहते हैं। इसका प्रमाण डॉ. देवराज पथिक का उपन्यास 'जर्जर सेतु' में देखा जा सकता है। इस उपन्यास का शीलभद्र अपने भाई-बहन की देखभाल बड़ा भाई होने के नाते न निभा पाने के लिए दुःखी है। वह यह सोचता है कि - "बस! जरा यों ही सोचता रहा था कि आप जैसे भाइयों और

कंचन जैसी सुकोमल बहन के लिए दो समय भोजन भी नहीं जुटा पा रहा हूँ...  
कैसा अभागा बड़ा भाई हूँ।” 47

भाई-बहन के संबंध में त्याग उनकी आत्मीयता का और भी निकट ला देती है। पिता के पश्चात् प्रत्येक कमियों को भाई ही पूर्ति करता है। अगर, बहन बड़ी हो तो वो जिम्मेदारी उठा लेती है। सूर्यबाला के उपन्यास ‘सुबह के इन्तजार तक’ में मीनू बड़ी बहन के नाते अपने प्यारे भाई बुलू के भविष्य के लिए अपना जीवन सर्वस्व त्याग कर देती है। वह सोचती हुई कहती है - “एक सपाट घिसटती दिनचर्या... अतीत छूट गया... भविष्य बहुत दूर है ... वर्तमान के ना पर यह दिनचर्या - हाँ, थकी रही हूँ और कुछ कहने का न उत्साह है, न तड़प! कहानी जीवन अब बुलू से भरपूर है।” 48

माता-पिता के पश्चात् भाई ही बहन के लिए उसके पिता का कर्तव्य करता है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ की नायिका सीमा कृष्णकुमार दोनों प्रेम विवाह करना चाहते हैं। तब सीमा का भाई हेमन्त कृष्णकुमार के पिता इन्द्रसेद से कहता है कि - “चोर मैं नहीं मुखिया, चोर तुम हो कमीने। तूने सारे समाज को लूटा है। अपने सामने सिर उठाने वाले को कुचल डाला है तूने अपनी चाल से, परन्तु याद रखना हरामजादे! अगर मेरी बहन की जिन्दगी बरबाद हुई तो तुम्हारी यह इमारत धूल में मिल जायेगी।” 49

हमारे समाज में भाई अपने कर्तव्य को प्रेमपूर्वक उसकी इच्छाओं की पूर्ति करता है। बहन को संसार की सारी खुशियाँ समेट कर उसे अर्पित कर देना चाहता है। रामधारी सिंह दिनकर के उपन्यास ‘काली सुबह का सूरज’ में अमिरान व दिनेश की माँ के दूर के रिश्ते राम सिंह अमिरान के बुआ की लड़की की शादी में कहता है, जब अमिरान पैसों के लालच में उस लड़की को अथेड़ व्यक्ति से विवाह करवाता है। इस सन्दर्भ में रामसिंह कहता है - “हिम्मत थी तो अम्मा के सामने चूँ कहता कोई...

मेरी इकलौती बहन की बेइज्जती करने वाली की जुबान खींच लूंगा मैं... इस घर में उसका भी हिस्सा है... यह मैं सभी के सामने बता देना चाहता हूँ, घर अम्मा के नाम था।”<sup>50</sup>

आज विवाह पूर्व संबंध और विवाहोपरान्त संबंध में अनेक अंतर दृष्टिगोचर होते हैं। विवाह पूर्व दोनों के प्रेम में मिठास होती है। भाभी के प्रवेश से बहन कुंठित हो जाती है। बहनों को भाई के प्रेम में कठुता नजर आने लगती है। धीरे-धीरे यह मिठास विष में परिणत हो जाती है। जैसे कुसुमांजलि का उपन्यास ‘सीपी भर सुख’ में नायिका अनु अपने भाई के आचरण से कहती है - “बन्धु-बान्धवों जैसे शब्दों कर अश्रु को स्वतः ही हंसी आ गई। बन्धु-बान्धव कौन थे भला। भैया विवाह के पश्चात् अपनी घर गृहस्थी में उलझे हैं, वे मुझे स्टेशन छोड़ने तक नहीं आये।”<sup>51</sup>

आजकल सच्चे भाई देखभाल नहीं करते, दूर के मुँह बोले रिश्ते भी कम ही रखते हैं। आज संसार में रक्षाबंधन का अर्थ भी न समझते हुए मनुष्य रहते हैं। सिर्फ उसे फैशन या नाममात्र के लिए बांधा जाता है। बहने पैसे के लिए दूसरों को भाई मान लेती हैं। जहाँ भाई-बहन की रक्षा किसी भी मुश्किलों में करता है वही सच्चा भाई-बहन का रिश्ता है। नमिता सिंह का उपन्यास ‘अपनी सलीबे’ की नायिका सुधा चाचा के लड़के का रक्षाबंधन में राखी लेकर जाती है। तब भाभी और सुधा के वार्तालाप होता है कि - “भाभी ये विजय और भैया के लिए राखी लाई थी... आज रक्षाबंधन है न। लेकिन अरे ननद रानी। कहाँ, किसे फुरसत है त्यौहार की। इन लोगों का तो पता ही नहीं ये सी.डी.एम. साहब की कोठी पर गये थे... तुम ऐसा करो कि दोनों राखियाँ... और ये डिब्बा, तुम प्लीज फ्रिज में रखवा दो। राखियाँ भी डिब्बे के अंदर ही रख दो। रात में सब काम से निबटकर फ्रिज खोलेंगे तो देख कर तुरंत याद आ जायेगा और बांध लेंगे राखियाँ दोनों भाई।”<sup>52</sup>

इस मशीनीकरण जीवन में भाई-भाई का सहारा बन जाए और इससे ज्यादा भाईचारे की भावना की गति बढ़ाना और क्या होगी। देवराज पथिक का उपन्यास 'जर्जर सेतु' में भाई-भाई आर्थिक कष्टों के जूझने के बावजूद भी उनमें एकता का भाव स्थापित रहता है। शीलभद्र खुद भूखे रहकर अपने भाइयों की भूख को मिटाता है। उसका छोटा भाई दीपक उनसे कहता है - *“भैया को खिलाकर आप भूखे रहे और प्रायः प्रतिदिन हमसे भी कम खाये यह मुझे अच्छा नहीं लगता। आज जैसा बड़ा भाई भूखा रहे और मुझ जैसा छोटा भाई भरपेट भोजन करे, सचमुच ऐसे छोटे भाई को धिक्कार है। आपको तो हमसे भी ज्यादा खाना चाहिए। आप बड़े हैं, आप ही पर हम सबका जीवन रहता है।”* <sup>53</sup>

जीवन में प्रत्येक खट्ठे-मीठे अनुभव होते रहते हैं। जब भाई प्रेम में त्यागी बनता है तब परिवार एकतापूर्वक सुखी रहता है। जैसे डॉ. विष्णु पंकज के उपन्यास 'टूटा हुआ आदमी' में बिस्मिल अपने भाई हमीद के भविष्य को सोचकर उसको मिलने वाली अनेक खुशियों का त्याग करता है। *“मलिका बिस्मिल की तालीम खत्म कराकर उसे काम पर लगाना चाहती थी, मगर बिस्मिल ने ऐसा न होने दिया। वह चाहता था कि हमीद ऊँची तालीम करके बड़ा अफसर बने। घर का रवैया देखकर हमीद एकाध ट्यूशन करके अपना हाथ खर्च निकालने लगा था।”* <sup>54</sup>

कोई भाई प्रेमपूर्वक रहता है तो कोई लोभवश रहता है। आज के आधुनिक परिवेश में व्यक्ति स्वार्थों से घिर जाता है। रामधारी सिंह दिनकर का उपन्यास 'काली सुबह का सूरज' में नरेन्द्र का भाई दिनेश अर्द्धविकसित बुद्धि वाला है। उसको उसकी माँ भाई नरेन्द्र के साथ चिकित्सा के लिए भेजती है। वह अपने स्वार्थ के लिए वापस गाँव भेजने को तैयार हो जाता है। उसको पीटता रहता है। वह कहता है - *“एकदम चुप और शांत। पीटना नहीं चाहिए था दिनेश को। बेचारा अभागा है। बुद्धि नहीं है.. लेकिन इसके पीछे वह बेहद परेशान रहता है। आत्म-विश्लेषण सा करता हुआ वह*

निर्णय नहीं कर पा रहा था कि दिनेश को पीटने के पीछे अपने दाम्पत्य जीवन का तनाव था या स्वयं उसकी दिनेश के प्रति घृणा या एक अपेक्षित बोझ था।”<sup>55</sup>

हमारी भारतीय संस्कृति के अनुसार सभी कुछ प्रेम के धरातल पर ही टिका हुआ है। परिवार के प्रेम के बंधनों को बनाए रखने के लिए एक दूसरे की मान मर्यादा को बचाए रखना चाहिए।

### सास-ससुर और बहू के संबंध में मूल्य

सास-ससुर और बहू का संबंध अटूट संबंध है। इस बंधन में कटु और मधुर मुस्कानें विद्यमान रहती हैं। कटु आस्वादन जीवन के रंग को बदरंग बना देता है। तो कहीं मिठास भरकर जीवन को अमृतमय बना देता है। सुदेश भाटिया का उपन्यास ‘घूंघट’ में ममता का परिवार समष्टि परिवार है। वहाँ पे प्रवेश बहुत परिवार में मिल-जुलकर रहना चाहती थी। पहली बहू कहती है - “माता-पिता ने शुरू से ही हमें मिल-जुलकर रहने और काम करने की शिक्षा दी है। माँ हमेशा सिखाती रहती है कि सास-ससुर, माता-पिता और देवर-ननद, भाई-बहन के समान होते हैं।”<sup>56</sup>

सास अपना अधिकार खोना चाहती है। जब इच्छाओं के अनुसार रकम नहीं मिल पाती तब परिवार में सास-बहू के बीच कटुता व्यवहार आरंभ हो जाता है।

सास दहेज के कारण बहू को जला भी देती है। वह सोचती नहीं यही हाल हमारी बेटी का भी हो सकता है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ में इन्द्रसेन की बहन को दहेज के कारण सास जला देती है। तब पूछने के लिए जाता है तो कहती है - “मेरी बहन मर गयी। लेकिन आप लोगों ने खबर तक नहीं दी। उसकी सास मुँह चिढ़ाती हुई बोली - तुम तो दहेज भी पूरा नहीं दे पाये हो - फिर इतना परेशान होने की क्या बात है। समझो तुम्हारे सिर पर से एक बोझ हट गया।”<sup>57</sup>

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'शतरूपा' में भी दहेज न देने के कारण पति-पत्नी को किसी अकारण बनाकर सास अलग करवा देती है। सास खुशी से सोचती है "जब बिस्तर बांधते ही उसे लगा कि वह बहू से जीत गई है तब उसके सामने एक घटना नाच उठी। विवाह के कुछ दिन बाद ही सास से कही - बहू अपनी माँ को कहकर चौराहे वाला मकान मंगल को क्यों नहीं दिला देती?"<sup>58</sup>

कभी सास अपनी बहू को अपना समझती। उसे दूर के ढोल सुहावने लगते हैं। वह जितनी भी सेवा करे मगर उससे नफरत ही करने लगती है। सूर्यबाला का उपन्यास 'अग्निपंखी' के नायक जयशंकर की माँ अपनी बहू को सबके सामने नीचा ही दिखाती है। बहू का हर कार्य सास को बुरा ही लगता है। वह सोचती है और कहती है - "बहू ने पैर छुए तो उसका चेहरा देखकर पहले रो पड़ी, फिर निहाल होकर बोली थी, श्यामकिशोर की बहू, मेरी बहू जैसी सलोनी नहीं। ऊँह बिल्कुल चेंपरी जैसा तो मुँह है।"<sup>59</sup>

नई नवेली बहू को अपनी बेटी जैसा प्यार, स्नेह, दया दिखायेगी व एकाधिकार का भाव लगाकर बेटे-बहू को प्यार से रहने देगी तो वहाँ परिवार सुखमय रहेगा। सुदेश भाटिया का उपन्यास 'घूंघट' में सास अपने समधी से कहती है - "भाई साहब, आप संकोच किस बात का करते हैं। आपने हमें चाँद-सी बहू दी है। इसका शील और स्वाभाव ही हमारे लिए दहेज से बढ़कर है। अच्छे घर की सुशील लड़कियाँ ही हमारे खानदान की इज्जत-आबरू को बचा सकती है।"<sup>60</sup>

इसी प्रकार कुछ एक सास बहू को बेटी की तरह ही मानती है। उसके सभी कष्टों को दूर करने में रहती है। सुदेश भाटिया का उपन्यास 'आघात' की सास अपनी बहू का अपनी बेटी की तरह स्वच्छंदपूर्वक रहने के लिए कहती है। वह अपने बेटे के साथ अपनी बहू का भी ख्याल रखती है। वह कहती है - "बहू बेचारी तो एक मिनट

भी सांस नहीं लेती। सारा दिन कुछ न कुछ काम ही करती रहती है। उसके सिर पर हाथ फेरती हुई कहती - यह तो मेरी बेटी है, बहू नहीं।”<sup>61</sup>

बृजनारायण सिंह का उपन्यास ‘समर्पिता’ में समर्पिता कहती है - “सेवा करे मेरी जूती, मैं क्या उनकी नौकरानी हूँ कि सेवा टहल करती रहूंगी। मैं उनकी बहू हूँ और वह भी एक गूंगे बहरे लड़के की।”<sup>62</sup>

आजकल की बहू ससुराल की मर्यादा को अपनी मर्यादा नहीं समझती। बहुएँ सास-ससुर को अपने अधीन रखना चाहती है। ज्यादा पढ़ी-लिखी होने के कारण वह झुकना नहीं चाहती। नागर्जन का उपन्यास ‘वरुण के बेटे’ में माधुरी अपने ससुराल से नशाखोर ससुर की खुराफतों से उसे पति के पास टिक नहीं पाती। वह अपने घर में सह के भी रह सकती थी। क्योंकि हमारे समाज के अनुसार बहू का घर से निकलना उसकी चिता ही होती है, उसके पहले वह वहीं रहना संस्कृति के अनुकूल है। वहीं उसे अपने सास-ससुर की सेवा कर प्रेमपूर्वक व्यवहार से अपने अच्छे उत्तरदायित्व की पूर्ति करना उसका धर्म है। मगर माधुरी बाहर आकर दूसरे आदमी मंगल के साथ स्वेच्छापूर्वक अपनी मर्जी से जीवन जीती है। जब मंगल कहता है - “सयाने समझकर माँ-बाप और सास-ससुर ने तुम पर जो जिम्मेदारी सौंपी है उससे जी घुराना कायरता होगी। मुझे अपनी घरवाली के प्रति वफादार होना है, तुझे अपने घरवाले के प्रति।”<sup>63</sup> एक दूसरे पर अटूट विश्वास करने से ही बंधन का जोड़ मजबूत बनता है।

### भाभी-ननद-देवर के संबंध में मूल्य

नारी के रूपों में भाभी-ननद-देवर का रूप प्रतिष्ठावान रूप है। आज के आधुनिक परिवेश में भाभी का रूप ही बदल गया है। भाभी पढ़ी लिखी होने के कारण स्वच्छंद विचार वाली होती है जिसमें दोनों ही नौकरी करने वाले हो, शहरी वातावरण



में जीवनयापन करते हों तो समष्टि परिवार में रहने के कारण देवर-ननदों से कटुता व्यवहार ही चलाती है।

भाभी अपने देवरों को ननदों को इसीलिए रखना चाहती है कि उनके घरेलू कामकाजों में उनका हाथ बंटाये। देवर उनके लिए नौकर की तरह बाजार से दौड़-धूप कर वस्तुएँ ला दिया करें। जब देवर काम के लिए नहीं रहता तब उससे नफरत करने लगती है। कभी-कभी झूठे इल्जाम भी लगा देती है। इसी उपन्यास में जब दिनेश के कारण विभा तंग आ जाती है अपने पति से कहती है - “कहाँ थे सुबह से? विभा ने गुस्से में थाली को दिनेश के आगे पटक दिया। दिनेश ने थाली विभा के सामने ही पटक दी।”<sup>64</sup>

जहाँ भाभी देवर के लिए माँ बनकर सभी कार्य करना चाहिए था वही उसने इन्सानियत से गिरकर अर्द्धविकसित देवर की देखभाल करने के बजाय उसे मारती है। भाभी और देवर का संबंध माँ-बेटे का होता है। देवर भी अपना कर्तव्य भाभी की रक्षा करता है। देवराज पथिक का उपन्यास ‘जर्जर सेतु’ में शीलभद्र की पत्नी माधवी को चार गुण्डे छेड़छाड़ करते हैं तब दीपक भाभी के लिए उन गुण्डों को मार देता है और कहता है - “दीपक भीड़ में से गुण्डे को किस कदर घसीटते हुए अपने घर तक लाया था कोई सोच भी नहीं सकता था। दुबला-पतला दीपक और हाथी जैसी देह का वह नर-पिशाच गुण्डा। अपने घर के बाहर ले जाकर दीपक ने कहा-मेरी भाभी को माँ कहकर बुलाओ और पैर छूकर माफी मांगों अन्यथा मार-मार कर खालें खींच दूंगा।”<sup>65</sup>

परिवार में आने वाली नई नवेली देवर-ननदों का अपनी स्वार्थ इच्छाओं को त्यागकर रहेगी तो जीवन शांतिपूर्वक रह सकता है। परिवार विघटित होने से बच सकता है। बनाफर चन्द्र का उपन्यास ‘सवालियों के बीच’ में दिनेश अपने माँ पत्नी के साथ जाता है तो उसकी भाभी कहती है - “तुम तो ऐसे कह रहे हो जैसे सब कुछ

मैं ही खा रही हूँ। तुम लोगों के पास पेट है ही नहीं। मेरा तो पेट कुंडा है। कुछ बचता ही नहीं तो दूँ क्या इसे।”<sup>66</sup>

भाभी-ननद का रिश्ता अटूट होता है। भाभी ननद के लिए सखी बनी रहती है। मगर आज के जमाने में भाभी ननद के विवाह कराने में झंझट समझती है। उसके सुख-दुख का ख्याल नहीं रखती। रामधारी सिंह दिनकर का उपन्यास ‘काली सुबह का सूरज’ की विभा, नरेन्द्र की बुआ की लड़की यानी इसकी ननद को पैसों के लिए किसी अमीर बूढ़े से शादी करवा देती है। वह अपने पति से कहती है - “मैं तो शंका में थी कि कहीं बात न बनी तो क्या होगा। खैर अब जल्दी से यह शादी-वादी की झंझट खत्म हो। लग्न तो होगी इस फागुन में, इसी में करवा दीजिए झट-पट। हाँ, बेमतलब का सरदर्द है यह।”<sup>67</sup>

भाभी सही मायने में ननदों की सखी है। गुरू, माँ भी है। पथिक का उपन्यास ‘जर्जर सेतु’ में चार भाई मिल-जुलकर परिवार में रहते हैं। बड़ी भाभी ही देवर और ननद का पालन करती है। उनका ख्याल अपने बच्चों से ज्यादा रखती है। जब ननद कंचन की शादी में कम दहेज देने की नौबत आ जाती है इस वजह से ननद भतीजी से बदला ले लेती है। उसे अपनी भाभी पर भयंकर रोष था, वह मानती है विवाह में धन को व्यर्थ में पानी की तरह बहाना था। “भतीजी की शादी एक ऐसे गंवार युवक से करा देती है जो अनपढ़ और जाहिल था।”<sup>68</sup>

आज रिश्ते कच्चे धागे बन गए हैं। भाभी देवर के बीच ही अनैतिक संबंध भी स्थापित हो रहे हैं। चित्रा मुद्गल का उपन्यास ‘एक जमीन अपनी’ में भाई मेहता की पत्नी कोकिला अपने देवर के साथ अवैध संबंध होता है। अवैध संबंध के कारणवश अपनी पत्नी से अलग हो जाता है। वह सोचता है - “मंगनी होते ही एकाएक भाई का मन कोकिला की ओर से विरक्त होने लगा... वह बहुत कोशिश करती उसे घेरने

की...मगर भाई को शायद यह भाव हो चुका था कि उन दोनों के दरमियान चले आ रहे यौन संबंध अब उसे सुखमय भविष्य की राह में रोड़ा है।”<sup>69</sup>

### 3.2.2 व्यष्टि परिवार

आधुनिक काल में समष्टि परिवार व्यष्टि परिवार में परिणत हो चुका है। रामधारी सिंह दिनकर का उपन्यास ‘काली सुबह का सूरज’ में नरेन्द्र अपने स्वार्थ के लिए अपनी आर्थिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए बुआ की लड़की जो उसकी बहन लगती है कि शादी किसी अमीर बूढ़े आदमी से तय कर देता है। बेटी अपनी माँ से उस बूढ़े लड़के को देखकर कहती है - “मेरे साथ हुआ क्या है माँ! जिस लड़के से रिश्ते की बात हुई भी वह लड़का यह नहीं है। मेरे साथ धोखा हुआ है। लेकिन अब क्या किया जा सकता है, समझ में नहीं आता। दरवाजे से बारात लौटना बड़ा अशुभ होता है।”<sup>70</sup>

आज प्रत्येक व्यक्ति अपनी सुख प्राप्ति की होड़ में लगा है। संतान के लिए माता-पिता बोझ बन जाते हैं। उनकी नींव की मजबूती का कारण उनकी जननी है। आज नौकरीपेशा दम्पति अपनी संतान को अच्छे संस्कार देने में असमर्थ हो जाते हैं। मधु धवन का उपन्यास ‘करवट लेता वक्त’ में करिश्मा निशा की बेटी सुप्रिया के वैवाहिक जीवन के बारे में विचार विमर्श करती है। उसकी बातों को सुनकर जैरी अपने भविष्य के बारे में सोचती है - “करिश्मा की बातें सुन जैरी सोच में पड़ गई। वह पलभर के लिए अपनी जिन्दगी में झांकने लगी। अपने विचारों में डूब गई। अगर संस्कार देने की सख्ती करती या उचित मात्रा में अंकुश होता तो मेरी दोनों लड़कियाँ दो-दो बार तलाक न लेती... अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए डांस-डिस्को में डूबी रहती। दोनों की दोनों क्या जिंदगी जी रही है।”<sup>71</sup>

स्वातंत्र्योत्तर भारत की नई पीढ़ी में जो दिशाहीनता, लक्ष्य भ्रष्टता, मानसिक विघटन, चारित्रिक विनिपात और कुण्डित आचरण परिलक्षित होते हैं उसके लिए उत्तरदायी है परिवार एवं माता-पिता। चंद्रकांता का उपन्यास 'अर्थांतर' की नायिका कम्मो अपने भौतिक सुख की लालसा ने परिवार से भीतर ही भीतर अलगाव पैदा कर दिया। सोचती है कि - “रिश्ता-नाता, बहन-बुआ, गूंगी-बहरी, भोली-भाली, धूँधट में मुस्कुराती, अम्मा बुहारती, तुलसी चौरे पर दीए जलाती गृहलक्ष्मी। कम्मो ने पहली बार इस गृहलक्ष्मी के प्रति अनास्था महसूस की। सुनहरी झालरों मंडित अस्तित्वहीन का श्रृंगार कम्मों को बांध न सका। बुजुर्गों की दिखाई सुझाई लोक पर चलती वह अचानक ठिठक गई।”<sup>72</sup>

कभी व्यष्टि परिवार में पति-पत्नी का सामंजस्य ठीक नहीं हो या किसी तीसरे व्यक्ति के आगमन से भी सिर्फ दाम्पत्य जीवन में ही बिखराव नहीं आता। इसका बच्चों पर बुरा असर पड़ता है। परिवार में विश्वास, आत्मिक प्रेम, सुख-शांति आदि भाव खत्म हो जाते हैं। चंद्रकांता का उपन्यास 'अन्तिम साक्ष्य' में बीजी की मृत्यु हो जाती है। उसके बाद उनके दोनों बेटे घर पर अलग हो गए। मीना बीजी की सहेली होती है। उन दोनों के रिश्ते से परिवार टूट जाता है। लेखिका के द्वारा लिखी गई कथन - “बीजी की मृत्यु के बाद बाऊजी का घर जो टूट गया, सो अंत तक जुड़ न पाया। इसलिए मीना मौसी का आगमन भी उन्हें न उबार पाया।”<sup>73</sup> अर्थात् व्यष्टि परिवार अनेक कारण से समष्टि परिवार से अलग हुए है। मानव कल्याण या उनके अच्छे संस्कारों के लिए सम्रगता की स्थापना करने का प्रयास करना चाहिए।

### दाम्पत्य जीवन में मूल्य

भारतीय संस्कृति में दम्पतियों का स्थान सर्वोच्च रहा है। दाम्पत्य जीवन समाज, व्यक्ति तथा स्त्री-पुरुष से है। यह स्त्री-पुरुष को बांधता है। वैवाहिक सूत्र में

बंधे स्त्री-पुरुष के लिए यह आवश्यक है कि जो भी कार्य करें, एक-दूसरे की स्वीकृति से, एक-दूसरे के सहयोग से हो।

चंद्रकांता का उपन्यास 'अंतिम साक्ष्य' में कम्मो के दाम्पत्य जीवन को देखकर उसकी दादी कहती है - "कम्मों, पति-पत्नी के रिश्ते स्वर्ग में तय होते हैं। माँ कहती भी, पति-पत्नी के संबंधों को भी अन्य जन्मजात संबंधों की तरह स्वीकार लें तो तानव बढ़ेगा नहीं। यानी माँ-बाप, बहन-भाई के रिश्ते की तरह नैसर्गिक रूप से स्वीकृत।"

74

दम्पतियों का जीवन तभी सार्थक होता है जब एक दूसरे के मन को जीतकर, सुख-दुःख में समभागी बनते हैं। सफल दम्पति के परिचायक वे ही हैं जो अपने जीवन के यथार्थता को स्वीकार कर अपने जीवन की गति को आगे बढ़ाते हैं। एक दूसरे के ऊपर प्रेम, त्याग, आत्मीयता दोनों को समीप लाती है। दोनों को एक आत्मा बना देती है। डॉ० अनुराधा भार्गव का उपन्यास 'सत्य की ओर' में कुलविन्दर और नयना एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक जीवन निर्वाह करते हैं। वह सोचती है - "व्रत उसने जरूर रखा पर सारा दिन रोती रही। शायद कुलविन्दर का बहुत ज्यादा प्यार था कि वह नहीं चाहता था कि नाजुक सी जान सारा दिन भूखी रहे, प्यासी रहे।" <sup>75</sup> उन दोनों में आत्मपूर्वक प्रेम था। एक-दूसरे के लिए अटूट प्रेम ही दोनों के जीवन में मिठास लाता है।

### सफल दम्पति

सफल दम्पति वह जो अपने में सामंजस्य स्थापित कर एक दूसरे की भावनाओं को समझता है। दोनों एक दूसरे की इच्छा को समझ उसकी पूर्ति में लगे रहते हैं। सच्ची संगी वह है जो अपने पति-पत्नी प्रत्येक विषयों में प्यार जतायें। दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी एक साथ सुख या दुःख समान रूप से भोगते हैं। डॉ. अनुराधा भार्गव

का उपन्यास 'सत्य की ओर' में कुलविन्दर अपनी पत्नी नयना का कष्ट अपना समझता है और कहता है कि - *“क्या कसं नयना, मैं दिल के हाथों मजबूर हूँ। मैं इतना प्यार करता हूँ कि तुम्हें जरा सा भी कष्ट हो मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता।”* <sup>76</sup>

यह प्यार और आत्मयता पत्थर दिल व्यक्ति में भी मानवीयता जगा देती है। चाहे वह योग्य हो या अयोग्य। इसी प्रकार यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'शतरूपा' में उसका पति मंगल उसकी पत्नी शतरूपा की सहेली के पति के साथ संदेह करता है। वह इस बुरे लांछन को सह नहीं पाती, घर से निकल आती है। जब मंगल प्रायश्चित्त करता है तब एक दिन अचानक उसकी पत्नी से भेंट हो जाती है। उसकी तबीयत खराब रहती है। शतरूपा शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करती है। वहाँ उसे मनुष्यता के तौर पर उसकी सेवा करती है। वह जिसके घर में 'आया' का काम करती उस ठाकुर आदमी से कहती है - *“नहीं-नहीं, मैं इसे ऐसी हालत में नहीं छोड़ सकती। जानती हूँ कि आत्मिक रूप में मैं इसे जरा भी नहीं चाहती हूँ पर मनुष्यता की अपने जिम्मेदारियाँ होती हैं।”* <sup>77</sup>

परंपरागत मूल्यों के आधार पर पत्नी सहधर्मिणी होती है। दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी के बीच छोटे मोटे झगड़े होना स्वाभाविक है। फिर भी उनमें एक दूसरे के प्रति प्रेम और अनुराग बना रहता है। इसी बात को डॉ. देवराज पथिक के उपन्यास 'जर्जर सेतु' में शीलभद्र और माधवी में दिखाई देता है। वह कहता है - *“ऐसी खींचतान सम्बन्ध-विच्छेद तक को विवश कर देती है। फिर भी विभेदों और मानसिक एकरूपता के अभाव में भी सदियों से पारिवारिक गाड़ी खींच रही है। सच्चाई तो यह है कि पति-पत्नी की नोक-झोंक का भी अपना सुख होता है।”* <sup>78</sup>

'अंतिम साक्ष्य' उपन्यास में भी बीजी अपने दाम्पत्य जीवन के बारे में सोचते हुए कहती है कि - *“भीतर से जुदा होकर भी दाम्पत्य-सुख का दम भरना और*

घर-संसार के लिए दिन रात खटना निरर्थक श्रम के सिवा कुछ भी नजर न आया।<sup>79</sup>

दाम्पत्य जीवन ऐसा संबंध है जो अनेक झगड़ों और कटु वार्ताएँ संबंधों को मजबूत बना देती है। पुरुषों में सहनशक्ति की कमी होती है। जीवन में थोड़े से ही उतार चढ़ाव में वह हार मान लेते हैं। परन्तु पत्नी प्रत्येक परिस्थितियों में अनेक कष्टों को सहते हुए अपने परिवार में रहती है। सुदेश भाटिया का उपन्यास 'घूँघंट' में उसकी माँ की बातों में आकर जब उसका पति दहेज के कारण ममता को छोड़कर दूसरी शादी कर लेता है तब वह सोचते हुए कहती है - "जो उसके साथ घट रहा है उससे उसके भाई अच्छी तरह समझ रहे हैं। परन्तु यह संबंध ऐसा है जिसे चाहकर भी वह छोड़ नहीं सकती।"<sup>80</sup>

सुखी दम्पति वे ही हैं जो एक दूसरे के सहचर्य के बिना कोई भी कदम न उठाएँ। चंद्रकांता का उपन्यास 'अर्थांतर' की नायिका कम्मो पति विजय को खुश देखना चाहती थी। कामयाब नहीं हो पाती है। समाज के स्वार्थ साधन और प्रलोभन के उसके पति की संवेदना को पूरी तौर पर नष्ट कर दिया कम्मो की इच्छा पूर्ति नहीं हो पाती थी। इस कारण स्लीपिंग पिल्स अधिक मात्रा पर लेने के कारण बेहोश हो जाती है और परिवार के डॉक्टर उसे बचाकर कम्मो को पूछते हैं और कहते हैं कि एडजस्टमेंट की जरूरत है। कम्मो कहती है - "एडजस्टमेंट? पूरी जिन्दगी एडजस्ट करते, स्वयं को नकारने की विवशता पर वे विश्वास नहीं करते डॉक्टर, वह सब तो हमारी मजबूरी है, शारीरिक से अधिक मानसिक विवशता।"<sup>81</sup>

सफल और सुखी दाम्पत्य में पति-पत्नी दूर बिछुड़ कर भी उन्हीं को याद करते रहते हैं। उनका अटल विश्वास रहता है कि उनका सुख वापस प्राप्त हो जाए। यह ऐसा रिश्ता या संबंध है जो सभी रिश्तों से श्रेयस्कर होता है। वह आत्मीयता लाती है। डॉ. अनुराधा भार्गव का उपन्यास 'सत्य की ओर' में पति-पत्नी देश विभाजन के

कारण बिछुड़ जाते हैं। वह जीवन अंत तक किसी दूसरे से भी शादी नहीं करते। वे दोनों एक दूसरे को ही सोचते रहे। नायिका नयना के अलावा बचाए गए व्यक्तियों में एक व्यक्ति राममनोहर जोशी नयना के पिता लाल अमरनाथ के दोस्त थे। नयना और वे एक साथ हिन्दुस्तान में रहने लगे। यहीं पर रविकान्त नामक पात्र एक बड़े कारखाने के मालिक नयना के घटित जीवन को जानते हुए भी द्वितीय शादी के लिए तैयार हो जाते हैं। तब वह राममनोहर कहते हैं - “बेटा रवि, उसकी बीमारी का कारण तो उसका अतीत है। कुलविन्दर की यादें हैं। हमारे सामने तो वह हमेशा मुस्कुराने की कोशिश करती है पर बेटा मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि वह दिल ही दिल में उसे याद करके रोती है।”<sup>82</sup>

## विफल दम्पति

आज के आधुनिक युग में विफल दम्पति ही अधिकतम नजर आ रहे हैं। चित्रा मुद्गल का उपन्यास ‘एक जमीन अपनी’ में अंकिता का दाम्पत्य जीवन पति सुधांशु के अहंभाव के कारण दोनों में विवाह विच्छेद हो जाता है। उसका पति से कहना है कि - “मेरे लिए भी उसका मरना मेरी जिन्दगी से तुम्हारा निष्कासन है... वरना उसकी शक्त में जिन्दगी भर मुझे तुमको ढोना पड़ता क्योंकि वह हमारा बच्चा नहीं था... तुम्हारी कामुकता का परिणाम था.. मुझे तुमसे घृणा है घृणा... तुम्हारी अव्याशियों और ज्यादातियों को सती-साध्वी बनी मांग में सजाए इस मुगलते में रहना कि मैं स्त्रीत्व की पूर्णता का भ्रम जीती रहूँगी... लो इसी वक्त का रिश्ता खत्म।”<sup>83</sup>

आधुनिक दम्पतियों में व्यक्ति स्वातंत्र्य की उद्दाम लालसा के उत्तोलित विकास के कारण उनके जीवन मूल्यों में परिवर्तन आ गया है। आज पुरुष जीवन भर एक ही नारी से बंधा रहना पसंद नहीं करता। तलाक देना उसके लिए आम बात हो गयी। मधु धवन का उपन्यास ‘जुर्माना’ में रमेश आधुनिक विचारधारा से प्रभावित है। वह



दाम्पत्य जीवन में नीरसता का अनुभव करता है। वह तात्कालिक समय की मांग रूपी मुखौटा चढ़ा लेता है और फरिश्ता को छोड़ राधिका से विवाह कर लेता है, परन्तु जल्दी ही उसे तलाक दे, फरिश्ता के पास लौट आता है। मानव की इस दोहरी प्रवृत्ति के बारे में शुचि कहती है - “पति-पत्नी में क्यों होते हैं झगड़े! इन झगड़ों के मूल में किसका एहसास है? मस्तिष्क में उभरी कुंठा, नीरसता, हताशा, बंधन और कटुता का. ..। सक कुछ भूल शायद किसी भी चुहल में उलझ गया होगा। मन में उमड़ता-धुमड़ता काम भाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है।”<sup>84</sup>

पति चाहता है कि पत्नी उसकी खुशामद करे, बच्चों की परवरिश करे और घर गृहस्थी संभाले, परन्तु बदले में अपना उत्तरदायित्व उसे दिखाई नहीं देता। वह सहधर्मिणी न मानकर सिर्फ भोग वस्तु ही समझता है। पति, पत्नी को अपने अधीन ही रखना चाहता है। पति, पत्नी की भावनाओं को केवल दहेज से तौलता है। इस कारण दम्पति जीवन में दहेज के कारण पत्नी को झूठे इल्जाम बुरे लांछन डालना उसे चरित्रहीन साबित कराता है। सुदेश भाटिया के ‘घूंघट’ उपन्यास की नायिका ममता का पति मनीष माँ के कहने पर पत्नी को पैसे कमाने के लिए नौकरी पर शहर भेजता है। पैसों के लिए दूसरी लड़की से शादी करने के लिए तैयार हो जाता है। वह कहता है कि - “वहाँ अकेली गुलछरें उड़ाती थी। नीतिष किसका बेटा है मुझे तो यह भी पता नहीं”<sup>85</sup> नारी कम दहेज लाती है तो उसको उतनी ही मर्यादा मिलती है। यादवेन्द्र शर्मा का उपन्यास ‘तलाक दर तलाक’ का नायक रामरिख अपनी दूसरी पत्नी वृन्दा से कहता है जब वह पहली पत्नी की मदद व अपने स्वतंत्र जीवन में दखल देने के कारण कहता है - “क्यों नहीं बेच सकता? यूँ यह सब अपने दहेज में लाई है। मेरे बाप-दादों की जमीन-जायदाद है, मैं इन्हें बेचूंगा। ऐसी बकबक करेगी न तो जबान काट लूंगा। गधी कहीं की।”<sup>86</sup>

नर-नारी स्वतंत्र जीना चाहने के कारण दाम्पत्य मूल्य सुखय नहीं रह पाए। पति-पत्नी के विश्वास अविश्वास में बदल गए। मधु धवन का उपन्यास 'उस मोड़ पर' में स्त्री-पुरुष संबंध मूल्यों की प्राचीन परंपरागत संस्कारों में लिपटी पत्नी राखी अपने पति दीपक को ठुकरा नहीं पाती। उसके प्रेम को सच्चा मानकर कहती है - *"उस दिन के बाद मुझमें बल, शौर्य आ गया। मुझे जिन्दगी सुन्दर लगने लगी।"* <sup>87</sup>

आजकल पति-पत्नी अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए विवाहपूर्व या विवाहोत्तर यौन सम्बन्ध किसी पर-पुरुष या स्त्री से स्थापित कर लेते हैं। विवाह-पूर्व यौन सम्बन्ध हमारी भारतीय परंपराओं के अनुकूल नहीं है, हमारी मान्यता के बाहर है। यह सम्बन्ध नियमबद्ध हो गया है। जब यह शादी के बाद किसी मर्द से या स्त्री से सम्बन्ध का पता चलता है तो अशांति फैल जाती है। चंद्रकांता का उपन्यास 'अर्धांतर' में कम्मों का पति विजय शादी की पूर्व प्रेमिका जूली नामक स्त्री से संबंध हो जाता है। जब उसकी पत्नी को मालूम होता है तब से पति को नकारने लगती है। *"विजय की फाइलें झाड़ते उसने एक बादलों भरे दिन, वह फोटो पैकेट पाया जिसमें जूली और विजय की ढेर-सी स्मृतियाँ सुरक्षित थी। आत्मीयता से भरे पल नजदीकी का अहसास दिलाते चित्र कुछ वैसे ही पोजों में जैसे विजय ने पिछले दिनों कम्मों के साथ खिंचवाये थे।"* <sup>88</sup>

इसी प्रकार 'जिद्दी' उपन्यास के नायक की पत्नी शांता महेश नाम के आदमी से अवैध संबंध स्थापित कर उसके साथ भाग भी जाती है। पूरन अपने अतीत प्रेमिका के बारे में सोचता रहता है। इस कारण वह दूसरे से रिश्ता कायम कर लेती है। वह चिट्ठी लिखकर चली जाती है कि *"मैं जा रही हूँ... मैं आपकी कोई भी नहीं। फिर भी शांता। अरुण के हाथ से कागज गिर पड़ा। पूरन को बुरा मालूम हुआ कि बीबी तो उसकी भागे और चुहुंके अरुण के छूटे। आखिर को वही हुआ... वो चली गई ना महेश।"* <sup>89</sup>

आज शादी पूर्व यौन संबंध का दोष समाज में आज प्रत्यक्ष रूप में दृष्टव्य है। शिक्षा के अभाव के कारण भी पति-पत्नी में अशिक्षित व्यक्ति झुक जाता है। वहाँ डर ज्यादा प्रेम कम रहता है। जैसे रामधारी सिंह दिनकर का उपन्यास 'काली सुबह का सूरज' में अमिरत्न शिक्षित पत्नी विभा के कारण कई कारणों में समझौता कर लेता है। लेखक कहता है - *“उच्च शिक्षिता पत्नी हो और बीच के रिश्ते में आपसी पैदा न हो सके तो जिन्दगी कितनी कठिन हो जाती है। ऐसी पत्नी के साथ शांतिप्रिय जिंदगी के लिए बार-बार झुकना और डरना पड़ता है।”*<sup>90</sup>

दम्पति जीवन में संतानहीनता के कारण भी बुजुर्ग पति को दूसरी शादी के लिए प्रेरित करते हैं। ऐसी घटनायें समाज में अनेक देखने को मिलती हैं। संतान न होने पर पति-पत्नी के बीच या सास-बहू या अन्य रिश्ते परिवार में कलह उत्पन्न कर देते हैं। इससे दम्पत्य जीवन में दरार पड़ती है। सुदेश भाटिया का उपन्यास 'आघात' में सोना का पति अपनी माँ से कहता है - *“नहीं, मैं दूसरी शादी नहीं करूँगा। यदि मेरी किस्मत में बच्चा होगा तो सीमा का ही होगा किसी और का नहीं।”*<sup>91</sup>

इस उपन्यास में तो सीमा को पति ने शादी के लिए इन्कार कर दिया मगर समाज में कई दम्पति दूसरी शादी कर गलती कर बैठते हैं। उन्हें मानवीयता, आत्मीय प्रेम सहधर्मिणी से नहीं है। चंद्रकांता का उपन्यास 'अर्थांतर' के दम्पति जीवन में उसका पति विजय कम्मो प्रशांत के साथ नजर से देखता है। वह जानकर भविष्य को सोचकर अपने आपको बदल लेती है। कम्मो का चरित्र का लेखिका के द्वारा उस उपन्यास का अंतिम अंश लिखा है - *“कम्मो के किसी भी स्वीकार को विजय के अस्वीकृत होने का प्रश्न ही नहीं उठता। विजय के एकाधिकारी की उसका वह हमेशा स्वीकारेगी, हर हाल में, हर स्थिति में। क्योंकि उससे हटकर सोचना भी उतना ही त्रासदायी होगा जितना उस स्थिति को ग्रहण करना।”*<sup>92</sup>

कुछ दम्पति अपने संतान को खुद पालते नहीं हैं, आया ही पालती है। क्योंकि इसके कई कारण हैं। दम्पति दोनों नौकरी करने वाले होते हैं या दोनों के बीच समरसता नहीं रहती। बलभद्र तिवारी का उपन्यास 'रुको द्रोपदी' में एक दम्पति नौकरीपेशे होने के कारण अपने बच्चे को आया के पास सौंप के जाते हैं। लेखक के द्वारा कहे गए हैं - "वह अपने बेटे को धीरे-धीरे खो रही है। उसे पश्चिम के परिवार की एक कहानी याद आ गई जिसमें बच्चे का लालन-पालन आया करती और माँ-बाप ने उसे कभी अपने साथ न रखा, परिणाम यह हुआ कि बड़े होने पर आया को ही बच्चा अपनी माँ मानता था।" <sup>93</sup>

### 3.3 विवाह और जीवन मूल्य

परिवार संस्था, विवाह संस्था पर आधारित है। इस पद्धति के अनुसार लड़के-लड़कियों का विवाह उनके माँ-बाप की अनुमति से होता है। जिस प्रकार नारी अन्य मामलों में पराधीन थी, उसी प्रकार वह वैवाहिक मामले में भी पराधीन ही रही। उसे अपनी इच्छानुसार वर चुनने का अधिकार नहीं था।

सुदेश भाटिया का उपन्यास 'धूँधट' की नायिका ममता की माँ-बाप द्वारा चुने हुए, व्यक्ति मनीष से शादी कराते हैं। लेखक के द्वारा कहे गए वाक्य- "धूँधट के जिस घरे ने उसे वैवाहिक जीवन के बंधन में बांधा था, विवाह के जिन सात फेरों ने उसे सात शिक्षाएँ दी थी, उनका निर्वाह करती हुई वह उन पर न्यौछावर हो गई, पर अपनी संस्कृति पर आंच न आने दी।" <sup>94</sup> उसने भारतीय हिन्दु परम्परा के अनुसार जो सात फेरे लिए शादी के मंत्र पढ़े गये उसके मूल मंत्र के अनुसार पत्नी के अनुसार पत्नी का कर्तव्य पूरा करती है। चाहे बुरा हो या अच्छा, उसने संस्कृति नीति परक पालन किया है। मगर आज पुरुष इस नीति को अपनाता नहीं। वे अपनी खुशी के लिए अभी भी नारी को विलास की वस्तु ही मानता है। संस्कृति के विपरीत सभी काम

करता है। सात फेरे के अनुसार सात जन्मों तक वे दोनों प्रेम, आत्मीयता, विश्वास भाव, एक-दूसरे के प्रति रखना चाहिए। पुरुष ढोंग मात्र ही पति का कार्य करता है।

बलभद्र तिवारी का उपनस 'रुको द्रौपदी' में भी मीतू अपने पति शशि से कहती है जब वह किसी दूसरी लड़कियों को बुरी निगाहों से देखता है। मीतू के विश्वास को भंग करता है। कहती है - "शाबाश पतिदेव! टापका चाहिए सर्वगुण संपन्न रुपसी वो मैं नहीं हो सकती हूँ, यह मैं जान गई। जब आप अपना एस्थेटिक सेंस पूरा करो। मैं तुमसे मजाक कर रहा था। अरे जिसके साथ सात फेरे लिए हैं, उसे छोड़ सकता हूँ क्या?"<sup>95</sup> मगर यह सभी पुरुष ऐसे नहीं, समाज में कुछ ही पुरुष ऐसे होते हैं।

इन वैवाहिक विकृतियों ने यथा सम्भव सामाजिक संगठन को कमजोर तथा जर्जर ही बनाया। विशेषकर नारी वर्ग तो इन विकृतियों का सबसे अधिक शिकार बना। सभी जगह नारी ही कमजोर पड़ती है। अतः हर तरह के अत्याचार अन्ततः उसी से सम्बन्धित किये जाते थे। कुसुमांजलि का उपन्यास 'सीपी भर सुख' में केतन नाम पात्र अपनी बहनों की शादी आर्थिक विषमता के कारण नहीं कर पाता। वह कहता है - "हिन्दुस्तान में लड़की होना दुर्भाग्य है और लड़की का बढ़ना एक भावी त्रासदी है।... केतन को लगा की कविता लिखने से इतना पैसा नहीं मिलेगा, उससे पेट नहीं भरता।"<sup>96</sup>

### 3.3.1 अनमेल विवाह

आज अनेक पति-पत्नी एक ही छत के नीचे रहने के बावजूद भी जाने-अनजाने से जीवन व्यतीत करते हैं। आयु के भेद होने से संदेह, अविश्वास की दृष्टि पनपने लगती है। विचारों में यदि एकता नहीं है, पति-पत्नी के बीच के संबंधों में कड़वाहट होने लगती है।

यह वय में अनमेल अधिकतर आर्थिक तंगी होने के कारण, दहेज न देने के कारण, अधेड़ व्यक्ति से नवयुवती कन्या की शादी करनी पड़ती है। रामधारी सिंह दिनकर का उपन्यास 'काली सुबह का सूरज' का नायक नरेन्द्र अपनी मुँह बोली बहन की शादी अर्थ लोलुप की वजह से एक अमीर घराने के अधेड़ उम्र के व्यक्ति से तय कर देता है। वह विवाह करने के पहले अपनी माँ से कहता है - "उम्र ज्यादा है तो क्या हुआ? अच्छा, पढ़ा-लिखा खूबसूरत लड़का खोजते हैं तो निकालिये पचास हजार रुपये। लड़के को कौन पूछता है। वह कहता है कि सिर्फ उम्र ही न ज्यादा है। लड़के की काड़ी तो सब ठीक है। फिर शादी में खर्च भी कुछ नहीं होगा। रामलालजी ही सारा खर्चा करेंगे। कहाँ मिलता है ऐसा रिश्ता।" <sup>97</sup>

अनमेल विवाह का सबसे बड़ा कूप्रभाव तो यह होता है कि ऐसे बूढ़े पति और नवविवाहिता पत्नी के जीवन में सामंजस्य नहीं हो पाता और जीवन नरक के समान बन जाता है। आयु के साथ-साथ रुचि भी परिवर्तित हो जाती है। फलतः एक तरुण कन्या और बूढ़े पति में रुचि-भिन्नता के कारण सामंजस्य नहीं हो पाता और सामंजस्य के अभाव में सामान्य जीवन की आशा ही असंभव है। इससे कभी पारिवारिक कलह भी उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास 'संयुक्तक्षर' की नायिका श्यामा की शादी किसी अधेड़ व्यक्ति से करवा देते हैं। इसकी शादी में गाँव वाले भी कहते हैं कि - "गाँव की औरतें कह रही थी कि लड़का बूढ़ा है, शादी हो रही है कि बैल-बाछी का मेल हो रहा है। कहाँ श्यामा सत्रह-अठारह की और कहाँ यह दूल्हा चालीस-पैंतालीस साल का। क्या देखकर रामअवतार अपनी बेटी की शादी कर रहा है? कौन कसूर बाड़ी हमारी बाछी?" <sup>98</sup>

अनमेल विवाह के कारण नारी की मानसिक स्थिति नष्ट हो जाती है। प्रकृति के अनुसार बच्चे जन्म देने के लिए उसमें शक्ति नहीं रहती। रामवदेव शुक्ल का उपन्यास 'गिद्धलोक' में नायक किशन की शादी छोटी उम्र में ही हो जाती है। वह गाँव

छोड़कर शहर में पी.एच.डी. करता है तब कहता है - “इसी की उम्र की लड़कियाँ यूनिवर्सिटी में हंसती-खिलखिलाती हैं तो वह अपराध बोध से भर जाता है। आठ साल पहले शादी न हो पायी होती तो वह भी इसी तरह खिलखिलाती होती। असमय विवाह ने उसे नष्ट कर दिया।”<sup>99</sup>

अनमेल विवाह के वैचारिक, रुचि और वय के अंतराल से किसी भी दृष्टि से दुःखद ही प्रतीत होता है। यह जीवन में मिठास न घोलकर कड़वाहट में बदल देता है। इसे सफल जीवन के रूप में परिणित नहीं किया जा सकता। वय का अंतराल या विचारों की वैमनस्य में पति-पत्नी में क्लेश स्वतः ही हो जाता है। चित्रा मुद्गल का उपन्यास एक जमीन अपनी में अंकिता का पति सुधांशु एकाधिकार भाव का है। अंकिता शिक्षित व आधुनिक नारी होने के नाते उसे झुककर चलना पसन्द नहीं सुधांशु अंकिता से कहता है “यह मेरा घर है... और यहाँ तख्ती लहकेगी जैसी में चाहूँगा... इसका फैसला तुम कैसे कर सकती हो। मैं वहीं करूँगी... क्योंकि इस घर के लिए मैंने अपना सब कुछ होम कर दिया... मुझे हक है यह फैसला करने का..’ ‘...यू शटअप कमीनी औरत’ ‘कमीनी?’”<sup>100</sup>

अनमेल विवाह के कारण पति-पत्नी का दाम्पत्य सुख सुखमय नहीं रहता। कभी अधेड़ आदमी के नवजान बच्चे हो तो उसे नवयुवती पत्नी को अपने बेटे के साथ कभी-कभी संदेह करने लगता है। उनमें अविश्वास पैदा हो जाता है। चंद्रकांता का उपन्यास ‘अंतिम साक्ष्य’ में बारह बरस की लड़की मीना की शादी पचास साल के अधेड़ उम्र वाले व्यक्ति के साथ कर देते हैं। उसके बेटे के साथ की मीना का पति शक करता है। इस कारण वापस चाचा-चाची के पास छोड़कर चला जाता है। मीना कहती है - “फूटा भाग लेकर न आई होती, तो जवान-जहान माँ-बाप को ही क्यों खा जाती? अब चाची सँवारेगी क्या खाक? लाल तेरे चरित्र पर शक करता है, उसके जवान बेटे के साथ।”<sup>101</sup>

अनमेल विवाह किसी भी स्थिति में दम्पतियों के लिए सुखदायी नहीं है। जिस प्रकार नारी का कर्तव्य, जिम्मेदारी है वैसे ही पुरुष भी पत्नी को सहधर्मिणी मानना अनिवार्य है। जब यह मानने लगेगा जीवन सुखमय रहेगा। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'तलाक दर तलाक' में वृन्दा अपने पति रामरिख से कहती है जब उसका पति पत्नी को उपहारों से खुश करना चाहता है - *“मुझे लग रहा है कि मेरे लिए उपहार सस्ते हो रहे हैं और आप महंगे। मुझे आपकी दरकार है स्वामी, यह धन आदमी को मुर्दा बना देता है।”*<sup>102</sup>

### 3.3.2 दहेज

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार - *“दहेज वह सम्पत्ति है जो एक स्त्री विवाह के समय अपने साथ लाती है या दिया जाता है।”*<sup>103</sup>

दहेज हमारे समाज में एक रिवाज के रूप में प्रचलित है। इसे हम वर मूल्य भी कह सकते हैं। दहेज की मात्रा कितनी होगी यह समाज के प्रचलित रीति-रिवाजों पर आधारित है। दहेज में लड़की के माता-पिता कम दहेज देते हैं तो उनका जीवन नरक बन जाता है। लड़के वाले दुर्व्यवहार करने लगते हैं। उनको कितना भी देने से पेट नहीं भरता है। सुदेश भाटिया का उपन्यास 'धूँघट' में ममता की नानी उनकी बेटी से कहती है - *“तुझे पता नहीं न कि बेटी के माता-पिता को समाज में लोगों के सामने कितना झुकना पड़ता है, अपने जीवन भर की पूँजी दहेज में दे देने पर भी बेटे वाले का पेट नहीं भरता। तिलक दहेज के इस जमाने में बेटी माता-पिता के लिए बोझ बन जाती है।”*<sup>104</sup>

विवाह में पति-पत्नी को एक बनाता है। आज पति, पत्नी के मायके से रुपये ऐंठना, अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। विवाह का असली अर्थ मिट गया है। राजेन्द्र पाण्डेय के उपन्यास 'संयुक्ताक्षर' की नायिका श्यामा के पिता को मन में एक



डर था जब तो सोचते हैं उसकी पहली लड़की की शादी में लड़के वाले पहले से ज्यादा न मांग करें। “एक तरफ मन बेटी की शादी से खुश था, तो दूसरी तरफ यह दहशत दिल में धीरे-धीरे फेलती जा रही थी कि लड़की वाले पता नहीं अभी और क्या इनसे दहेज मांगेंगे।” <sup>105</sup>

दहेज के लालच में जीभ लपलपाते पुरुष वर्ग आज रिश्तों को दौलत के तराजू में तौलने लगा है। पर नारी शादी-ब्याह के रिश्तों की खातिर आना सब कुछ समर्पित करने को तैयार नहीं है। चंद्रकांता का उपन्यास ‘आकांक्षा’ की मृणालिनी जब पुरुषों को दहेज रूपी जोंक के हाथों कैद पाती है तो सोचती है - “मुझे सब इस प्रकार देखने लग गए हैं जैसे मैंने भी लालच का अंत नहीं। मैं सोचती हूँ गरीब लड़कियों का क्या हाल होता होगा? धन की खातिर किसी की हवस बनना भी तो समस्या का समाधान नहीं।” <sup>106</sup>

कभी माता-पिता नहीं सोचते कि उम्र के बड़े विपरीत स्वभाव वालों से विवाह कर नारी कैसे पूरी जिन्दगी काटेगी। मगर क्या करे। उनका कर्तव्य है विवाह कर देना नारी वहाँ पर जुल्म को सहती हुई कभी आत्महत्या कर लेती है, या वे मार भी देते हैं। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ का कृष्णकुमार के पिता इन्द्रसेन की बहन को ससुराल वाले दहेज के कारण मार डालते हैं। इन्द्रसेन क्रोध से कहता है - “मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरी बहन को सर्प ने नहीं डसा था, बल्कि उसे दहेज ने डस लिया। आप सबने मिलकर उसे मार डाला है।” <sup>107</sup>

दहेज के कारण अनमेल, विलंब, अंतर्जातीय, प्रेम विवाह आदि हो रहे हैं।

### 3.3.3 विलंब विवाह

आजकल विलंब विवाह अधिक मात्रा में हो रहे हैं। माता-पिता अपने बच्चों को अपने मन-पसंद वर ढूँढने से लिए इन्कार करते हैं। माता-पिता अधिक दहेज

मिलने वाली जगह पर लड़की देखते हैं, इस कारण विलंब होता है। चंद्रकांता का उपन्यास 'अंतिम साक्ष्य' में कैलाश मीना का दोस्त उससे कहता है - "यह भी हमारे समाज का रोग है। मीना। माता-पिता तमाम उम्र बच्चों की खुशियाँ चाहते हैं, पर ऐन वक्त परंपरागत विश्वास और रुढ़ि नैतिकताएँ उन्हें जकड़ लेती है। मीना के घर में मूल्य जैसी बात ही नहीं होती तो शायद मीना खूँटे बंधी गाय-सी जिसके साथ बांधी जाती, बांध जाती है और तमाम उम्र मुँह बंद करके पड़ी रहती है।" <sup>108</sup>

कभी-कभी नर-नारी किसी दाम्पत्य जीवन को देखकर शादी नहीं करते। विवाह के बारे में माता-पिता को स्पष्ट रूप से कुछ नहीं बताते। माँ-बाप बच्चों को कन्फ्यूज कर देते हैं। उनकी महत्वाकांक्षाएँ अत्यंत ऊँची होती है या और कुछ भी। कुसुमांजलि का उपन्यास 'सीपी भर 'सीपी भर सुख' की नायिका अश्रु अपने माता-पिता के दाम्पत्य जीवन को देखकर विवेक व नवीन भैया से कहती है - "देखिए भैया, हम सबने जिस प्रकार अपने जीवित रहने के अधिकार की पिताजी द्वारा अवहेलना देखी है उनका सन्ताप उम्र भर साथ रहेगा। भविष्य में अपने बल पर जो कुछ प्राप्त किया जा सकता है उसे दूसरों के हाथों में सौंपने का साहस नहीं। सुख के लिए निश्चित सुख की बलि नहीं दे सकती। चाहे वह कितनी भी कम क्यों न हो।" <sup>109</sup>

वैवाहिक बंधन के मूल्यों से अनभिज्ञ युवा वर्ग दिशाहीन हो भटक जाते हैं। इसके लिए कहता है - "विवाह परमात्मा द्वारा गढ़ा हुआ पूर्व निश्चित संजोग है। कभी सोचता हूँ यह एक लाटरी है, किस्मत पर निर्भर है... यह मनुष्य द्वारा रचा जाता है... प्रश्न ही प्रश्न उभरते हैं, लेकिन कोई समाधान नहीं।" <sup>110</sup>

बनाफर चन्द्र का उपन्यास 'सवाल्लों के बीच' का दिनेश अपने दोस्त लखीम से कहता है - "इन्जीनियर बनने के बाद तुम्हारे पिता को एक लाख नकद मिलेगा और दहेज में एक खूबसूरत लड़की के साथ तुम्हें ढेर सारा सामान। तब तक तो यार मैं बूढ़ा हो जाऊँगा। इसके लिए उसका दोस्त कहता है वही जो अब तक करते आ रहे

हो। पाच-छह साल का समय कोई ज्यादा नहीं होता। बहुत जल्द बीत जायेगा, धैर्य रखो तब तक किसी वैश्या का घर तलाश करो। क्योंकि इनती लड़कियाँ तो मिलेगी नहीं जो पाँच साल तक तुम्हारे काम आती रहे।”<sup>111</sup>

अगर शादी नहीं होती तो इसका परिणाम यही होता है। नारी का विवाह विलंब हो तो उसको कष्ट अधिक मात्रा में सहना पड़ता है। कुसुमांजलि का उपन्यास ‘सीपी भर सुख’ में अश्रु बीमार में पड़ी रहती है। सोचती है - “इतने बड़े शहर में अकेली बीमार कैद सी हो गई हूँ। कौन पूछे अश्रु कैसी हो? यह अकेलापन जिसे शायद पलायन कहते हैं, मेरी पसन्द थी। मैं खुद ही तो अच्छी खासी स्कूल वाली नौकरी छोड़कर यहाँ ऑफिस में ऑफिस अस्सिस्टेंट बनकर आई थी। विवाह के लिए मैंने खुद ना की थी। इस बीमारी में किसको बुलाऊँ यहाँ।”<sup>112</sup>

अर्थात् नर-नारी को समयानुसार समंवय से विवाह करना चाहिए।

### 3.3.4 अन्तर्जातीय विवाह

वर्ण व्यवस्था से उत्पन्न समस्याओं में ही अन्तर्जातीय विवाह की समस्या एक बड़ी समस्या है। विवाह किसी भी जातीय व्यक्ति से क्यों न हो उसे जीवन्त निर्वाह करने पर ही सफल बनता है। रूढ़ियों और परम्पराओं की नीति को तोड़कर रख दिया है। इस कारण पुराने संस्कारों के व्यक्ति से नाता-रिश्ता तोड़ लेते हैं। यह एक प्रकार प्रेम विवाह है।

चंद्रकांता का उपन्यास ‘अंतिम साक्ष्य’ में कैलाश मीना का दोस्त का विवाह अंतर्जातीय विवाह के इस कारण अपने पिता से रिश्ता तोड़ कर बाहर आ जाता है। मीना से कहता है - “कैलाश के पिता तो अपने संस्कारों की जंजीरों से इतने जकड़े हुए थे कि ब्राह्मणों में भी उपजातियों में बेटी देना मंजूर नहीं था और मैं तो कायस्थ

था। उनकी परंपरावादी मान्यताओं के महल को ढहाने के लिए हमारा रिश्ता बहुत बड़ा धक्का था।”<sup>113</sup> बड़ों को आधुनिक एवं परिवर्तित मूल्य बड़ा धक्का पहुँचाता है।

रामधारी सिंह दिनकर का उपन्यास ‘काली सुबह का सूरज’ में नरेन्द्र अंतर्जातीय विवाह कर लेता है। उसकी माँ कहती है - “...एक मामूली सी बात। स्वेच्छा से किया गया अंतर्जातीय विवाह बाबूजी बर्दाश्त नहीं कर सके और माँ आशा करती है कि नरेन्द्र घर के डूबते जहाज को उबार लेगा।”<sup>114</sup>

कुछ नवयुवक भी पुराने संस्कार से जकड़े हुए होते हैं। इस कारण अच्छे वर को हाथ से छोड़ देते हैं और संत्रस्त, कुण्ठा एवं अकेलेपन की त्रासदी पड़ती है। मधु धवन का उपन्यास ‘जुर्माना’ में शुचि पुराने मूल्यों से जकड़ी हुई। उसका पति जयंत समझाता है कि दुनिया आत्मसीमित होती जा रही है। वह सोचती है - “शायद जयंत उसके दिन को ठेस पहुंचाये बिना उसे बतलाना चाहते हैं कि समाज के मूल्यों का ढांचा अब नई तकनीक से बन गया है और तुम प्राचीन को लिए हो।”<sup>115</sup>

आज के परिवर्तित मूल्यों में अंतर्जातीय विवाह एक जरिये से दहेज का उन्मूलन करता है। उसके साथ माता-पिता के ख्यालों का नाश, अमर्यादा करता है। बनावर चन्द्र का उपन्यास ‘सवालियों के बीच’ में लखीम बड़ों का आदर करने के कारण उसकी प्रेमिका पूनम से शादी उनकी स्वीकृति से करना चाहता है। वह कहता है - “अभी भी माँ-बाप से सलाह लेना बाकी है, जबकि पूनम तुम्हारी नस-नस में समा चुकी है। दिनेश कहता है - राजी हो या ना हो, लेकिन एक बार पूछना तो पड़ेगा ना। जब उन्होंने पैदा किया, पाला-पोसा है, पढ़ा-लिखकर इस काबिल बनाया है, कुछ न कुछ तो हक है उनका मुझ पर। माँ-बाप का मुँह ताकना न मेरी आदत है और न मेरी मजबूरी।”<sup>116</sup>

अगर माँ-बाप ही इस दहेज का अन्त कर के मंजूरी से शादी करेंगे तो परिवार सुखी रहेगा। परंपरागत मूल्यों का भी नाश न होगा। सुदेश भाटिया का उपन्यास

‘घूँघट’ की ममता के माता के ससुराल उनके लड़के की शादी बिना दहेज से करना चाहते थे। चाचा, बड़े पिताओं के शादी में रमणी कहती है - “अम्माजी यदि आपको मेरी बहने पसंद हो तो गोविन्द और माधव दोनों की शादी हमारे घर में कर दें। माँ ने पूछा - तुम्हारी छोटी बहन तुमसे कितने साल छोटी है?” <sup>117</sup>

### 3.3.5 प्रेम विवाह

पाश्चात्य सभ्यता में प्रेम विवाह आवश्यक अंग बन गया है। भारत में जब किसी की ओर आकर्षित होते हैं तो हम उसके रूप एवं आकर्षण की वासना के जाल में फंस जाते हैं और उसके गुण एवं व्यक्तित्व से अधिक प्रभावित नहीं होते। प्रेम मानसिक एवं शारीरिक होता है। यह प्रेम एक ऐसा रोग है जो कोई युवावस्था करने लगते हैं तो पागल बन जाते हैं। प्रेम व्यक्ति को अच्छा या बुरा बनाता है। प्रेम सबके दिल में पनपता है... यह वैयक्तिक होता है। डॉ. देवराज पथिक का उपन्यास ‘जर्जर सेतु’ में प्रेम शब्द का अर्थ को लेकर लेखक का कथन है - “जिसे प्रेम का भूत सवार हो जाता है वह उसे पागल बना छोड़ता है। उसे हर सपना रंगीन दिखायी देता है। हर संध्यामारक मस्ती भरी सोनकली का हाल है। वह उठते-बैठते, चलते-फिरते, खेलते-खाते रघुवीर के लोभी आकर्षण में डुबकियाँ लिया करती थी। समय की विडम्बना को वह किसी भी सउख से सुनने को प्रस्तुत न थी।” <sup>118</sup>

भारतीय परंपरा नारी के अनुसार जिसे वह चाहने लगती है उसे ही सर्वस्व न्यौछावर करना चाहती है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ में कृष्णकुमार सीमा के प्रेम भरा जीवन देखकर लेखक का कथन है कि - “नारी अपने हृदय में एक ही पुरुष की प्रतिमूर्ति स्थापित करती है और उसी के साथ वह भविष्य के कई सुनहरे सपने देख लेती है। उस पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए सर्वदा तैयार रहती है।” <sup>119</sup>

इसी प्रकार यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'दो रंग' की नायिका मोनी अपनी बहन लीला से कहती है कि - "प्रेम तुम उससे इसलिए करती हो कि वह एक सुन्दर, कमाऊ और स्वस्थ युवक है। ऐसे युवक को हाथ में आने के बाद अपने पंजे से नहीं निकलने देना चाहिए। ऐसे प्रेम करने वाले लड़के बड़े सौभाग्य से मिलते हैं।" 120

राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'पिंजरे के पंछी' की नायिका सीमा को इन्द्रसेन के कुछ गुण्डे उसको अचेतन में बलात्कार कर देते हैं। मगर नायक फिर भी उसी से विवाह करना चाहता है। परन्तु सीमा का अन्तर्मन कुरेदता है। वह सोचती और कहती है - "किन्तु मैं तुम्हारे योग्य नहीं रही किशन। न जाने बेहोशी के दरमियान मेरे साथ शकुनि ने क्या व्यवहार किया होगा। मैं कलंकित हो चुकी। उसके लिए किशन कहता है - यह तुम्हारा भ्रम है सीमा। तुम्हारे साथ जो भी हुआ, वह बलात् हुआ... भूल जाओ उसे। तुम्हारा मन मन और हृदय निष्कलंक हैं। तुम पूर्ण पवित्र हो।" 121

यहाँ उसके वैयक्तिक श्रेष्ठ गुण झलकता है। व्यक्ति को प्रेम अच्छे रास्ते पर ले जाता है। मगर पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर व्यक्ति अपने साथी को खुद चुनता है वह अच्छा या बुरा जाँचने के पहले ही चुन लेता है। फिर बदनाम, कुण्ठित ही होता है। चंद्रकांता का उपन्यास 'अंतिम साक्ष्य' में बीजी के बेटे सुरेश सरोज नामक लड़की से शादी से पूर्व प्रेम करता है जिससे लड़की बदनाम हो जाती है। पहली बात तो हमारी संस्कृति के अनुकूल लड़कियाँ शादी के पहले किसी मर्द को देखती या चाहती नहीं है। मगर वह चाहने लगे तो उसी से विवाह भी करती है। इसमें सुरेश-सरोज से संबंध रखती है। बीजी कहती है - "सुरेश-सरोज के संबंधों में वह सरोज को ही दोषी ठहराती। ये आजकल की छोकरियाँ। वे कान पकड़कर तौबा करती। मुँह अंधेरे सरोज छत पर निकल सुरेश के कमरे में तांक-झांक करती। बूढ़ा बाप छत पर सीधे पड़ने पर बेटी खुलेआम मुँडेर लाँघ जाती है।" 122

सरोज पाश्चात्य प्रभाव को अपनाती है। आजकल के शिक्षित नारी अपने वर को खुद चुन लेती है। मगर वह धन के प्रति मोहित रहती है। बाहरी आडम्बरो को चाहती है। व सोचती है अमीर घराने में शादी करें तो ऐशो आराम से जी सकते हैं। इस कारण आजकल युवती प्रेम करती है। डॉ. देवराज पथिक का उपन्यास 'जर्जर सेतु' में अमिरत्न के तीसरे विवाह पर दीपक की पत्नी इन्दु सोचती है - "इन्दु ने ऐसी अध्यापिकाओं के साथ काम किया था जो हर समय भौतिक सुखों एवं व्यक्तिगत ऐश्वर्य को ही महत्वपूर्ण मानती थी। वैसे भी महानगर के रिश्तों की परिभाषा आर्थ-केन्द्रित हो गयी है। अतः इन्दु की प्रायः हर शिक्षिका ने अपने विवाह को इसी अर्थ की तुला पर तौला था।" <sup>123</sup>

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'अधिकार' की नायिका प्रेमा मानसिक प्रेम का प्रमुखता दी है। यही हमारी संस्कृति है। वह वह डान्सर होने के बावजूद भी परंपरा को नहीं छोड़ पाई। वह राजेश के बड़े भाई रमेश से कहती है - "मेरे मन में राजेश के प्रति जरा भी छल की भावना नहीं है। मैं न उसके धन की भूखी हूँ और न मैं उससे शादी करके बड़े घराने की बहू कहलाना चाहती हूँ। आप मुझे सिर्फ राजेश को दे दीजिए।" <sup>124</sup>

भारतीय परंपरा के अनुसार प्रेम करने वाले से शादी करना या शादी के बाद प्रेम करना भारतीय संस्कृति के अनुकूल है। भारतीय समाज में परंपरागत वैवाहिक मूल्य परिवार में ऐसे हैं जिनका सुखी जीवन के लिए पालन अनिवार्य है। मधु धनवन का उपन्यास 'जुर्माना' में ननद ने अपने विनोद से बातों के दौरान कहा कि लव मैरिज ज्यादा सफल हुए। विनोद ने हैप्पी मैरिज का रहस्य जानना चाहा तो उसने कहा - "हैप्पी मैरिज होती नहीं है, उसे बनाना पड़ता है। ब्याह के बाद शर्तें नहीं रखी जाती। प्यार किया जाता है और प्यार में हम हर काम कर सकते हैं।" <sup>125</sup>

मधु धवन का उपन्यास 'करवट लेता वक्त' में सुप्रिया अंतरिक्ष से कान्फ्रेक्ट मैरिज करती है। वह प्राचीन रूढ़ियों और परंपराओं का विरोध करती है। वह कहती है - "भाई मुझे तो बड़ा पसंद आया यह विवाह... दिल किया तो विवाह के बंधन में पड़े रहे नहीं तो छोड़ दो।" <sup>120</sup>

ममता कालिया का उपन्यास 'दौड़' में भी वैवाहिक जीवन का मूल मंत्र का अर्थ छूटते जा रहे हैं। पवन का वैवाहिक जीवन इंटरनेट और फोन के जरिये स्टेला से अपना संबंध रखता है। पवन कहता है - "छोड़ कहाँ रहा हूँ पापा, यह कम्पनी इतनी व्यस्त रहती है कि इंटरनेट और फोन पर मुझसे बातें करने की फुर्सत नहीं निकाल पा रही है। इंडियन एयरलाइंस सिर्फ सात घंटे की उड़ान में हम लोग मिल सकते हैं। यानी सेटेलाइट और इंटरनेट से तुम लोगों का दाम्पत्य चलेगा?" <sup>127</sup>

अच्छे संस्कार में पत्नी नारी ही वैवाहिक जीवन को जान सकती है। सभी कष्टों को सहती है और कर्तव्य निभाती है। सुदेश भाटिया का उपन्यास 'धूँधट' में ममता सभी कष्टों को सहती है। लेखक कहते हैं कि - "वह इतनी पढ़ी-लिखी और समझदार होकर भी अपना वैवाहिक जीवन सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण बनाए रखने के लिए अनजान बनकर सब कुछ सहती रही।" <sup>128</sup>

### 3.4 स्त्री-पुरुष मूल्य परिवर्तन की स्थिति

समाज में नारी की स्थिति सदैव पूज्यनीय ही रही है। नारी पुरुष के अधीन ही रहती है। पुरुष नारी को संदेह दृष्टि से ही देखता है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'पिंजरे के पंछी' की सुमिता का पति नगराज है। वह अपनी पत्नी पर सन्देह करता है, पत्नी को अपनी सेविका समझता है। जब कृष्ण उसकी मदद करता है तो सुमिता आदर्श पत्नी होने के कारण वह नहीं चाहती थी कि कृष्ण मेरी सहायता करें। वह कहती है - "कृष्ण! तुम्हें किसने कहा था - हम दोनों के बीच आने के लिए। सुमिता



कहने लगी। चल जाओ, मेरे घर से। नहीं तो तुम्हारे कारण मैं भी बेघर हो जाऊँगी। यहाँ तो पैरों तले कुचलती हुई जिन्दगी जी रही हूँ। बाहर मैं एकदम बेसहारा होकर कैसे जीऊँगी मैं?” 129

चाहे नारी कितनी क्यों न आदर्श हो मगर पुरुष के लिए भोग्य वस्तु ही है। पुरुष उसे रीतिकाल से ही नारी का अमर्यादा व भोग्य वस्तु ही समझता है। चंद्रकांता का उपन्यास ‘अंतिम साक्ष्य’ में लेखिका का कथन है कि - “वक्त कुहरे की परतों पर परतें जमा देता है और अंधी दौड़ में हाँफते-भागते लोग खूँख्वार पशु बनकर हर संज्ञा खा जाते हैं। शेष रह जाती है एक लपलपाती भूख, जिसमें स्त्री सहज एक औरत रहती है। माँ, बहन, बेटी सभी संबंधों से परे, एक भोग्य शरीर मात्र।” 130

मगर फिर भी संसार उसे आगे नहीं बढ़ने देता है। अगर घर से बाहर निकलती है तो उसे चारों दिशा बन्द हो जाती है समाज में पुरुषों एवं दूसरी नारियों से भी लड़ना पड़ता है। उसकी वैयक्तिक मूल्य दांव पर रख कर ही समाज में लड़ सकती है। कुसुमांजलि का उपन्यास ‘सीपी भर सुख’ की नायिका अश्रु के पिता उसकी माँ को इस हालत को देखकर अश्रु सोचते हुए कहती है - “स्त्री यदि घर मार खाकर रहना चाहे तो उसे रहने न दिया जाए और यदि अपनी रक्षा करने हेतु कुछ कदम उठाए तो वह चरित्रहीन कहलाए। ऐसी स्त्री के लिए चार नहीं पूरी दस दिशाएँ बन्द हैं।” 131

समाज में नारी को अपना साथी चुनने का अधिकार नहीं है। जब वह किशोरवस्था में पहुँचती है तो विवाह के समय पुरुष बैल खरीदने के तरह आके देखते हैं। नारी को तुल्य वस्तु ही समझता है। उसे मनुष्य ही नहीं समझता। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास ‘संयुक्ताक्षर’ की नायिका श्यामा कहती है जब उसके पिता उसकी शादी एक अधेड़ व्यक्ति से करवाते हैं - “बैल खरीदते समय इंसान उसकी पूँछ देखता है

दांत देखता है... रंग रूप देखता है, और अपनी लड़की का दुल्हा चुनते समय आँखें मूंद लेता है। न जाने क्यों इंसान इतनी लापरवाही करता है।”<sup>132</sup>

आजकल पुरुष अपने परिवार की नारी को छोड़कर सभी नारी को भोग वस्तु ही समझता है। वह जानता है समाज में पुरुष भेड़िये की तरह हैं। समाज की सभी नारियों को भोग विलास की वस्तु ही समझता है। डॉ. अनुराधा भार्गव का उपन्यास ‘सत्य की ओर’ में बाबूजी नमना से रविकांत से दूरी शादी करने को कहते हैं कि - “बेटी, जीवन में कुछ ऐसी सच्चाईयाँ हैं जिनसे अनजान बने रहना बेवकूफी है। उनमें से मौत भी एक है। बेटी, हमारे समाज में ऐसे भूखे भेड़िये हैं जो औरत को अकेली देखकर उसे निगल जाते हैं। मैं नहीं चाहता मेरे बाद तुझे कोई परेशानी हो।”<sup>133</sup>

पुरुष चाहे कितने भी गंदे हो मगर वे अपने परिवार को समाज के बुरे लोगों से बचाए रखते हैं। मध्यवर्ग के पुरुष चाहते हैं समाज की दूसरी लड़की कैसी भी हो मगर उसकी पत्नी घर-भार संभाले। इसलिए बहुत सारे माध्यवर्गीय पुरुष अपनी नारी को बाहर नहीं छोड़ते। इसके अतिरिक्त उन्हें किसी भी जिम्मेदारी उठाने की इजाजत नहीं देते। ममता कलिया का उपन्यास ‘दौड़’ का राजुल का पति अपनी पत्नी को सर्विस छोड़ने के लिए कहता है तब उसकी पत्नी की सहेली कहती है - “हिन्दुस्तानी मर्द को शादी के सारे सुख चाहिए, बन जिम्मेदारी नहीं चाहिए। मेरी अच्छी सर्विस छोड़नी पड़ी। उनकी कलीग्स कहती है राजुल शादी करके अपनी आजादी चौपट करेगा और कुछ नहीं। आजकल डिक्स का जमाना है। डबल इनकम नो किड्स, आमदनी, बच्चे नहीं।”<sup>134</sup>

भारतीय समाज के पुरुष माँ को जितना प्यार और प्रधानता देता उतनी आनेवाली नारी के प्रति विश्वास कम ही करता है। वह न्याय और अन्याय को जानते हुए भी पत्नी को कोसता रहता है। कभी-कभी उसी पर सन्देह करता है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास ‘शतरूपा’ की नायिका शतरूपा की सास दहेज की खातिर

बहुत से बदला लेती है। जब शतरूपा अपने लांछने को झूठ साबित करने सहेली के पति को लाने जाती है तब उसकी सहेली कहती है - *“मैं दो दिन के बाद उन्हें तुम्हारे घर भेज दूँगी। तुम चिंता न करो। आश्चर्य तो इस बात का है कि इन मर्दों के सिर में क्या गोबर भरा हुआ है। कितनी गंदी बात अपनी पत्नी के बारे में सोच लेते हैं।”*<sup>135</sup>

पुरुष नारी का अपनी इच्छाओं के अनुसार रहना और रखना चाहता है। मगर पुरुष का कर्तव्य है कि वह अपने परिवार के अतिरिक्त समाज में नारी को अपनी बहन या माँ समझे। मगर पुरुष वैसा नहीं सोचता। नारी को शोषित करता, उनकी कमजोरी का लाभ उठा लेता है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास ‘अन्तर्मन’ की आभा की शादी होती है। वह एक कम्पनी में काम करती है। वहाँ के बड़े साहब से पैसे की सहायता पूछती है। वह मानवीयता के तौर पर सहायता न करने से भी उसे शोषित नहीं करना चाहिए। वह कहती है - *“मेरी गरीबी का इतना भयानक मजाक न उड़ाइये। आज मेरा विवाह है, आज मेरी सुहागरात है...।”* ‘मुझे क्या लाभ है। वह बड़बड़ाये। लाभ-अलाभ की बात क्यों सोची। व्यापारी हूँ सबसे पहले यही सोचता हूँ। बस मुझे जाने दो।’<sup>136</sup>

अगर पुरुष अपने बारे में ही सोचते रहे, स्वार्थी रहेंगे तो समाज में एकता स्थापित नहीं रहेगी। मूल्य बिखर जायेगा। दोनों एक दूसरे के संबंध के विविध रूपों को निभाना चाहिए। स्त्री और पुरुष समाज के दो प्रमुख सदस्य हैं। प्रपंच सृष्टि और पुरुष सृष्टि के बाद स्त्री की रचना के उद्देश्य के बारे में परमेश्वर का कथन बाइबिल में लिखा है - *“आदम (मनुष्य) का अकेला रहना अच्छा नहीं, मैं उसके लिए एक ऐसा सहायक बनाऊँगा जो उससे मेल खाए।”*<sup>137</sup> स्त्री और पुरुष के सिवाय समाज की कल्पना असंभव है। समाज में जब स्त्री पुरुष के लिए माताजी, पत्नी और बुढ़ापे

में बेटी या बहू का कर्तव्य से विमुख रहे या पुरुष स्त्री के लिए पिता, पति या पुत्र की देखरेख में कमी रखता तो परिवार विघटित हो जाता है।

पुरुष से ज्यादा स्त्री के मूल्य परिवर्तन के कारण अनेक समस्या उत्पन्न कर ली है। भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी को पूजते हैं मगर अब पूरी तरह पुरुष के भोग विलास मात्र रह गयी है। अपने अतित्व बनाने के लिए नये मूल्यों का बुरा प्रभाव नारी पर ही पड़ता है। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन' में प्रभात नारी का शोषण करने वाले समाज को देखकर कहता है - *“एक नारी में जो-जो गुण होने चाहिए उन्हें तो प्रकृति ने जबरदस्ती छीन लिया और आज नारी के पास सिर्फ समाज को देने के लिए बनावटी सुन्दरता, नग्नता, नितर्लजता और फैशन रह गया है।”*<sup>138</sup> आज पुरुष एवं नारी आपसी संबंधों से अधिक अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को ही महत्व देते हैं। युवक समाज के हर परिवर्तन का कारण नारी को मानता है। मधु धवन के उपन्यास 'करवट लेता वक्त' में अविनाश दीपाली के दादा को संपत्ति के विषय में उनका अपमान करता है तब से अविनाश और दीपाली बातें नहीं करते। वे अपने अहं में अकड़कर रहते हैं। अविनाश दीपाली को देखकर कहता है कि - *“और नहीं तो क्या? इंटीलेक्चुअल बनी फिरती हो। पत्रिका की मालिका हो। दफ्तर में बैठती हो।”* “नारी के व्यवहार ने समाज को बदरंग बना दिया है। सबसे पहले उसे अपने कदम को गहराई को समझना है... वह क्यों प्रेम कर रही है... क्यों विवाह के सूत्र में बंधना चाहती है... क्यों तलाक चाहती है??”<sup>139</sup> आज नारी अपना जीवन साथी खुद चुन लेती है। ज्यादा स्वतंत्र होने के कारण शादी भी विलंब से करती है। रविन्द्र थापर का उपन्यास 'आराधना' की आशा अपना वर चुनने में शादी की उम्र से अधिक समय ले लेती है। विलंब विवाह होता है। आशा की सहेली सीमा कहती है - *“और नहीं तो क्या? इंटीलेक्चुअल बनी फिरती हो पत्रिका की मालिका हो दफ्तर में बैठती हो।*

“इतना ही कुछ क्या काफी है? रिव्यु लिखकर ही क्या जीवन के संध्याकाल तक पहुंचने का लक्ष्य है? तुम्हें शादी नहीं करनी है।” <sup>140</sup>

नहीं तो नारी अपना जीवन का भविष्य खुद चुन लेती है। वह अत्याधुनिक होने के कारण पति की सेवा करना पसन्द नहीं करती। वह सहना पसन्द नहीं करती। ‘एक जमीन अपनी’ उपन्यास का हरीश अंकिता को देखकर कहता है - “आपकी लड़ाई का अपना तरीका हो सकता है अंकिताजी, मगर जरूरी नहीं कि हर पत्नी आपकी तरह पति को छोड़कर उसे चुनौती दे सके... कि अब मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं।” <sup>141</sup>

बलभद्र तिवारी का उपन्यास ‘रुको द्रौपदी’ की योना सोचती है जब त्रिदेव को अपने प्रेम पाश में फंसाना चाहती थी मगर वह घिर नहीं पाया बल्कि वह खुद उसके जाल में घिर गई। “नारी कितनी ही तेज क्यों न हो, यदि सामनेवाला सतर्क और तटस्थ होकर उसके कार्यकलापों का पर्यवेक्षण कर रहा है तो अपने ही तर्क और जाल में फंस जाती है।” <sup>142</sup>

आज समाज में स्त्री-पुरुष अपना कर्तव्य भूल जाते हैं। अपने स्वातंत्र्य चाह के लिए व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को लूटकर आत्मकेन्द्रित बन गया। मानव-मानव के बीच मानवीयता नहीं रही। पुरुष-स्त्री को विलासित वस्तु ही समझता है। उसी के लिए नारी की मदद करना चाहता है। बृजनारायण सिंह का उपन्यास ‘समर्पिता’ की समर्पिता की माँ कहती है - “कितनों का निकाह दुबारा होता है। तलाकशुदा से क्या कोई शौक से शादी करता है? आँख लड़ने या आशनाई की बात अलग है। औरत तो सब जगह एक ही है। उसकी तरह सबकी नजर एक सी होती है। सबको एक ही चीज चाहिए - जिस्म और जिस्म के सैकड़ों नाम इन मर्दों ने रख छोड़े हैं। खूबसूरती, प्रेम, इश्क, मुहब्बत और न जाने क्या-क्या। यह सब तो मेरी समझ से औरत के जिस्म के नाम ही हैं।” <sup>143</sup>

आज हमारे समाज में येवा पीढ़ी वर्ग में दिशाहीनता, लक्ष्य भ्रष्टता, मानसिक विघटन, चारित्रिक विनिपात और कुण्ठित आचरण परिलक्षित होते हैं। आज पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण में डेटिंग, प्रेमी-प्रेमिका का मिलन आदि आम बातें हो गई हैं। मधु धवन का उपन्यास 'करवट लेता वक्त' की करिश्मा उसके कॉलेज के छात्रों के आपसी संबंधों को देखकर कहती है - *"बुराई प्रेम करने में नहीं, केवल उसके करने के प्रारूप में हैं। जब हम उसे शुद्ध रूप न देकर वासना बना देते हैं।"*<sup>144</sup>

परिवार में माता-पिता मिलजुलकर विचार विमर्श करना, पारिवारिक सदस्यों को जोड़ना एवं रिश्तों को एहमियत देना होता है। ऐसा न होने पर बच्चों के मूल्य विघटन हो जाते हैं। युवा पीढ़ी के स्त्री-पुरुष डेट्स के नाम पर रात-रात भर पराये पुरुषों के साथ रहना आदि नारी को अब अनुचित नहीं लगता, जब बात बिगड़ जाती है तब पछतावा होता है। मधु धवन का उपन्यास 'उस मोड़ पर' की देवयानी अच्छे मूल्यग्रस्त परिवार में पली है। वह युवक-युवतियों के हँसने, उनके चरित्र का ध्यान न देती आदि के बारे में सोचते हुए कहती है - *"मुझमें चरित्र बल है। कृन्थिंग इस रोंग विथ मी... चरित्र बल है मुझमें तभी तो मैं संयमित एवं नियमित हूँ।"*<sup>145</sup>

अर्थात् समाज में स्त्री-पुरुष को यथार्थपरक जीवन जीना आवश्यक है। मगर उसके लिए नैतिक आचरण को छोड़कर नहीं। स्त्री-पुरुष अपनी जिम्मेदारी, कर्तव्य, ईमानदारी का भाव रहना चाहिए। पुरुष पत्नी के अलावा दूसरी स्त्री को बहन सोचना चाहिए। युवा पीढ़ी के युवक-युवती संयम व नियमित रहें तो उनके पारिवारिक, सामाजिक मूल्य विघटन को रोक सकते हैं।

### 3.5 नारी-नारी के प्रति में मूल्य की स्थिति

समाज में आज नारी ही दूसरी के रोड़े बनकर खड़ी रह जाती है। पुरुष से भी पत्थर दिल बन चुकी है। अपना काम होने के लिए परिवार की अपनी बहन का भी

बुरा सोच लेती है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र के उपन्यास 'अन्तर्मन' की कस्तूरी सोचती हुई कहती है - "मुझे रह-रह कर लग रहा था कि इन बहनों के कारण ही मेरा जीवन जहर हो रहा है पहले कृष्णा ने मुझे सुख की सांस नहीं लेने दी और बाद में कावेरी मेरे सुख की शेष धरोहर को लूटना चाहती है। वे बहने मेरी एक नम्बर शत्रु हैं।" <sup>146</sup>

बहन-बहन के बीच झगड़ा पुरुष के कारण ही उत्पन्न होता है। जहाँ दीदी छोटी बहन के लिए माँ के बाद माँ की तरह देखभाल करती है वहाँ नारी अपने स्वार्थ की खातिर बहन के जीवन को ही बर्बाद करने में तैयार हो जाती है। 'समर्पिता' उपन्यास में समर्पिता अपनी मुँह बोली बहन के पति संजय से अनैतिक रिश्ता स्थापित कर लेती है। वह अपने जीजाजी से कहती है - "तुम अपना भी सत्यनाश करोगे और मेरा भी। अगर दीदी ने लिया तो तुम्हारी खैर नहीं और अगर अविनाश ने देख लिया तो मेरी शामत समझो। इसकी नजर बड़ी शक्की है।" <sup>148</sup>

एक परिवार में बहन-बहन विश्वास नहीं रखते। 'दो रंग' उपन्यास में मीनी की बहन लीला से कहती है - "यह हम सबको धोखा दे रही थी। यह हमें लालच दे-दे कर ठग रही थी... माँ। यह हृदय से चाहती ही नहीं कि मेरी शादी हो, क्योंकि यह खुद कुंवारी है।" <sup>148</sup>

आधुनिक समाज में स्त्री दूसरे व्यक्तियों की इच्छाओं की ही पूर्ति करती आ रही है। समाज में पुरुषों की भांति स्त्री अपना अलग अंगीकार बनाना अधिक कठिन कार्य है। भारतीय संस्कृति में नारी को समर्पणमयी पत्नी, वात्सल्यमयी माता और ममतामयी बहन के रूप में चित्रित होते हैं। यह स्वयं त्याग की मूर्ति है। नारी-नारी एवं पुरुष के लिए उदारता, त्याग, एकनिष्ठता, ममता और करुणा के कई रूप में दृष्टिगोचर होना अनिवार्य है। उसको स्वार्थ, बदला लेनी वाली नहीं होना चाहिए।

## सन्दर्भ सूची

1. उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रविन्द्रनाथ मुखर्जी, पृ: 2
2. अपनी सलीबे, नमिता सिंह, पृ: 157
3. अपनी सलीबे, नमिता सिंह, पृ: 158
4. अन्तर्मन, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 177
5. टूटा हुआ आदमी, डॉ० विष्णु पंकज, पृ: 80
6. सामाजिक विचारधारा, दिनेश खरे द्वारा उद्धृत, पृ: 80
7. उस मोड़ पर, मधु धवन, मुखपृष्ठ
8. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल, पृ: 58
9. दीक्षांत, सूर्यबाला, पृ: 31
10. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 19
11. खूटे, डॉ० कश्मीरी लाल, पृ: 103
12. टूटा हुआ आदमी, डॉ० विष्णु पंकज, पृ: 77
13. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 145
14. टूटा हुआ आदमी, डॉ० विष्णु पंकज, पृ: 22
15. यातना घर, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 20-21
16. सत्य की ओर, डॉ० अनुराधा भार्गव, पृ: 73
17. शतरूपा, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 167
18. मैं सृष्टि की आत्मा हूँ, मधु धवन, पृ: 14
19. मैं सृष्टि की आत्मा हूँ, मधु धवन, पृ: 23
20. जुर्माना, मधु धवन, पृ: 90
21. सवालियों के बीच, बनाफर चन्द्र, पृ: 95
22. दाम्पत्य जीवन, पृ: 23



23. करवट लेता वक्त, मधु धवन, पृ: 79
24. अभिज्ञान, नरेन्द्र कोहली, पृ: 35
25. आकांक्षा, मधु धवन, पृ: 27
26. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 112
27. महासमर-कर्म, नरेन्द्र कोहली, पृ: 275
28. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 128
29. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, पृ: 128
30. समर्पिता, बृजनारायण सिंह, पृ: 136
31. काली सुबह का सूरज, रामधारी सिंह दिनकर पृ: 57
32. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 165
33. काली सुबह का सूरज, रामधारी सिंह दिनकर, पृ: 10
34. अन्तर्मन, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 142
35. जिद्दी, इस्मत चुगताई
36. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 114
37. मेरे संधिपत्र, सूर्यबाला, पृ: 42
38. सवालों के बीच, बनाफर चन्द्र, पृ: 74
39. समर्पिता, बृजनारायण सिंह, पृ: 214
40. खूँटे, डॉ० कश्मीरी लाल, पृ: 17
41. अंतिम साक्ष्य, चन्द्रकांता, पृ: 18
42. सत्य की ओर, डॉ० अनुराधा भार्गव, पृ: 21
43. अग्निपंखी, सूर्यबाला, पृ: 69
44. समय सरगम, कृष्ण सोबती, पृ: 69
45. करवट लेता वक्त, मधु धवन, पृ: 8

46. जुर्माना, मधु धवन, पृ: 125
47. जर्जर सेतु, डॉ० देवराज पथिक, पृ: 63
48. सुबह के इन्तजार तक, सूर्यबाला, पृ: 140
49. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 39
50. काली सुबह का सूरज, रामधारी सिंह दिनकर, पृ: 165
51. सीपी भर सुख, कुसुमांजलि, पृ: 64
52. अपनी सलीबे, नमिता सिंह, पृ: 36
53. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 59
54. टूटा हुआ आदमी, डॉ० विष्णु पंकज, पृ: 23
55. काली सुबह का सूरज, रामधारी सिंह दिनकर, पृ: 29
56. घूंघट, सुदेश भाटिया, पृ: 13
57. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 77
58. शतरूपा, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 124
59. अग्निपंखी, सूर्यबाला, पृ: 64
60. घूंघट, सुदेश भाटिया, पृ: 17
61. आघात, सुदेश भाटिया, पृ: 99
62. समर्पिता, बृजनारायण सिंह, पृ: 80
63. वरुण के बेटे, नागर्जुना, पृ: 52
64. काली सुबह का सूरज, रामधारी सिंह दिनकर, पृ: 30
65. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 146
66. सवालों की बीच, बनाफर चन्द्र, पृ: 108
67. काली सुबह का सूरज, रामधारी सिंह दिनकर, पृ: 98
68. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 156

69. एक जमीन अपनी, चित्र मुद्गल, पृ: 53
70. काली सुबह का सूरज, रामधारी सिंह दिनकर, पृ: 91
71. करवट लेता वक्त, मधु धवन, पृ: 54
72. अर्थांतर, चंद्रकांता, पृ: 150
73. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 62
74. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 167
75. सत्य की ओर, डॉ० अनुराधा भार्गव, पृ: 31
76. सत्य की ओर, डॉ० अनुराधा भार्गव, पृ: 31
77. शतरूपा, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 184
78. जर्जर सेतु, डॉ० देवराज पथिक, पृ: 130
79. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 57
80. घूंघट, सुदेश भाटिया, पृ: 50
81. अर्थांतर, चंद्रकांता, पृ: 129
82. सत्य की ओर, डॉ० अनुराधा भार्गव, पृ: 67
83. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, पृ: 16
84. जुर्माना, मधु धवन, पृ: 17
85. घूंघट, सुदेश भाटिया, पृ: 53
86. तलाक दर तलाक, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 51
87. उस मोड़ पर, मधु धवन, पृ: 40
88. अर्थांतर, चंद्रकांता, पृ: 122
89. जिद्दी, इस्मत चुगताई, पृ: 82
90. काली सुबह का सूरज, रामधारी सिंह दिनकर, पृ: 24
91. आघात, सुदेश भाटिया, पृ: 71

92. अर्थांतर, चंद्रकांता, पृ: 174
93. रुको द्रौपदी, बलभद्र तिवारी, पृ: 107
94. घूंघट, सुदेश भाटिया, पृ: 58
95. रुको द्रौपदी, बलभद्र तिवारी, पृ: 14
96. सीपी भर सुख, कुसुमांजलि, पृ: 52
97. काली सुबह का सूरज, रामधारी सिंह दिनकर, पृ: 47
98. संयुक्ताक्षर, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 87
99. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल, पृ: 7
100. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, पृ: 15
101. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 18
102. तलाक दर तलाक, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 17
103. Encyclopedia Britanica – Vol. VII, P# 564
104. घूंघट, सुदेश भाटिया, पृ: 9
105. संयुक्ताक्षर, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 72
106. आकांक्षा, चंद्रकांता, पृ: 36
107. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 77
108. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 38
109. सीपी भर सुख, कुसुमांजलि, पृ: 38
110. करवट लेता वक्त, मधु धवन, पृ: 82
111. सवाल्लों के बीच, बनाफर चन्द्र, पृ: 27
112. सीपी भर सुख, कुसुमांजलि, पृ: 186
113. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 37
114. काली सुबह का सूरज, रामधारी सिंह दिनकर, पृ: 33

115. जुर्माना, मधु धवन, पृ: 12
116. सवालौ के बीच, बनाफर चन्द्र, पृ: 96-105
117. घूँघट, सुदेश भाटिया, पृ: 12
118. जर्जर सेतु, डॉ० देवराज पथिक, पृ: 48
119. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 34
120. दो रंग, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 27
121. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 137
122. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 43
123. जर्जर सेतु, डॉ० देवराज पथिक, पृ: 129
124. अधिकार, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 58
125. जुर्माना, मधु धवन, पृ: 114
126. करवट लेता वक्त, मधु धवन, पृ: 27
127. दौड़, ममता कालिया, पृ: 77
128. घूँघट, सुदेश भाटिया, पृ: 47
129. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 126
130. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 16
131. सीपी भर सुख, कुसुमांजलि, पृ: 31
132. संयुक्ताक्षर, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 75
133. सत्य की ओर, डॉ० अनुराधा भार्गव, पृ: 55
134. दौड़ ममता कालिया, पृ: 26
135. शतरूपा, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 120
136. अन्तर्मन, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 133
137. बाइबिल – The Book Genesis 2:18

138. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 33
139. करवट लेता वक्त, मधु धवन, पृ: 82
140. आराधना, रविन्द्र थापर, पृ: 11
141. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, पृ: 46
142. रुको द्रौपदी, बलभद्र तिवारी, पृ: 121
143. समर्पिता, बृजनारायण सिंह, पृ: 77
144. करवट लेता वक्त, मधु धवन, पृ: 70
145. उस मोड़ पर, मधु धवन, पृ: 70
146. अर्न्तमन, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 171
147. समर्पिता, बृजनारायण सिंह, पृ: 150
148. दो रंग, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 81

# **चतुर्थ अध्याय**

**बीसवीं सदी के अंतिम दशक के  
उपन्यासों में राजनीतिक मूल्य**

## चतुर्थ अध्याय

### बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में राजनीतिक मूल्य

राजनीति शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अरस्तू ने अपनी 'नगर राज्य' सम्बन्धी पुस्तक के शीर्षक में किया था। राजनीति शब्द की व्युत्पत्ति यूनानी शब्द 'पोलिस' और 'पोलिटिक्स' से हुई। वैसे यूनानियों के लिए 'राजनीति' शब्द के साथ राज्य का अध्ययन तथा वह सब कुछ जुड़ा हुआ था जिसका सीधा सम्बन्ध तत्कालीन नागरिक जीवन के साथ होता था।

#### 4.1 राजनैतिक क्षेत्र में मूल्य

राजनैतिक क्षेत्र में राजनीति का उद्देश्य तो मानव का हित-चिन्तन है। मगर स्वार्थपरकता तथा सत्ता के पदलोलुप्ता के कारण व्यवहारिक दृष्टि से मूल्यों का हनन सबसे अधिक राजनीति के तंत्र के माध्यम से हो रहा है क्योंकि सत्ता में ही जब विकार आ जाते हैं तो देश स्वतः विकृत हो जाता है।

नमिता सिंह का उपन्यास 'अपनी सलीबे' की नायिका नीलिमा के साथ काम करने वाली प्राध्यापिका कुसुम से कहती है जब वे सारे कार्यक्रम प्रदर्शन के लिए गाँव में जाते हैं, वहाँ मीना नामक एक लड़की को चार आदमी बलात्कार करके जीवन नष्ट कर देते हैं। पुलिस आदि इस मामले को रफ़ा-दफ़ा करना चाहते थे। नीलिमा, रत्ना, मिसेज अग्रवाल आदि इस मामले को खत्म करना नहीं चाहते थे। इस कारण वे इस मामले को पॉलिटिकल पार्टियों के पास शामिल करना चाहते थे। इस संदर्भ में नीलिमा, रत्ना, मिसेज अग्रवाल से अपने विचार प्रकट करती है - *“हमें अपनी मेम्बरशिप*



बढ़ानी चाहिए। पॉलिटिकल पार्टियों के लोग हैं। उनके सक्रिय कार्यकर्ता हैं। उन्हें अपनी समिति में शामिल करें। उनके पास वक्त है।”<sup>1</sup>

आज राज सत्ताधारी जनता को अपने पद की शक्ति के बल पर दबाता जा रहा है। जनता को मूर्ख बनाता जा रहा है। चित्रा मुद्गल का उपन्यास ‘एक जमीन अपनी’ का हरीन्द्र नामक जर्नलिस्ट अंकू से समाज में चलने वाली भ्रष्ट नीति शासन को देखकर कहता है - “अंकू, सच्चाई यही है कि आज की कोई भी सामाजिक समस्या सामाजिक न रहकर राजनीतिक हो गई है... तुम्हें नहीं लगता, वोट की राजनीति पूरे षडयंत्र के साथ खड़ियों, संकीर्णताओं, परंपराओं और धर्म को समुदायगत विशेषता और धर्म-निरपेक्षता की आड़ में अक्सर और आवश्यकतानुसार उसकी रक्षक बनाने का ढोंग रचकर अपना उल्लू सीध कर रही है। और ये भ्रम जहरीली सड़ांध से जनसाधारण को मुक्त करने उसे आगे बढ़ाने की बजाय वहीं के वहीं बनाए हुए हैं...।”<sup>2</sup>

नेता स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अपनायी राजनीति, सुचारु प्रशासन, परिवर्तन या जनकल्याण के स्थान पर सुविधाएँ पाने, सम्मान प्राप्त करने और धन बटोरने का यंत्र मात्र बन कर रह गई है। गोविन्द मिश्र का उपन्यास ‘फूल, इमारतें और बन्दर’ में मोहन्ती अपने अध्यक्ष पद में हो रहे अन्याय से दूर हटाना चाहते थे, तब उसका दोस्त मोहित जो बड़ा व्यापारी था वह नहीं चाहता था कि मोहन्ती अध्यक्ष पद से हटे क्योंकि मोहित ने इसकी पदवी का फायदा उठाना चाहा। मोहन्ती मोहित का चापलूसी भरा इरादा समझ गयी। वह कहते हैं कि - “ये पद देश और समाज का काम करने के लिए होते हैं या इसे और उसे ऑब्लाइज करने के लिए? आप पता नहीं किस धातु के बने हो।”<sup>3</sup>

राजनीतिज्ञ, नेता और शासकों के विलासमय जीवन बिताने वाले हो जाने पर आम जनता का जीवन दुःखमय हो जाना स्वाभाविक है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद

सामान्य जनता तब से जब तक उनके अराजकता से पिसती जा रही है। जो कोई उनके विरोध का सामना करना चाहा उनका नतीजा बुरा ही निकला। हृदयदेश का उपन्यास 'दंडनायक' का मनोहरलाल पंडित महेन्द्रनाथ के विरोध चुनाव में लड़ने एवं जीतने के लिए जनता के सामने भाषण देता है - *“स्वतंत्रता का अर्थ राजनीतिक आजादी ही नहीं, आर्थिक और मानसिक आजादी भी है।”* <sup>4</sup>

अब चारों तरफ चारित्रिक गिरावट की चरम स्थितियाँ, भ्रष्ट व्यवस्था तंत्र, राष्ट्र को हर समय कमजोर बनाने वाले असामाजिक तत्व और मुखौटे पहन कर देश का प्रतिनिधित्व करने वाले सफेदपोश नेता, जनता की भावनाओं से खिलवाड़ करते हुए उनकी मर्यादाओं और मूल्यों का खून चूसते जा रहे हैं। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'महासमर (धर्म)' में राजनीति के सही अर्थ को युधिष्ठिर के जरिये उजागर करते हैं। परक दृष्टिकोणों को देख उनका मन विचलित हो जाता है। और राजनीति के मूल अर्थ को ग्राह्य कर उसी परिपाटी पर चलने का प्रयास करते हैं। - *“राजनीति हिंसा का नहीं, न्याय और धर्म का पर्याय होना चाहिए।”* <sup>5</sup>

मगर समाज में लोग इसके विपरीत ही सोचते हैं। राजनीतिक क्षेत्र में आम जनता अच्छे शासक की प्रतीक्षा में सदियों से जी रही है। स्वतंत्रता के पश्चात् कई वर्षों से यह स्पष्ट होता है कि खल नेताओं के साथ खल जनता की मैत्री निर्बाध चल रही है। मूल्यों का पतन जनता और नेता दोनों में है। डॉ. हेतु भरद्वाज का कथन सच निकलता है कि - *“आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से टूटे समाज को फिर भी सरलता से उभारा जा सकता है, किन्तु जो समाज सांस्कृतिक दृष्टि से मूल्यहीन हो जाता है, उसका उपचार बहुत सरलता से नहीं होता क्योंकि मूल्यों के अभाव में समाज सहज रूप से ही अमानवीय लक्ष्यों की ओर गतिवान होने लगता है।”* <sup>6</sup>

## 4.2 सरकारी विभागों की नीति में मूल्य

सरकारी कर्मचारी अपने कार्यों के प्रति अत्यंत उदासीन नजर आने लगे हैं। जो भी कार्य उन्हें सौंपा जाता है उन्हें वे उत्तरदायित्व विहीन होकर कार्य कर रहे हैं। सरकारी कर्मचारी अपने मर्जी के मुताबिक काम कर रहे हैं। वे बड़े ही धीमी गति से काम करते हैं। हृदयदेश का उपन्यास 'दंडनायक' में रोशन सिंह जिलाधीश महोदय से मिलना चाहते थे क्योंकि उसने बैंक से बीस हजार का कर्जा लिया है, उसने सारा कर्जा अदा कर दिया। सिर्फ तीन किस्तें देनी थी वो भी किस्तों के कागज तहसील चले जाने पर बाकी अठारह सौ पचास रुपये तहसील में श्री माताप्रसाद अमीन के पास जमा किया उसकी रसीद भी ले ली। मगर उस रसीद में जमा करने का दस्तखत सबूत नहीं हैं, रसीद फर्जी है। वह बार-बार जिलाधीश से मिलने जाता है। मगर वहाँ पर भी मिलने के लिए नहीं भेजते। उसका काम नहीं हो पाता। जिलाधीश भी चिकित्सा अवकाश ले के छुट्टी पर चले जाते हैं। जिस दिन आने वाले थे उस दिन वे नहीं आते। जब वे कागजों को देखना शुरू कर दें तो दरखास्त भी पेश होंगे। वहाँ का चपरासी सियाराम कहता है यह दो हाथियों के बीच की टक्कर है। पिछली डी.एम. साहब वहाँ पर फिर वापस लौटना चाहते हैं, वह बंगला खाली नहीं कर रहे हैं। नए डी.एम. साहब ने अपनी नाराजगी जताने के लिए छुट्टी ले ली है कि बंगला रहने को मिले, तभी वह काम करेंगे। लखनऊ में बैठी सरकार यह तमाशा देखते हुए कुछ नहीं कर रही है, तब यह सन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत होता है - *“अब हिजड़ों की सरकार है। उसका मातहत कोई भी जा-बेजा हरकत कर मूँछों पर ताव देता हुआ धूम सकता है कि उसका कोई बाल नहीं उखाड़ सकता है।”*<sup>7</sup>

जब सरकारी कर्मचारी/अफसर अपने कर्तव्य को सही ढंग से उपयोग करे यानी कुर्सी की चाह त्याग कर जनता के कष्टों का निवारण में ध्यान में रखकर कार्यरत रहना चाहिए। यदि इस अन्याय को रोकेंगे नहीं तो यह पूरा समाज भ्रष्ट हो

जायेगा। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'महासमर-अंतराल' में कृष्ण सुभद्रा से आजकल के लोगों की मनोदशा को सुधारने के लिए कहते हैं।

“अब अनेक ऐसे लोग हैं जो धर्म और न्याय के लिए नहीं लड़ते, स्वार्थ और लोभ के लिए लड़ते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि आज तो अन्याय बहुत दूर दिखायी देता है, रोका न जाए, तो कल वह हमारे द्वार पर आ जाएगा।”<sup>8</sup>

उन्हें सभी लोग से न्याय का आचरण प्रशस्त करना चाहिए। अगर इसके विपरीत अन्याय मार्ग को अपनाएंगे तो देश में दिन-प्रतिदिन अक्षमता, अव्यवस्था, घूसखोरी, बेईमानी का बोलबाला ही रहेगा। हृदयदेश का उपन्यास 'दंडनायक' में रोशन सिंह दूसरे आदमी से अपने कष्ट को बताते हैं - “दरखास्त अभी जिलाधीश के सामने पेश नहीं हो पाई है। जाता हूँ और मुझे बंगले से यह कहकर भगा दिया जाता है कि अभी साहब कोई कागज नहीं देख रहे हैं। बताइए, मैं क्या करूँ? दफ्तर की कुर्सी की तासीर ही ससुरी कुछ ऐसी होती है वह रह फकीरे को श्री एफ लाल बना देती है।”<sup>9</sup>

रासबिहारी बेहेरा का उपन्यास 'विजयी' में राजनीति के बीज बोये गये हैं। रिश्वत जैसी कुप्रथा ने देश को जकड़ा हुआ है। देश में अराजकता व्याप्त है और अराजकता के कारण समाज अव्यवस्थित तथा दूषित है। रमेश देश से रिश्वत का उन्मूलन चाहता है। वह नेक रास्ते को अपनाता है। वह रिश्वत लेना पाप समझता है। वह अपने विचारों को व्यक्त करता है - “दुर्नीति करने वाले सरकारी कर्मचारियों को सजा मिलनी चाहिए। घूस लेने और घूस देने वाले दोनों को पूरी सजा मिले। समाज में उनकी निन्दा हो।”<sup>10</sup>

सभी कर्मचारी अपने पद को संभालने, पद की प्राप्ति, नौकरी पक्की करने के लिए या स्थानांतरण से बचने आदि के लिए कनिष्ठ अधिकारियों वरिष्ठ अधिकारी को खुश करने के लिए अनेक षडयंत्र कार्य करने में बाधित हो जाते हैं। उनसे चापलूसी

करना, चुगली, रिश्वत लेना आदि सरकारी कार्यालयों में अनेक कार्य बाधित होते हैं। हृदेश का उपन्यास 'दंडनायक' में रोशन सिंह जिलाधीश के बंगले में अपने काम सम्बन्ध पूछने के लिए जाता है तो वहाँ का सिपाही रोशन सिंह का आने का उद्देश्य जानकर कहता है - *“बंगले के अंदर से निकलकर आए हुए एक शख्स ने पूछा था कि वह वहाँ क्यों खड़ा है? उसके आने का उद्देश्य जानकर बिफरा, “बड़ी माताजी का हीरामन उड़ गया है। सब उस आफत में फंसे हैं और तुम्हें साहब से हमें वक्त मुलाकात की सूझी है।”* <sup>11</sup>

आजकल सरकार विभागों के नीति में अपने कार्य करने से ज्यादा अन्य कर्मचारियों के कार्यों में दखलन्दाजी करते हैं। उन्हें परेशान या शोषण करते हैं। जब वरिष्ठ अधिकारी को उनके नीचे काम करने वालों को चैन से काम करने नहीं देते। उनके कामों में बाधित करते रहते हैं।

गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'फूल इमारतें और बन्दर' में लेखक सरकारी विभागों के कार्यालयों को देखकर यह संदर्भ सहित वाक्य प्रस्तुत करते हैं। - *“चलते-चलते आज ऐसा हो गया है कि सरकार के ज्यादा लोगों की दिलचस्पी नीति-निर्धारण के काम कम अपने नीचे के विभागों के प्रशासन में, वहाँ दखलअंदाजी में ज्यादा बढ़ती चली जा रही है... क्योंकि उसमें 'पावर' है।”* <sup>12</sup>

सरकारी कर्मचारी ही यदि उद्दंड करने लगेंगे तो आम जनता की बात ही क्या हो? अपने अधिकारों का हनन कर राज्य के विधान को भंग नहीं करना चाहिए। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'अभिज्ञान' में देख करते हैं कि अंगद अपने अधिकारों के मद में मधुवन में तोड़-फोड़ करने लगता है जिसे रोकने के लिए दधिमुख आगे बढ़ता है। अपने राज्य की शक्ति को बनाये रखने के लिए दधिमुख अंगद से टकरा जाता है और कहता है - *“जिन लोगों पर राज्य की व्यवस्था निर्भर करती है, वे ही*

लोग राज्य के विधान को भंग करने पर तुले हुए हैं।... अपराधी चाहे राज्य का कितना भी बड़ा अधिकारी क्यों न हो उसे दंडित किया जाना चाहिए।”<sup>13</sup>

सरकारी विभागों में दधिमुख जैसे कर्मठ व्यक्ति विद्यमान हो तो देश की व्यवस्था स्वतः ही अपने उन्नत स्तर पहुँच जायेगी।

गोविन्द मिश्र का उपन्यास ‘फूल इमारत और बन्दर’ में पृथ्वीसिंह एक बड़ा उद्योगपति जो राजनीति से सम्बन्ध रखने वाला है वह सोचते हुए यह सन्दर्भ प्रस्तुत करता है - “जो पार्टियाँ गठबंधन सरकार में शामिल हुई थी, वे सहयोगी पार्टियों के रूप में कम ‘प्रेसर ग्रुप’ के रूप में ज्यादा काम करती है ... सभी छोटी-छोटी पार्टियों के मुखिया और उनके दूसरे नेता प्रधानमंत्री को आए दिन परोक्ष-अपरोक्ष रूप से धमकी देते रहते कि वे सरकार के बाहर चले जायेंगे यानि कि उनकी पार्टी सरकार से सपोर्ट वापस ले लेगी, सरकार गिर जाएगी और उसके साथ ही प्रधानमंत्री का ताज गया।”<sup>14</sup>

आज समाज में सभी का ध्येय पद प्राप्त करना ही है। नरेन्द्र कोहली अपने उपन्यास ‘महासमर (धर्म)’ में भीम राजा हरदत्त को उनके कर्तव्यों से अवगत कराते हुए कहता है - “राजा का धर्म अपनी प्रजा का संतान के समान पालन करना है।”<sup>15</sup>

आज व्यक्ति की महत्ता उसके ज्ञान व कौशल से नहीं अपितु उसके निर्धारित पदों के द्वारा प्राप्त होता है। गोविन्द मिश्र का उपन्यास ‘फूल इमारत और बन्दर’ में लेखक कहते हैं - “राज्य मर्ते विक्षय संकट हो राज्य के अधिकारियों/कर्मचारियों के लिए टेलिफोनों, सरकारी वाहनों के इस्तेमाल पर रोक लगा दी गई हो... मुख्यमंत्री हेलीकॉप्टर पर ही चलेगा... यह सरकार है।”<sup>16</sup>

सरकारी विभाग, मंत्रालय, मंत्री कर्मचारी अपना पद संभालने के लिए जनता के गतिविधि कार्यों में बाधा करते हैं। जब हर सरकारी कर्मचारी अपना कर्तव्य प्रेमपूर्वक बड़ी निष्ठा से करने लगे तो सरकारी एवं सरकारी विभागों के नीतियों से देश में

कुमार्ग पर भटकावे से रोक सकते हैं। हृदयेश का उपन्यास 'दंडनायक' में रोशन सिंह सोचता है जब एक लखनऊ के अभियुक्त अपने दिये हुए गलत आरोपों को झूठ साबित करने के लिए वह कहता है - "देश में जो कुछ हो रहा है, उनकी पूरी जिम्मेदारी सरकार पर है। भारतवासियों की दुःख-दुर्दशा का असली कारण अंग्रेजी हुकूमत है। इस अत्याचारी विदेशी सरकारी का तख्ता पलटने के लिए कोई भी प्रयत्न करना हमारा नैतिक कर्तव्य था।" <sup>17</sup>

अर्थात् सरकारी विभागों एवं मंत्रालय के कर्मचारी से लेकर उच्च अधिकारियों सरकारी अव्यवस्था और अकर्मण्यता के कारण सरकार अपनी कार्यप्रणाली को सुचारु रूप से नहीं कर पा रही है।

### 4.3 चिकित्सा की नीति में मूल्य

हस्पतालों में डॉक्टरों का कर्तव्य मरीजों की जान किसी भी हालत में बचाना होता है। यही मानवता का श्रेष्ठ गुण भी है। आज के डॉक्टर पैसों के लालच में ही सभी कार्य करते हैं। इन भ्रष्ट नीति मामलों में धनाढ्य व्यक्ति बच जाते हैं। और सामान्य गरीब जनता पूरी तरह फंस जाती है। हस्पतालों में डॉक्टर अपनी कर्तव्यनिष्ठ भावना को छोड़कर अपनी व्यवस्था को व्यापार बना रहा है। सूर्यबाला का उपन्यास 'दीक्षांत' में नायक विद्याभूषण शर्मा के लड़के की तबीयत ठीक नहीं होती तब शर्मा के साथ काम करने वाले यादव जी से शर्मा कहते हैं जब वे उनके लड़के की हालत पूछते हैं तब यह संदर्भ सहित व्याख्या व्यक्ति होती है -

"अरे यार, डॉक्टर भी आजकल क्या सही मायने में डॉक्टर रह गये हैं। कसाई हैं, कसाई सब।" <sup>18</sup>

आज समाज में पैसों के लालच में मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देता हैवान बना देता है। वे अमीर बनने के लिए अपने आप को बिक्री बना देते हैं। अपनी

व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने में रुकावट पैदा कर लेते हैं। रामदेव शुक्ल का उपन्यास 'गिद्धलोक' में उदय किशन को समाज के मध्यवर्गीय कर्मचारी पैसे के लचीलेपन में सारे बुरे कार्य करते हैं। यही उदय किशन को समझाते हुए कहते हैं -  
*“एक आदमी उच्च वर्ग में शामिल हो पाने के लिए बिक्री के लिए सबसे पहले तैयार होता है। इस कारण अमीर बनने की जरूरत डॉक्टर, वकील, अस्पताल के ठेकेदार आदि कई लोग को मनुष्य नहीं रहने देती।”*<sup>19</sup>

आज सरकार हस्पतालों के डॉक्टर अमीरों का गुण गान करते हैं, उनकी सेवा, इलाज ही होता है? न की गरीब मरीजों की। सरकार सामान्य जनता के इलाज के लिए मुफ्त में खोले गए हैं। मगर भ्रष्ट नीति ने डॉक्टरों के कर्तव्य मनोभावना को ही बदल दिया गया है। नमिता सिंह का उपन्यास 'अपनी सलीबे' की नायिका नीलिमा की तबीयत ठीक नहीं होती। उसी के साथ काम करने वाले दूसरे लेकचरर कुसुम से कहती है - *“सरकारी अस्पतालों में अगर आपकी जान-पहचान है, कोई परिचित डॉक्टर है तब तो ठीक वरना ईश्वर ही मालिक है। यदि आप अति विशिष्ट नहीं हैं तो फिर पड़े रहिए बिस्तर पर तीन-तीन दिन। पूछने वाला न होगा।”*<sup>20</sup>

अर्थात् हस्पताल में डॉक्टर के अलावा नर्स आदि काम करने वाले पैसों के लालच में ही कार्य करते हैं। जब वे अपनी जिम्मेदारियों को पहचान कर कर्तव्यनिष्ठता से कार्य करें तो इस भ्रष्ट नीति आचरण को रोक कर सकते हैं। मानवीयता के श्रेष्ठ गुण को फैला सकते हैं।

#### 4.4 शैक्षणिक विभागों की नीति में मूल्य

शिक्षा तो बहुत ही मौलिक तत्व है। वही मनुष्य को मनुष्य का स्वरूप बनाती है। शिक्षा सीखने की उस प्रक्रिया का बोध करती जहाँ बच्चों के जीवनोपयोगी ज्ञान,



अभ्यासजनित योग्यता और मनोवृत्तियों आदतों को उत्साहित एवं समृद्ध किया जाता है। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की परिभाषा -

*“शिक्षा से मेरा अर्थ है बालक और मनुष्य की समझ, शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का सर्वांगीण विकास।”* <sup>21</sup>

शिक्षा के महत्व में मनुष्य के सम्पूर्ण जीवनकाल में शिक्षा निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा मनुष्य का व्यक्तिगत विकास करती है। उसे समाज के लिए तैयार करती है। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास ‘अभिज्ञान’ में सुदामा ग्राम प्रमुख शिक्षा का महत्व समझा रहे हैं - *“जहाँ कहीं भी लोग रहते हैं, वहीं उनके मानसिक विकास के लिए शिक्षा संस्थाओं की आवश्यकता होती है।”* <sup>22</sup>

शिक्षा समाज के आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक कार्यों में भाग लेने के योग्य बनाती है। शिक्षा की सामाजिक उन्नति का सबसे उत्तम साधन माना जाता है। समाज में व्याप्त कुरीतियों और रुढ़ियों को नष्ट कर नये, समाज का विकास करना शिक्षा का कार्य है। शिक्षा समाज को आंतरिक और बाह्य शक्ति प्रदान करती है। जिससे नये समाज के विकास की प्रक्रिया को गति प्राप्त होती है। रामदेव शुक्ल का उपन्यास ‘गिद्धलोक’ में उदय किशन से कहता है - *“शिक्षा का अर्थ ही यह है कि वह व्यक्ति को संपूर्ण मानव-समाज बल्कि संपूर्ण सृष्टि के प्रसार में, अपने सही कर्म की पहचान करा दे।”* <sup>23</sup> उदय यह भी समझता है कि शिक्षा के ज्ञान के माध्यम से अपनी जिम्मेदारी को पहचानकर मानव समाज के विकास की सही दिशा की ओर उन्मुख हो सकता है।

आज शैक्षणिक संस्थाओं में राजनीतिक की घुसपैठ मूल्य शोषण का कारण बना है। आज ‘राजनैतिक क्षेत्र में चुनाव लड़ने के लिए शिक्षा का कोई महत्व नहीं है। रामदेव शुक्ल का उपन्यास ‘गिद्धलोक’ का उदय किशन को देखकर कहता है - *“राजनीति का पेशा करने वाले साक्षर तो हैं लेकिन सबसे ज्यादा अशिक्षित ये ही लोग*

हैं। जीवन के किसी क्षेत्र में कुछ भी कर पाने की योग्यता जिनके पास नहीं है, वे लोग अपनी खून महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए राजनीति को सबसे अच्छी जगह समझते हैं।”<sup>24</sup>

राजनीति के क्षेत्र में मूल्य पतन का एक और कारण आम जनता की निरक्षरता है। इस प्रकार छात्र-जीवन के सारे दायित्वों को भूलकर विद्यार्थी राजनीतिज्ञों के हाथ कठपुतली बनकर वे भी गुंडगर्दी करने लगते हैं। चन्द्रकांता का उपन्यास ‘अर्थांतर’ में प्राध्यापक प्रशांत कहते हैं - “मैं कहता हूँ, युवावर्ग एक साल की कुर्बानी देने के बहाने गुंडगर्दी करेंगे, तोड़-फोड़ और आगजनी की वारदातें बढ़ेंगी। स्कूल-कॉलेज बंद करने से अशिक्षा बढ़ेगी। सरकार को हटाकर विधानसभा भंग करके देश में कौन-सा रामराज्य स्थापित होगा?”<sup>25</sup>

शिक्षा मानव को अच्छे संस्कार, चरित्र निर्माण में सहायक होता है। रासबिहारी बेहेरा के ‘विजयी’ उपन्यास में शिबू और रमेश के माध्यम से पढ़ाई के प्रति अपना कथन कहता है - “स्कूल और कॉलेज एक पवित्र संस्था होती है। पढ़ाई का मतलब है चरित्र निर्माण।”<sup>26</sup>

स्वतंत्रता के पूर्व युवक वर्ग देश के आजादी के लिए बौद्धिक वर्ग के एक हिस्से ने राजनीति में महत्वपूर्ण योगदान किया। लेकिन आजादी के बाद बुद्धिजीवी युवक वर्ग धीरे-धीरे राजनीति में बुरे कार्यों में गुंडागर्दी करने लगे। रामदेव शुक्ल का उपन्यास ‘गिद्धलोक’ में सोमेश्वर किशन से कहता है - “वे ठेके के काम देखे, राजनीति करने के लिए उनके निर्देशों का पालन करके विश्वविद्यालय में तोड़-फोड़ करें या उस पार से माल लाने ले जाने का काम संभाल-यह लड़कों को बारीकी से जाँच-परखकर के ही तय किया जाता है।”<sup>27</sup>

शिक्षा के पवित्र संस्था का दुरुपयोग राजनीति के द्वारा हो रहा है। यह राजनीति अपने स्वार्थ के लिए युवा वर्ग एवं कॉलेज संस्था को अपने अधीन बना लेते

हैं। सूर्यबाला का उपन्यास 'दीक्षांत' का शर्माजी के काम करने वाले दूसरे प्राध्यापक डिसूजा फीकी ने कहा जब शर्मा कॉलेज के बड़े घराने के बदमाश छात्र को परीक्षा में गलत रास्ते से पास करवाने की धमकी से इन्कार करता है तब डिसूजा कहते हैं -

*“बहुआ परिवार से विद्यालय को हजारों के डोनेशन और जाने कितनी ऊपरी सहायता मिलती है। फांस तो संस्थाओं के लिए हमारे-तुम्हारे जैसे निकम्मे जीव होते हैं जिससे उनका कोई स्वार्थ नहीं सघाता, आजकल हर संस्था सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, पोल्ट्री-फार्म के नाम पर सोने के अंडे देने वाली मुर्गियों का एक खासा कलेक्शन करना चाहती है।”*<sup>28</sup>

आज हर जगह न्याय के विरुद्ध कार्य हो रहे हैं। हर क्षेत्र या राज्य के कॉलेज या विद्यालय उस राज्य के नियमों-कानून के अनुसार प्राधिकृत होते हैं। सूर्यबाला का उपन्यास 'दीक्षांत' में शर्माजी जब नितांत छात्र के परीक्षा पत्र में पास कराने से इन्कार करता है और रिजिगनेशन लिखाने के लिए भी तैयार नहीं होता तब प्रिंसिपल राजदन पूर्व चैयरमेन चन्द्रभन सिंह शर्मा जी के पक्ष में न रहकर उस छात्र का सपोर्ट करते हैं क्योंकि उसके परिवार विद्यालय को हजारों से डोनेशन और जाने कितनी ऊपरी सहायता मिली है। इस कारण चन्द्रभान सिंह शर्मा के विपक्ष में कहता है -

*“अपने स्वार्थों महती इच्छाओं की पूर्ति के लिए वे इस हद तक जाने के लिए तैयार है, निष्कर्ष यह निकलता है कि कुछ दिनों पहले स्वयं चन्द्रभान सिंह ने कहा था वे ईमानदारी की रोटी खाने वाले प्रतिष्ठित, सम्मानित अध्यापक नहीं, बल्कि अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए गुंडेबाजी की हद तक उतर जाने वाले।”*<sup>29</sup>

शिक्षा संस्थाएँ गुण्डागर्दी के अड्डे बनते जा रहे हैं। शिक्षकों को भय रहता है कि कहीं नौकरी न चली जाये क्योंकि नौकरी मिलना इतना आसान नहीं है। इसलिए जो सबसे मजबूत खम्बा है वहीं अपनी कुचरित्रता के कारण समाज का संहारक बन गया है। इसे सबसे ज्यादा राजनीति ने दूषित किया है कि उन्हें ही सब सरकारी काम,

चुनाव, बाढ़, जनगणना आदि में झोंक दिया जाता है जिससे अस्थिरता आती है और मजबूरन उन्हें राजनीति से सरोकार रखना पड़ता है।

सूर्यबाला का उपन्यास 'दीक्षांत' में शर्मा जी सोचते हैं - “अस्थायी नियुक्ति वाले अध्यापकों को उनके मान-अपमान से ज्यादा अपनी रोजी-रोटी की पड़ी थी। सामना बाद ही किसी तरह हाँ-हूँ करके जल्दी से बगले झांकते निकल जाते। चार-छः साल बाद ही सही परमानेंट होने की उम्मीद की होड़ा-होड़ी तो सभी के अंदर थी। अब इस पचड़ें में पड़कर अपना नाम गुटबंदी और पालिटिक्स के साथ जुड़वाने का खतरा कौन मोल ले?”<sup>30</sup>

आज के 'आधुनिक संदर्भ' में व्यक्ति की महत्ता उसके ज्ञान कौशल से नहीं अपितु उसके निर्धारित पदों के द्वारा प्राप्त होता है। जो व्यक्ति जितने उच्च पद पर आसन्न होता है वही सबसे बड़ा ज्ञानी व श्रेष्ठ कहलाया जाता है। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'अभिज्ञान' में सुदामा की मन स्थिति द्वारा चित्रित करते हैं। सुदामा आज की स्थिति को देख अयांचित हो जाते हैं। आज व्यक्ति केवल पद की प्राप्ति हो जाने से वह ज्ञान मान लेता है। शासक जिसे श्रेष्ठ आचार्य नियुक्त कर दे चाहे वह अज्ञानी ही क्यों न हो, ज्ञानी का दर्जा अर्पण किया जाता है। ज्ञान का सम्मान ज्ञान से न होकर पद के आधार पर किया जाता है।

“ज्ञान की उपलब्धि अध्ययन, चिंतन, मन तथा साधना से ही नहीं राजनीतिक नियुक्तियों से भी हो सकती है, यदि शासक किसी व्यक्ति को किसी गुरुकुल का आचार्य नियुक्त कर दे तो वह व्यक्ति स्वतः ही ज्ञानी मान लिया जाता है।”<sup>31</sup>

इन शिक्षालयों में कभी युवक वर्ग मनमाने करते कभी शिक्षक वर्ग। शिक्षा संस्था में शिक्षक ही छात्रों के गुरु होते हैं। माता-पिता के बाद वे ही सही मार्ग पर ले जाने वाले हैं। हिन्दु शास्त्र के हिसाब से यह भगवान से भी बड़ा पद है क्योंकि गुरु, ब्रह्मा, विष्णु तो है ही उसके आगे कबीर के दोहे के अनुसार -

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े का के लागू पाया।

बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताया।।

रामदेव शुक्ल का उपन्यास 'गिद्धलोक' में किशन सोचता है जब वह यूनिवर्सिटी में एक गाइड के अधीन काम करता है, वे उसे अपने नौकर से ज्यादा काम करवा लेते हैं। "लेक्चर से रीडर बनने के लिए रिसर्च का अनुभव व जल्दी-जल्दी बढ़ाना हो तब वे लोग विद्यार्थी की मदद करते हैं या उन्हें कोई और सीधा फायदा हो।"<sup>82</sup>

आज विश्वविद्यालय में राजनीति के केन्द्र बन चुके हैं। शैक्षिक विद्यार्थियों के प्रति ईमानदार, कर्तव्य भाव नहीं है। सभी अपने फायदे के लिए काम करते हैं। रिसर्चों में गाइड अपने मनमानी करता है, अगर शोधार्थी लड़का हो तो उसे नौकर की पत्नी घर का सभी काम करवा लेती है वह कहती है - "तुम अब आ रहे हो! भले मानस, इतना भी ख्याल नहीं था कि जब बेबी को स्कूल पहुँचाया है तो उसे वापस घर भी लाना है। हारकर मुझे जाना पड़ा"<sup>33</sup>

अगर वही रिसर्च में शोधार्थी छात्र हो तो शिक्षक उसका बर्ताव व व्यवहार अलग रहता है। अगर उने इच्छा के अनुसार न चले तो गाइड तीन साल का नौ साल भी लगा देता है। लेखक कहते हैं - "यहाँ ऊपर से लेकर नीचे तक जो भी गाइडेंस मिलती है, ऐसी ही मिलती है। इसलिए नौ साल लग जाना आसान है। कुछ लोगों का उत्साह ठंडा पड़ जाता है, वे पढ़ना ही बंद कर देते हैं। कोई दुकान पर सेल्फ-मैन बन जाते हैं या किसी प्रकार की ऐसी नौकरी करने लगते हैं जिसमें दिमाग का कोई काम न हो।"<sup>34</sup>

लेखक यह भी कहते हैं - "शिक्षा के नाम पर एक नाटक है, कोई सूझ-बूझ नहीं है। परीक्षा-प्रणाली ही दोषपूर्ण है। मौखिक परीक्षा दो घंटे तक। एक टीचर और एक विद्यार्थी कमरे में बंद। फिर क्या परीक्षा, क्या सम्बन्ध कुछ भी करना सम्भव है।"<sup>85</sup>

आज शिक्षक आराम की जिन्दगी जीना चाहता है। अपने कर्तव्य को पूरी ईमानदारी से नहीं करते। आज शिक्षा का अर्थ ही बदल रहा है। सभी भ्रष्ट नीति की ओर उन्मुख होने लगे हैं। रामदेव शुक्ल का उपन्यास 'गिद्धलेक' में किशन उदय से भ्रष्ट नीति के बारे में पूछते हैं तब उदय कहते हैं - *“शिक्षा का अर्थ सिर्फ नौकर बनना रह गया है। यह भी वैसा ही है जैसा राजनीति का अर्थ कफनखसोट बनना रहा गया है। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि हर आदमी जब दूसरों को भ्रष्ट कहता है तो मान लेता है कि वह स्वयं ठीक है। दूसरे गलत हैं।”*<sup>36</sup>

शिक्षा संस्था में ही नैतिक मूल्यों का आचरण, व्यवहार आदि सिखाया जाता है। वह एक पवित्र जगह है, मगर राजनीति का मेल-मिलाप होने के कारण घृणित व्यवसाय हो चुका है। कॉलेज/विद्यालय में प्रिंसिपलों से लेकर शिक्षक, विद्यार्थी अपने मनमाने से चलने लगे हैं यह एक धन-व्यवसाय जगह बन रहा है। कॉलेज भवन, प्रयोगशाला, रिसर्च, वेतन, नियुक्ति आदि जगह में भ्रष्टाचार हो रहा है।

#### 4.5 राजनीति मूल्य में विघटित मूल्य

राजनीतिज्ञों में उन्नत आदर्श की कमी सर्वत्र मात्र देखी जा सकती है। आदर्श के स्थान पर स्वार्थतता ने घेर लिया है। स्वार्थपरक राजनीति के वातावरण में प्रजा की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी है। योग्य व्यक्ति को सम्मान नहीं मिलता बल्कि भ्रष्ट नीति को अपनाने वाले व्यक्ति जो चापलूसी, अन्यायों का आश्रय होते हैं, उन्हीं को पद प्राप्त होते हैं और वे जनता को ठगना आरम्भ कर देते हैं। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'यातना घर' में हजारी सोचता है जब नौकरी के लिए दूँढता है तब यह संदर्भ प्रस्तुत होता है।

*“इस देश में कुछ भी पाना योग्यता पर निर्भर नहीं करता बल्कि रुपये वह भी नोटों से लिपटी एप्रोच से हो पाता है, या फिर किसी बड़े आदमी का बेटा होना*

चाहिए।... आज योग्यताएं व डिग्रियाँ निरर्थक सिद्ध हो गई हैं। फिर इस व्यक्ति पूजक देश के लोगों की मानसिकता इतनी करुणा से भरी है कि क्षमादान और सहानुभूति को तो वह हथेली में इलायची की तरह किए होते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो ये सब राष्ट्रघातक और व्यक्तिहीनता विघटनकारी स्थितियाँ पैदा नहीं होती।”<sup>37</sup>

देश में पुराने नेताओं में जो आदर्शहीनता पनपी थी वो आज नहीं है। चारों ओर अव्यवस्था, अनुशासहीनता, अकार्यकुशलता, दायित्वहीनता, खोखली नारेबाजी ने गाँधी जी के रामराज्य के स्वप्न को मिट्टी में मिला दिया। भ्रष्ट-अभ्रष्ट किसी भी ढंग से रुपया इकट्ठा करना और विषय-विलास का सेवन करना ही जीवन दर्शन बन गया।

देवराज पथिक का उपन्यास ‘जर्जर सेतु’ में दीपक सोचता है देश आजाद हो गया परन्तु उस जैसे अनेक बेघर हो गये हैं। इस सन्दर्भ में वह सोचता है -

“अहिंसा के पुजारी और देश की स्वाधीनता के अग्रदूत राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का बलिदान हुआ परन्तु फिर भी देश के भीतर का सांप्रदायिक राक्षस प्रसन्न और सन्तुष्ट नहीं हुआ। यही कारण है कि आज भी यंत्र-तंत्र हिंसा की लपटों का शिकार बन रहे निरीह व्यक्तियों का करुण क्रन्दन सुनायी देता है।”<sup>37</sup>

देश की हालत दिन-ब-दिन बहुत शोचनीय होती जा रही है। हर जगह झूठ, विश्वासघात का बोलबाला ही है। हृदयेश का उपन्यास ‘दंडनायक’ में अमीन, रोशन सिंह से कहता है जब माताप्रसाद अमीन छह महीने पहले रिटायर हो चुका था। उसने जमा किये हुए पैसों के रसीद पर अपने हाथ से एक भी हर्फ नहीं लिखा था तब सन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत होता है -

“मैं मानता हूँ, आपके साथ धोखाधड़ी हुई है। मगर मेरे मानने न मानने से क्या होता है? सरकारी कागजों में आपके नाम बकाया वैसे का वैसा चढ़ा है। जमैइत के रजिस्टर या किसी दूसरे कागज में कोई इंडराज नहीं है।”<sup>39</sup>

देश के समाज में राजनीतिक मूल्यों का त्रास हो रहा है। जहाँ राष्ट्र के नेता गण सत्य के मार्ग को अपनायेंगे तब उसका प्रभाव सामान्य जनता पर भी पड़ता है। जब वे ही भ्रष्ट, चोरबाजारी, लूटमार का राज्य रहेगा तो सामान्य जनता में भी वही असर पड़ता है। कृष्ण सोबती का उपन्यास 'समय सरगम' में गाड़ी ड्राइवर आरण्या से कहता है जब आरण्या ऐयरपोर्ट से आती है, तब पुलिस के वर्दी में लुटेरे उसके बैग को चुरा लेते हैं। इस संदर्भ में गाड़ी ड्राइवर कहता है -

“पुलिस की वर्दी में लुटेरे रोक लें तो बताइए हम क्या करें। चाकू तो आपने भी देखा था न! मैडम, मुफ्त में जान गँवाने से क्या फायदा? उनके इशारे पर गाड़ी तो आपने ही रोकी। ऐसे में हम क्या कर सकते तो मेमसाहब? आप न रुकते तो वह कैसे पीछा करते, वह तो पैदल थे। मैडम, सामान जरूर गया है लेकिन आपके साथ कुछ इतना बुरा नहीं हुआ। यह लोग जो कर गुजरते हैं। क्या कीमती सामान था, मैडम? कैमरा, जैवर....”<sup>40</sup>

समाज में सत्य और न्याय जैसे मानव मूल्यों का ह्रास दिखाई देता है। भ्रष्ट तरीकों को अपनाकर अधिकारों का दुरुपयोग, भाई-भतीजावाद, जनता के हितों की अपेक्षा, कुर्सी के लिए खींचतान, हर जगह रिश्तखोरी, सिफारिशों से पद प्राप्ति, काले पैसे का प्रचलन आदि राजनीति मूल्य को विघटित करता है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'यातना घर' में हजारी समाज के स्थिति को देखकर सोचता है, तब यह सन्दर्भ उद्घाटित होता है -

“इतना जजबाती और उदार हो जाता है कि अपना सर्वस्व न्यूँछावर करने को तत्पर हो जाता है। यदि ऐसा होता राजीव गाँधी प्रधानमंत्री नहीं बनते। तब मेधावी व विवेकशील लोग भी करुणाप्लावित होकर कह रहे थे कि बेचारी की माँ मर गई... ऐसे देश में कैसे सही और सच्चा लोकतंत्र आ सकता है? कदापि नहीं। वस्तुतः इस देश में उस क्रूर दृढ़ता की जरूरत है जो न्याय और धर्म से बढ़कर बन गई है?



क्योंकि यहाँ पर न्याय प्रमाणों को खोजता है और अब धर्म प्रदर्शनों के आसपास ही रह गया है।”<sup>41</sup>

राजनैतिक क्षेत्र के मूल्य विघटन में नेता और जनता दोनों ही विघटन के उत्तरदायी हैं। अगर हर कोई व्यक्ति अपना कार्य सही मार्गों पर करें तो राजनीतिक मूल्य में विघटित होने से बचा सकते हैं। मानवता का आदर करना हर कोई व्यक्ति को करना चाहिए। डॉ० हेतु भारद्वाज का कथन है - “आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से टूटे समाज को फिर भी सरलता से उबारा जा सकता है, किन्तु जो समाज सांस्कृतिक दृष्टि से मूल्यहीन हो जाता है उसका उपचार बहुत सरलता से नहीं होता क्योंकि मूल्यों के अभाव में समाज सहज रूप से ही अमानवीय लक्ष्यों की ओर गतिवान होने लगता है।”<sup>42</sup>

चरित्रहीन राजनीतिज्ञ गांधीजी के नाम पर एक ओर जनता को कुमार्ग पर भटकाते हैं, प्रजातंत्र के खोखलापन से जनता वंचित होती है, आम जनता दिशाहीन है। सभी अपने जिम्मेदारी को निभाने लगे तो दिशाहीन होने से बचा सकते हैं।

#### 4.5.1 भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार एक राक्षस है, जो सर्वव्यापक है और सर्वशक्ति सम्पन्न है। समाज में पैसों का ही गुणगान होता है न कि मानव मूल्यों का। गोविन्द मिश्र का उपन्यास ‘फूल इमारतें और बन्दर’ में प्रसाद जो प्रधानमंत्री के अधीन काम करते हैं वो मोहन्ती से कहते हैं जब मोहन्ती के अध्यक्ष बनने के फाइल प्रधानमंत्री के कार्यालय में पहुँचाता है, उसी समय प्रधानमंत्री से तीन उद्योगपति मिलने आते हैं तब प्रसाद उनको देखकर कहते हैं - “सब नेता लाचार होते हैं, क्योंकि सबकी जरूरतें इतनी बढ़ गई हैं। आजकल बिना पैसे के पार्टी नहीं चलती वही पार्टी अध्यक्ष बन सकता है जिसके पास पैसा हो।”<sup>43</sup>

कई लोग इतना जरूरतों से ज्यादा धन कमा लेना चाहते हैं। उसके लिए गरीब व्यक्तियों की रोटी छीन लेते हैं। लोकप्रतिनिध जायज नाजायज तरीकों से इतना पैसा कमाकर रख लेते हैं। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'पिंजरे के पंछी' में कृष्णकुमार अपने पिता इन्द्रसेन से उसके भ्रष्टाचार के बारे में झकझोरता है। इन्द्रसेन ने गरीब लोगों पर अत्याचार और शोषण करता है। गरीबों को मिलने वाला अनाज को लूट-खसोट, काला-बाजार करता है तब कृष्णकुमार कहता है -

*“आपने कभी उनके बारे में सोचा, जिनके घर में कई दिनों तक चूल्हा नहीं जलता और आपके गोदाम में हजारों बोरी अनाज हर वर्ष सड़ जाते हैं। ऐसा काला धन जमा करना राष्ट्रीय क्षति है।”* <sup>44</sup>

राजनीति में भ्रष्टाचार का दूसरा रूप रिश्वतखोरी है। अवसरवादी नेता, अमीरों को रिश्वत देकर अपने स्वार्थ मांगों की पूर्ति कर लेते हैं। वैसे यह जानते हुए कि रिश्वत लेना और देना कानूनी जुर्म है। मगर राजनीति के इस व्यवसायीकरण नेताओं ने अवसरवादी अमीरों का हित संबद्धक, चालबाज, आदर्शहीन और रिश्वतखोर बना दिया है। समाज में रिश्वत लेना-देना सर्वत्र मात्र व्याप्त है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'यातना घर' में नगर परिषद के अधिकारी मिश्रा का कहना था कि -

*“रिश्वत के पैसे एक अकेला आदमी खा भी नहीं सकता। यदि खा लेगा तो उसकी तबीयत खराब हो जाएगी और भांडा फूट जाएगा। इसलिए यह जरूरी है कि बाँट-बाँट कर खाओ। फिर हमारे धर्मग्रन्थों में लिखा है कि बाँट-बाँट कर खाने वाला स्वर्ग में जाता है।”* <sup>45</sup>

यह रिश्वत नेतागण तक ही नहीं चलता बल्कि सामान्य जनता के कार्यों में भी रिश्वत चलता है। आज शैक्षणिक योग्यता के युवकों को नौकरी नहीं मिलती। चाहे चपरासी हो चाहे अफसर के पद की नियुक्ति हो रिश्वत से ही पद की प्राप्ति होती है। 'यातना घर' उपन्यास में हजारी की माँ और हजारी के बीच वार्तालाप होता है उसमें

यह सन्दर्भ उद्भूत होता है - “संतवली बोली, ‘मुझे हनुमान जी के मंदिर जाना है। मैंने तेरी नौकरी लगने की मन्नत मांगी थी।’ उसके बेटे ने कहा हनुमान जी ने यह नौकरी नहीं लगाई। यह नौकरी लगाई है मेरे पैसों ने। पूरे सवा लाख रुपये खर्च हुए हैं।” <sup>46</sup>

अनैतिक कार्य ही धंधा बन चुका है। इस अनैतिक भ्रष्टाचारों से अधिक मात्र धन इकट्ठा कर लेते हैं। यह सरकारी लाइसेंस प्राप्त करना भ्रष्टाचार करने के लिए लाइसेंस प्राप्त करने के बराबर है। लाइसेंस का दुरुपयोग कर समाज का अंधेरागर्दी में ढकेल रहे हैं। जो लाइसेंस देने वाले अधिकारी और लेने वाला व्यक्ति समाज को धोखा देकर अपनी जेब भरने में लगे रहते हैं।

हृदयेश का उपन्यास ‘दंडनायक’ में जिलाधीश कार्यालय में चपरासी सियाराम से रोशनसिंह सुनता है कि - “पिछले जिलाधीश अनूपकुमार श्रीवास्तव ने हथियारों के खूब लायसेंस बाँटे थे, यहाँ तक कि कुछ डकैत भी लायसेंस पा गए थे और इसमें उन्होंने खूब रकम चोरी की थी। उन्होंने अपने लड़के को, जो मेरठ में वकालत करता है, यहाँ के पैसे से ही कार दिलाई है।” <sup>47</sup>

सरकारी के कर्मचारियों अव्यवस्थता और अकर्मण्यता के कारण सरकार अपनी कार्यप्रणाली को सुचारु रूप से नहीं कर रही है। राजनीति के क्षेत्र में स्वर्णिम अवसरों का भरपूर लाभ उठा लेते हैं। राजनीतिज्ञों के करतूतों को देख समाज को संघर्ष का पाठ पढ़ाना चाहते हैं। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास ‘महासमर - कर्म’ में कुलपति युधिष्ठिर को न्याय परक संघर्ष की महानता को चित्रित करते हुए कहते हैं कि व्यक्ति को अपने अधिकारों के मूल्यों को बचाए रखने के लिए उसे संघर्ष करना पड़ता है।

“न्यायपूर्ण संघर्ष, अन्यायपूर्ण शान्ति से सदा महान है। यदि कोई अन्यायपूर्ण बल से हमारे अधिकार छीनता है, तो संघर्ष हमारा धर्म है।” <sup>48</sup> यदि हमें इनके विरुद्ध न रहेंगे तो संपूर्ण समाज अन्याय के प्रति गिर जाएगा।

हृदयेश का उपन्यास 'दंडनायक' में सड़क व नाली साफ करने वाला रोशन सिंह से कहता है - "नाली की सफाई का जिम्मा दूसरे जमादार का है। नाली की सफाई वाला जमादार जो आठवे-दसवें दिन आता, वह पूरी सफाई नहीं करता। इस कीचड़ को गाड़ीवाला तुरन्त नहीं उठाता। कहता कीचड़ पहले सूख जाय तभी उठ सकेगा। नालियों की मरम्मत सफाई की मद में सरकार से हर साल काफी पैसा अलग से आता है, मगर अफसर बाप का माल समझकर डकार जाते हैं। कागजों पर आदमियों की भरती दिखा दी जाती है और कागजों पर कारगुजारी हो जाती है।" <sup>49</sup>

स्वार्थ व लोभी के कारणवश अधिकारी, मंत्री, ठेकेदार आदि अन्य उच्च पद से लेकर साधारण कर्मचारी तक धन कमाने के होड़ में ही रहते हैं। इन्हें अपने कर्मठता से कार्य करना चाहिए। राजनीति में शासक का पद समाज के कल्याण के लिए, सामाजित हित के लिए सौंपा जाता है। मगर वे अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाते हैं। अगर वे जानकर सही मार्ग पर चलेंगे तो इन भ्रष्टाचारों को रोक सकते हैं। मगर इन औद्योगिक विकासों के कारण राजनीति में दिनभर अमानवीय कार्य चल रहे हैं। रामदेव शुक्ल का उपन्यास 'गिद्धलोक' में उदय किशन से कहता है जब से राजनीति के बारे में बहस होती है तब यह संदर्भ उद्भूत होता है -

"बिना अमानवीय हुए राजनीति का धंधा करने वाला कभी सफल नहीं हो सकता। जिस दिन यह आ जायेगा कि राजनीति और डकैती में फर्क होता है, उसी दिन से ये ठीक दिशा में सोचना शुरू कर देंगे।" <sup>50</sup>

समाज में पनपने वाली विद्रुपताओं और विरूपताओं के विरुद्ध लड़ने के लिए सामूहिक संगठन की जरूरत है। तभी इनसे कुमार्ग पर चलने से रोक सकते हैं। उन्हें अनैतिक कार्यों से नैतिक में लाने की कोशिश कर सकते हैं।

#### 4.5.2 नौकरशाही

राजनीति के विषाक्त वातावरण में सरकारी कर्मचारियों का कार्यकर्ता में दायित्व दिखाना ही अच्छे नौकरशाही का गुण है। समाज में घूस के द्वारा अधिकार पर रहे कई नेताओं, अफसरों का बनता बिगड़ता रूप रहता है।

जैन कुमार का उपन्यास 'बात अड़तालीस घंटों' में नौकरशाही वातावरण को दर्शाया गया है। जहाँ कि कार्यालयों में कार्यरत व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व के प्रति विमुख दिखाई देते हैं। लीला कैशबराम के अधीन कार्य करती है। वहाँ पर वह नेताओं के कार्य के प्रति उदासीनता को स्पष्टता: दिखाई देती है। तथा वह उसमें कर्तव्यहीन कार्यरत अधिकारियों के विरुद्ध होते हैं; इसमें विचार करते हैं कि प्रशासन में इस प्रकार अधिकारी वर्ग अपने दायित्व से विमुख क्यों पाये जाते हैं, और कहती है -

*“लोग अपना कार्य एक बोझ समझकर क्यों करते हैं? ड्यूटी का सारा टाइम चाय पानी, मटरगश्ती में बिताते हैं। कार्यालयों में कार्य के प्रति उदासीनता बरती जाती है।”<sup>51</sup>*

आज के कर्मचारी जन-सेवा का केन्द्र नहीं रहा है। बल्कि उच्च अधिकारियों व नेताओं की खुशामद कर धन कमाने व पदोन्नति प्राप्त करने में तुले हुए हैं। गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'फूल इमारते और बन्दर' में अध्यक्ष पद की नियुक्ति को लेकर प्रधानमंत्री का बेटा रतनकुमार और मोहन्ती की बातचीत होती है। तब लेखक मोहन्ती के अध्यक्ष पद की नियुक्ति को लेकर यह संदर्भ प्रस्तुत करते हैं। -

*“मोहन्ती को विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों में पढ़ाया गया है कि अधिकारी की वफाधारी देश और संविधान के लिए होनी चाहिए, किसी राजनेता या किसी पार्टी के लिए नहीं। पढ़ाया कुछ भी गया हो, व्यवहार में आज का अधिकारी उल्टा करता है। नेताओं से समुचित दूरी बनाए रखने की बजाय किसी राजनेता के लिए इस हद तक*

बफादारी पालता है कि जीवन भर के लिए वह 'उसका आदमी' बन जाए पालतू कुत्ता" 52

इसी प्रकार योगेन्द्र प्रताप सिंह का उपन्यास 'टूटते गाँव बनते रिश्ते' में रघु बी.ए. पास होने के उपरान्त भी वह बेरोजगार है। उसकी बेरोजगारी का कारण उसका किसी सुविधापरक एवं सम्पन्न व्यक्ति से नहीं जुड़ा होना है। इसको विनायक पटेल नेताओं की मनमानी समझता है वह रघु को बताना चाहता है कि तुम्हें नौकरी न मिलने का कारण तुम्हारी ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन लोगों से सम्पर्कहीनता है। आज के युग के नेताओं को लेकर रघु से विनायक पटेल कहता है - "यदि तुम किसी कांग्रेसी नेता के लड़के होते तो बी.ए. पास करने के बाद सिक फैक्टरी के मैनेजर होते, लेकिन सुविधाहीन होने के कारण ऐसा नहीं हो सकता।" 53

सरकारी कर्मचारी अपने कार्यों की पूर्ति करने में अक्षम दिखाई पड़ते हैं। जो कार्य उन्हें दिया जाता है उन्हें वे उत्तरदायित्व विहीन होकर कार्य करते हैं। आज अनेक कर्मचारी नौकरी पक्की, स्थानांतरण से बचाव आदि के लिए चापलूसी चालें चलते हैं। अपने स्वार्थों हितों के लिए बड़े अफसरों को खुश करने के लिए उनके न्याय अन्यायों में हाँ में हाँ मिलाते हैं। क्योंकि वे जानते हैं बड़े लोगों की सिफारिशों से अपना लक्ष्य आसानी से पा सकते हैं राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन में चिदम्बरा प्रभात से कहती है - "पत्रकारिता से जुड़े लोग बहुत कम ही छपते हैं। इसका कारण साहित्यकार कभी भी नहीं चाहते कि अच्छा लेखक छपे और उनसे आगे निकल जाये। छपता वही है, जो सम्पादक की जी हुजूरी करता है - वह क्यों न चुराया हुआ हो - मौलिक लेखक से जुड़ा व्यक्ति समझौता नहीं करता क्योंकि बिजनेस का खतरा होता है। चिदम्बरा कहती है, 'हर जगह राजनीति है।" 54

देश का हर एक कर्मचारी उनके ऊपर वाले अधिकारियों या राजनेताओं के गुणगान करने में ही रहते हैं। उनकी नाम की महिमा की गाथा चलती रहती है। कभी

अपने स्वार्थ हित के लिए तो कभी मजबूरी वश से उनके गुणगान करना पड़ता है। गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'फूल इमारतें और बन्दर' में दिग्विजय सिंह नामक एक बड़ा अफसर मोहन्ती से परिचित होता है। वह भारत सरकार का सचिव था। उसके पिता उसे आई.ए.एस. की परीक्षा लिखवाकर आई.ए.एस. बना देते हैं। उनका मानना है कि समाज में विदेश हुकूमत के बाद सरकार नौकरियों के मुकाबले आई.ए.एस. की स्थिति विशेष व मर्यादापूर्वक स्थिति थी। लेखक दिग्विजय सिंह पात्र को लेकर आना मत प्रकट करते हैं कि -

“आई.ए.एस. की जो नस्ल भारत में स्वतंत्रता के बाद विकसित हुई, पता नहीं कैसे उसकी खासियतों में मंत्रियां की चमचागिरी करना, उनके आदेशों को आँख मूंदकर मानना और किसी मातहत के कन्धे पर बन्दूक रखकर गलत-सही कामों को बेधड़क करवा डालना - ये भी आ गए। शायद ये सब चीजें राजनेताओं के साथ चलने की मजबूरी के कारण आई होगी.... ये न सीखते तो राजनेता के साथ जीवित कैसे रहते हैं।”<sup>55</sup>

सरकारी कर्मचारी के अव्यवस्थता और अकर्मण्यता के कारण जनता के कार्यों में रुकावट पैदा होती है। ऊपरी तौर पर नेता वर्ग जनता के हित की बातें करते हैं पर आंतरिक रूप से उसमें उनकी स्वयं की भलाई छिपी रहती है और जनता बीच में पिसती है। भैरव प्रसाद गुप्त का उपन्यास 'अक्षरों से आगे मास्टरजी' में हेडमास्टर आज के समाज में नेता वर्ग की मनमानी, उनकी भ्रष्टता के बारे में विचार व्यक्त कर रहे हैं, कुर्सी पर विराजमान मात्र अपना उल्लू सीधा करने में लगे रहते हैं। इससे शासन व्यवस्था कायम रहती है। हेडमास्टरजी इस व्यवस्था में सुधार लाने के लिए सोचते हैं - “यह समाज कब बदलेगा, यह व्यवस्था कब बदलेगी, मनुष्य आदर्श मानव कब बनेगा?”<sup>56</sup>

सरकारी कर्मचारी सरकारी नौकरी प्राप्त होते ही अपने कर्तव्य को भूल जाते हैं। अपनी चापलूसी वाणी से ही लोगों को धराशायी कर देते हैं। जनता के कार्य होने के लिए उन्हें सरकारी कार्यालयों में बार-बार बुलाते हैं। उनके कार्यों की पूर्ति में देरी करवा देते हैं। हृदयेश का उपन्यास 'दंडनायक' में रोशन सिंह जिलाधीश के कार्यालय में कर्जों की वसूलयाबी के कागज को लेकर पहुँचता है, जिलाधीश के अधीन काम करने वाले कर्मचारी उसे कहता है -

“ अब आपके साथ सख्ती भी नहीं कर सकता। आप कर्जा अदा कर चुके हैं, हालाँकि आपके पास असली रसीद नहीं है। सख्ती करना आपके साथ ज्यादाती होगी। ”<sup>57</sup>

सरकारी कर्मचारी अपने कार्यों को छोड़कर अपने निजी कार्य करने लगते हैं। कर्मचारी कार्यालयों में दिये गए समय में कार्य नहीं करते। इस समय में परिवारों के अनेक काम करते रहते हैं। अपने कर्तव्य को भूल जाते हैं। हृदयेश का उपन्यास 'दंडनायक' में रोशनसिंह व अन्य लोग अपने कार्यों के कारणवश जिलाधीश से मिलने के लिए जाते हैं तब लेखक यह सन्दर्भ को प्रस्तुत करते हैं कि - “उस दिन बनारस के कोई ज्योतिषी जी आए हुए थे और कप्तान साहब सपरिवार ज्योतिषीजी से अपनी हस्तरेखाएँ बंचवाने में व्यस्त थे। दरोगा की वर्दी पहने वह पेशकर भी अपना हाथ दिखाने के लिए उतावला था। ”<sup>58</sup>

सरकारी कर्मचारी राजनीति के नेताओं व वरिष्ठ अधिकारियों की खुशामद करते हैं, जनता के कार्य में आलस्यपन दिखाते हैं। वे अर्थ लोलुपता के कारण किसी सामान्य व्यक्ति की ईमानदारी काबलियतों को ठेस पहुँचाते हैं। वे मानव मूल्यों को पहचान नहीं पाते। सूर्यबाला का उपन्यास 'दीक्षांत' में जब विद्याभूषण शर्मा उस अमीर लड़के को अन्याय रूप से परीक्षा में पास करवाना नहीं चाहते थे उन्होंने प्रिंसिपल व चैरयमेन की धमकियों के बावजूद भी पास करवाने से मना कर दिया। इस कारण उन्हें



अध्यापक की नौकरी से निकाले गया। वे प्रिंसिपल से पूछते हैं - “आप किस बात की इतनी बड़ी सजा मुझे दे रहे हैं सर... मैंने हमेशा ईमानदारी से पढ़ाया, गुटबाजी में नहीं पड़ा, क्या औरों की तरह बदमाश लड़कों की धमकियों में आकर उन्हें पास नहीं किया, सिर्फ इसलिए।” <sup>59</sup>

हर सरकारी विभागों के कर्मचारी अपने पद को संभालने के लिए वरिष्ठ अधिकारों एक हद तक खुश रखने की कोशिश करते हैं। चापलूसी के नीति चलती है। बनावर चन्द्र का उपन्यास ‘सवालियों के बीच’ में लेखक वर्कर - प्रबंधक के बीच चलने वाली हड़ताल को सोचकर संदर्भ प्रस्तुत करते हैं - “टूल डाउन हड़ताल जब पाँचवे दिन तक जा पहुँची तो प्रबंधक साँस नीचे-ऊपर होने लगी और आँख बाहर आने लगी। प्रबंधक को लगा कि हड़ताल कहीं ज्यादा दिन खींच गयी तो सरकार को जवाब देना मुश्किल हो जायेगा और चोरी पकड़ी जायेगी।” <sup>60</sup>

एक अच्छे नौकरशाही का कर्तव्य है कि वे अपनी पदवी का सही उपयोग करें। कर्मचारियों को भी अधिकारियों, नेताओं को सही रास्तों में लाना उनका कर्तव्य है। गोविन्द मिश्र का उपन्यास ‘फूल इमारते और बन्दर’ में उत्तर प्रदेश के सी.एम. डॉक्टर सम्पूर्णानन्द अपने मुख्य सचिव से नौकरीशाही के कर्तव्य को झकझोरते हैं। वे कहते हैं कि - “आपको तनखाह इसी की दी जाती है कि आप नेताओं को ये बताएँ कि वे कहाँ गलत कर रहे हैं, यही तो आपकी ड्यूटी है।” <sup>61</sup>

वर्तमान देश में चापलूसी नीति को छोड़कर कर्मचारी अपने कर्तव्य को पूरी निष्ठा से काम करना चाहिए। सरकारी कर्मचारियों को अपनी नौकरी समाज सेवा समझ कर पूरी दायित्व से जनता के कार्यों में पूर्ति करना चाहिए। उन्हें मूल्यवान आदर्श को बनाए रखना चाहिए।

### 4.5.3 भ्रष्ट शासन व्यवस्था

आज हर कोई व्यक्ति शासन व्यवस्था में पद, धन या अन्य प्रलोभन के लिए अनेक भ्रष्ट कार्य कर रहा है। जिससे शासन व्यवस्था में उथल-पुथल, उग्रवाद, हिंसा आदि का बोलबाला चल रहा है। यही शाश्वत मूल्यों का विनाश करता है।

भैरव प्रसाद गुप्त का उपन्यास 'अक्षरों के आगे मास्टरजी' में मास्टरजी ने आज की भ्रष्ट शासन सरकारी नीति का उल्लेख किया है जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से आजादी के उपरान्त भी शासन बागडोर के मालिक अंग्रेज वर्ग ही बना हुआ है। मास्टरजी इस व्यवस्था का विरोध कर रहे हैं। वे मानते हैं कि अंग्रेजों की नीति का हम अभी भी अनुकरण कर रहे हैं, आजादी के उपरान्त भी हमारी नीतियाँ अंग्रेजी शासन से प्रभावित है। हमें छुटकारा प्राप्त नहीं। जिसके परिणामस्वरूप वे अपनी मनमानी थोपते हैं। मास्टरजी इस शासन व्यवस्था को मान्यता नहीं देते। वे कहते हैं -

*“स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् क्या हुआ? होना तो यह चाहिए था कि देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् सभी विद्यालय राष्ट्रीय विद्यापीठों में परिवर्तित हो जाते। लेकिन हुआ इसके उल्टा, राष्ट्रीय विद्यापीठ ही अंग्रेजी शासन के समय प्रचलित विद्यालय में परिवर्तित हो गये? आखिर ऐसा क्यों हुआ?”*<sup>62</sup>

सरकारी कर्मचारी लोग इन घूस, घोटाला, भ्रष्ट तरीकों से कुछ पाने के लिए तत्पय रहते हैं। इस भ्रष्ट नीति से दिन-प्रतिदिन नैतिकता का अभाव रहा है। सभी नेता, अधिकारी अपने स्वार्थ के लिए नाजायज धन की प्राप्ति के होड़ में तुले हुए हैं। गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'फूल इमारतों और बन्दर' में पत्रकार प्रमोद वर्मा मोहन्ती से कहता है जब वह दिल्ली में पत्रिका के आरंभ में पूर्व प्रधानमंत्री पर केन्द्रित विषयों को छापने लगा। इसी बीच सरकार गिर गई। तब वह कहता है -

“लेकिन ये छोटी-छोटी पार्टियाँ अपने संसद-सदस्यों को लेकर कभी इधर चली जाती है, कभी उधर। ये संसद-सदस्य विशुद्ध अवसरवाद में या पैसे के लिए सरकार गिरते या बनाते हैं।” <sup>63</sup>

इन कुमांगों भ्रष्टाचारों क्रियाकलापों को कार्यरत रहने के लिए गलत नेताओं व उच्च अधिकारी को चुनते हैं। वे जानते हैं कि देश की संपत्ति को लूटने में राजनैतिक नेताओं, अधिकारी का साथ मिलना अनिवार्य है। यदि कोई नेता अधिकारी घूस की राह अपनाता है तो इनको उद्योगपति पैसे देकर अपना भ्रष्ट कार्य कर लेते हैं। गोविन्द मिश्र का उपन्यास ‘फूल इमारतें और बन्दर’ में प्रधानमंत्री के अधीन काम करने वाला प्रसाद मोहन्ती से कहता है जब मोहन्ती को बिना घूस दिये अध्यक्ष की पदवी प्राप्त हो जाती है तब वह कहता है - “उद्योगपतियों का क्या... वे तो सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए मनपसन्द अधिकारियों की नियुक्ति चाहते हैं।... नेताओं के आगे पैसे फैंकते हैं फिर नेता गुलामों की तरह उनका कहा करते हैं। वे जिनकी नियुक्ति कराते हैं, उनसे अपने उल्टे-सीधे काम भी करवाते होंगे।” <sup>64</sup>

समाज के हर शासन व्यवस्था में उचित न्याय की चाह करते हैं। न्यायालय अनैतिक मार्गों पर प्रवेश कर चुकी है। न्याय की मांग सभी प्रकार के वर्ग, वर्ण, जाति आदि प्रत्येक लोगों के लिए समान अधिकार देना चाहिए। इसमें ऊँच-नीच की भावना नहीं होनी चाहिए। आज की स्थिति में अपराधी को दण्ड कम दिया जाता है। बनावर चन्द्र का उपन्यास ‘सवालियों के बीच’ में टूल डाउन के हड़ताल में पुलिस और अफसरों के दबावों में अदातल फैसला भ्रष्ट मनुष्यों की ओर सुना देते हैं। लेखक इस सन्दर्भ में सोचते हैं कि - “पुलिस और अफसरों के दबाव और जोर-जबरदस्ती के बावजूद भी मजदूर टस से मस नहीं हुआ। इस टूल डाउन हड़ताल को अदालत द्वारा गैरकानूनी और अवैध घोषित किया। अदालत अविश्वास के घेरे में आ गयी। अदालत के फैसले पर एक बार फिर मजदूरों द्वारा संदेह प्रकट किया गया।” <sup>65</sup>

आज कानून अमीरों के हाथों में चला गया है। आज अमीर व्यक्ति जजों, वकीलों को घूस देकर फैसले को अपने पक्ष में कर लेते हैं। इसी प्रकार नागार्जुन का उपन्यास 'वरुण के बेटे' में रोसड़ा-नरहन मछुओं इलाके में जमींदारों और मछुओं के बीच लड़ाई थी, इस कारण हाईकोर्ट में मुकद्दमा चलने लगा। लेखक कहते हैं -  
*“रोसड़ा-नरहन इलाके में एक मुकद्दमा हाल ही में मछुओं ने हाईकोर्ट से जीता था। उसमें भी मछुओं के मौरुसी हकों को नजर अंदाज करके जिला-अदालत ने जमींदारों के पक्ष में फैसला दिया था।”* <sup>66</sup>

आज तबादलों, नियुक्तियों, सस्पेंशन आदि व्यवस्था में भी भ्रष्टाचार के गुण देखने को मिलते हैं। नियुक्ति में हजारों-लाखों रुपये का लेन-देन, तबादलों आदि में भ्रष्टाचार की छाप मिलती है। गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'फूल इमारतें और बन्दर' में लेखक सरकारी विभागों के शासन व्यवस्था को देखकर यह सन्दर्भ व्याख्या उद्धृत करते हैं - *“मंत्री जी के दस्तखत से नियुक्तियों पर सरकारी मोहर लग जाएगी, आदेश में वजन आ जाएगा, पर हमारे देश के चालबाज अफसर बखूबी जानते हैं कि किसी भी संस्था की अपने अधीन लाना हो तो पहले नियुक्तियों और तबादलों को अपनी तरफ घसीटें आज वही पेशकश हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के जजों को लेकर है... ताकि उन्हीं जजों की नियुक्ति हो जो अनुकूल फैसला लिखने वाला हो, जो ऐसा न करे उनका तबादला किया जा सके।”* <sup>67</sup>

सरकारी विभागों की शासन व्यवस्था में भ्रष्टि कार्यरत रहते हैं। अपने मनमानी शासन व्यवस्था चला रही है। जहाँ न्याय और ईमानदारी संभालने वाले ही भ्रष्ट व्यवहारों से शासन चलाते हैं। हृदयेश का उपन्यास 'दंडनायक' में रोशन सिंह के गली में कूड़ा, नाली साफ करने वाला कहता है, जब उनके कामों में देरी पड़ जाती है तब वह कहता है - *“साहब, आपको अगर कोई शिकायत करनी है तो ऊपर लिखकर भेज दें। मगर मैं इतना बतलाए देता हूँ कि होगा कुछ नहीं। बांद में गली के*

जमादार ने इस इंस्पेक्टर के बारे में बताया था कि अपने हल्के के हर जमादार से उसके बीस रुपये माहवार बंधे हैं। न देने पर वह उनकी हाजरी में गड़बड़ी कर देता है। इस इंस्पेक्टर ने अपनी साली की लड़की को बैठाल रखा है और वह पहले दर्जे का हरामी है।”<sup>68</sup>

यह ठेकेदारों, अफसरों व उच्च अधिकारी जनता को खून-चूसने में तुले रहते हैं। उनके मजदूरों व ईमानदारी से मिलने वाला रुपये भी ठीक से नहीं मिलता। उन्हें भ्रष्ट शासन ईमान, दलाल बनाकर रख लेते हैं। बनावर चन्द्र का उपन्यास ‘सवालियों के बीच’ में दिनेश कहता है जब मजदूरों की मजदूरी छीनी जाती है तब वह कहता है – “ठेकेदारों के आदमी जो वर्कशाप में हेल्परी और आफिसों में चपरासी का काम करते हैं, वह उनकी दैनिक मजदूरी बढ़ाने की माँग में प्रबन्ध की तरफ से ठेकेदार को एक आदमी पर बाईस रुपये मिलते हैं और ठेकेदार उनको पन्द्रह रुपये देता है। मजदूरों को बीस रुपये के बदले पन्द्रह मिलता है। सात रुपये कमीशन के तौर हड़प लेते हैं।”<sup>69</sup>

यह न्याय भगवान का दूसरा रूप है। न्याय से शासन चलाने वाला, सत्य के मार्ग में चलाने वाले सुखी व शांत जीवन बिताता है। भगवान की खोज न्याय से ही सम्बन्धित है जो उनका न्याय अटल रहता है। डॉ. देवराज पथिक का उपन्यास ‘जर्जर सेतु’ में शीलभद्र के पिता अमिरत्न एक ईमानदारी वकील थे। वे कहते हैं – “उस झूठे मुकदमें जीतकर धनवान बनने की अपेक्षा सच्चे मुकदमों के लिए बिना धन लिए कानूनी जिरह करने में जो आत्मिक आनन्द व संतोष होगा वह कुबेर के खजाने से भी बढ़कर सौख्यकारक लगेगा।”<sup>70</sup>

#### 4.5.4 पुलिस कर्मचारी

पुलिस और राज्य कर्मचारी की मिलीभगत से ही समाज त्रस्त है। आज पुलिस और राजनीतिज्ञ एक दूसरे के पूरक बने हैं। राजेन्द्र शर्मा का उपन्यास 'गौरी' में जमना पांडे का बेटा गाँव की जवान लड़की पे बुरी नजर होती है। पर उसके विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही नहीं होती है। क्योंकि पुलिस को शराब पिलाकर उसके पाप धूमिल हो जाते हैं। सक्कु काकी को भतीजे सुलवखन के मन में भ्रष्टाचार को समाप्त करने को ठान लेता है। और वह पूछता है - "गाँव वाले उसे ठीक क्यों नहीं कर देते?... पर वह पुलिस के सिपाहियों को बोतल पिलाता है। बाप का पैसा देखकर मरे ही आँखे हरे में छा रही है, कोई बोलता तक नहीं उसके आगे।" <sup>71</sup>

स्वतंत्रता के पूर्व व पश्चात के शासन काल में भी पुलिस रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार का पर्याय रही है। पुलिस अन्यायों के मार्गों में चलते हैं। वे धनाढ्य व्यक्तियों के क्रियाकलापों में उनके साथ देते हैं। उनके गलत कार्यों में रास्ता बना देते हैं। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'पिंजरे के पंछी' में हेमन्त की प्रेमिका ललिता के पिता दुखीलाल के दोस्त उनसे कहते हैं जब नायक के पिता इन्द्रसेन उस गाँव में गरीबों को शोषित करता तब वह कहता है - "भूलते ही दुखीलाल! समाज में कौन ऐसे हैं जो उसके सामने सिर उठा पाये हैं। देखते नहीं हो हेमन्त की दुर्दशा... और कितने ही हेमन्त की तरह सिर उठाये थे उसके सामने, सबका कुचल डाला उसने। अरे, उसकी पैरवी तो ऊपर तक है... थानेदार भी उसके सामने नहीं बोलते हैं... फिर तुम्हारी क्या औकात है?" <sup>72</sup>

पुलिस नाम के वास्ते रिपोर्ट दर्ज कर लेते हैं, चाहे वह असली या नकली हो उन्हें कोई सरोकार ही नहीं होता। वे अपने कर्तव्यों से बढ़कर रिश्वत लेने में लगे रहते हैं। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'पिंजरे के पंछी' की नायिका सीमा का भाई हेमन्त नायक कृष्णकुमार से उनके पिता इन्द्रसेन के शोषण के बारे में कहता है -

“कैसे कानून का सहारा लूँ - बेटे! कोई भी थानेदार आते हैं तो उन्हीं लोगों का आदमी बनकर रहता है। आखिर वे सम्पन्न व्यक्ति हैं। चाँदी के कुछ टुकड़ें फेंक देते हैं - उन लोगों के सामने। कोई मुकद्दमा किया जाता है तो वे लोग ज्यादा पैसा देकर अच्छे वकील खरीद लेते हैं। जिसके कारण जीत उन्हीं की होती है। अब तुम्हीं बताओं कि इस षडयंत्र से कैसा बचा जाए? क्या करें हम लोग?”<sup>74</sup>

पुलिस अधीक्षक जहाँ कहीं जाँच पड़ताल के लिए जाते हैं तो वे अपराधी की हैसियत देखकर उनके खिलाफ कार्यवाही की जाती है। अगर दोषी गरीब हो तो उसे सजा जल्दी ही मिल जाती है, वहीं दोषी अपराधी अमीर घराने का हो तो उनसे घूस या रिश्वत लेकर रंगीलापन भरते हैं। अर्थात् उन दुष्टों के साथ मिल जाते हैं। हृदयेश का उपन्यास ‘दंडनायक’ में रोशन सिंह अखवार में पढ़ता है कि राजस्थान में एक बस में सत्रह लोग बिजली का करंट दौड़ जाने से मर गए। बिजली का एक तार टूटकर बस पर गिरा और उससे पूरी बस जल गई। ऐसे ही एक हादसा खबर पढ़ी। उसे लगा ऐसे लापरवाही तो सरासर हत्या का मामला बनता जा रही है। तब वह सोचता है और कहता है कि - “दोषी अफसरों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही हो तो अपने आप सब ठीक हो जाएगा। ताज्जुव है, जाँच तो होती है, पर सजा किसी को नहीं मिलती। जाँच करने वाले जाँच किए जाने वालों की बिरादारी के ही होते हैं।”<sup>74</sup>

पुलिस राजनीतिज्ञों से मिलकर अपने फर्ज में निभाने में असफल रह जाते हैं। देवराज पथिक का उपन्यास जर्जर सेतु में जब पवन मथुरा की प्रसिद्ध रामलीला मजीली पर दृश्य देखने को जाता है। तब वहाँ के कुछ बदमाश हथगोले फेंक कर चले जाते हैं। फिर भी पुलिस उन बदमाशों पर कार्यवाही नहीं करते। पवन का भाई दीपक सोचता है- “हथगोला फेंकने वाले को पकड़ लिया गया। वह नगर का दस नम्बरी बदमाश था। पुलिस भी जानती थी परन्तु विवश थी। उसके सिर पर एक बहुत बड़े राजनेता का हाथ था। यही कारण है कि वह पुलिस द्वारा पकड़े जाने के कुछ ही

समय में फिर बाहर आ जाया करता था। उसका काम ही ऐसे मेले ठेलों में आंतक फैलाना होता था।”<sup>75</sup>

पुलिस वाले पद संभालने व पैसों को बढ़ाने में अधिक रुचि रखते हैं। इस कारण समाज में चलने वाले अन्यायों को रोकने में असमर्थ हो जाते हैं। हृदयेश का उपन्यास ‘दंडनायक’ में रोशनसिंह अखबार को पढ़ता है और सोचता है आज की खबरों में राष्ट्रीय, अंतराष्ट्रीय तथा राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक हालात दिखाई जा सकती है। तभी वह एक खबर पढ़कर पुलिस के अनैतिक कृत्यों के बारे में सोचता है। वह खबर थी कि जहरीली शराब पीने के कारण कानपुर में पाँच लोगों की मृत्यु हो जाती है और दस लोग गंभीर हालत में अस्पताल में दाखिल होते हैं। इसमें शिकार लोग मजदूर वर्ग के थे। उसमें दो सगे भाइयों की मृत्यु होती है। इन हादसों की खबर को पढ़कर भी वह उस पर वैसी ही प्रतिक्रिया हुई। वह कहता है कि -

“ऐसे हादसे को पुलिस रोक सकती थी। पर पुलिस तो इन धंधा करनेवालों से खुद धंधा करती है। उसकी दिलचस्पी तो पैसा पैदा करने में रहती है, वारदातों को रोकने-थामने में नहीं।”<sup>76</sup>

पुलिस इन भ्रष्ट व अनेक अनैतिक कार्यों का साथ व खुद मिलकर उनकी सहायता करता है। हृदयेश का उपन्यास ‘दंडनायक’ में रामसागर के क्रियाकलापों को देखकर रोशन सिंह अपनी पत्नी से कहता है कि - “कुछ दुकानदारों के बार और नपने कम है। नकली और मिलावट वाला सामान भी रखते हैं।”<sup>77</sup>

पुलिस कर्मचारी कुमांगों से सुधारना नहीं चाहते। सिर्फ वे समाज के संतुलन को नहीं बिगाड़ रहे बल्कि खुद के वैयक्तिक मूल्यों को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास ‘यातना घर’ में हजारी थानेदार अपनी पत्नी को डांटता है जब वह धन के खातिर भारी अटैचियाँ को घर रख लेता है। वह कहता है- “खबरदार जो



किसी को इनके बारे में बताया तो वरना... अपनी जबान बंद रखा... जरा भी किसी को इन अटैचियों की भनक भी दे दी तो तेरी खैर नहीं। जान लो, मैं थानेदार हूँ।”<sup>78</sup>

आज पुलिस सेवा के प्रति ऐसी विकृत अवधारणा बन गई है कि उसके सदाचारण पर कोई विश्वास ही नहीं करता। उसे कृत्य कार्यों जैसे मक्कार, ढोंगी और चालबाज समझा जाता है। समाज को जितना कष्ट देना चाहते हैं, उतना देते हैं। जनता के प्रति अपने कर्मनिष्ठ, जिम्मेदारी को भूल गए हैं। रुपये बढ़ाने पद संभालने में तुले हैं।

राजेन्द्र शर्मा का उपन्यास ‘गौरी’ में जमना पांडे सुबीरा और सुलक्खन की हत्या कर भाग गया है और जब गौरी और सुक्की काकी पुलिस के पास सहायता के लिए जाते हैं तो पुलिस उनकी सहायता करने के बजाय उन्हें पेशान करती है। ऐसे में सुक्की काकी और गौरी पुलिस से छिपती फिर रही है। सुक्की पुलिस की अनैतिकता व भ्रष्टता के विरुद्ध कार्यवाही चाहती है। वे पुलिस विभाग को उनके दायित्व से परिचित करवाना चाहती है। वे कहती हैं - “पुलिस ने हमें फिजूल काफी तंग कर रखा है - और जानती हो, ऐसा क्यों हो रहा है? सिर्फ गौर की सुन्दरता और जवानी के लिए। समाज में पुलिस विभाग द्वारा फैली हुई अनैतिकता को समाप्त करना चाहिए।”<sup>79</sup>

पुलिस भ्रष्ट के साथ, निकम्मी व आलसी भी बन जाती हैं। वह सदैव लूट-पाट, खून-खराबा होने के बावजूद कागजी खाना को भरकर रिपोर्ट तैयार करना ही उनका कर्तव्य बन जाता है। यदि कोई हादसा हो जाये पुलिस अपनी चौकी पर विद्यमान नहीं रहती। हृदयेश का उपन्यास ‘दंडनायक’ उपन्यास में रोशन सिंह के बहन और उसके पति दिग्विजय सिंह के झगड़े के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज करने में पुलिस की कार्यवाही में सोचता है - “कहीं ऐसा नहीं कि पहले हादसा हो जाए तब उसके बाद कार्यवाही हो। हादसा होने से रोका जाए, पुलिस की क्या यह जिम्मेदारी नहीं है?”

लकड़ी के धुंआ लगने देने का मतलब है कि वह आग पकड़ेगी और वैसा होने से पहले पानी डाल दिया जाए।”<sup>80</sup>

अर्थात् पुलिस कर्मचारी अपनी जिम्मेदारी को पूरी निष्ठा से करे तो समाज में चलने वाले भ्रष्ट, शासन, बुरी राजनीतिज्ञ नेता के अनेकों षडयंत्र को रोक सकते हैं।

#### 4.5.5 कथनी करनी में भेद

आज के आधुनिक सत्ताधारी चुनाव के समय देश के जटिल-से-जटिल समस्याओं के निवारण के लिए जनता के समक्ष अनेकानेक वायदे करते हैं। परन्तु सत्ता में प्रवेश होने के पश्चात् सत्ताधारी अपना वायदे को भूल जाते हैं। उन्हें अपने हित के सिवाय और कुछ नहीं सूझता। समय के अनुसार अपने बातचीत को बदलते रहते हैं।

भैवर प्रसाद गुप्त का उपन्यास ‘अक्षरों से आगे मास्टरजी’ में चुनाव के दौरान मतदाताओं को खरीदा या डराया-धमकाया जाता है। मत प्राप्त करने का वास्तविक अधिकारी कौन-सा उम्मीदवार है यह निश्चय कर सकने के लिए जनता के पास कोई निश्चित मापदंड नहीं होता, परिणाम प्रत्याशी जनता को खिलौना बनाकर उसे अपने-अपने ढंग से खेलते हैं। सामान्यतः जनता तो न मत का वास्तविक मूल्य समझती है और न व्यक्ति विशेष की योग्यता अथवा दल विशेष की नीतियों के कारण मतदान करती है। हेडमास्टरजी जनता को शोषण से बचाने के लिए उन्हें अपने अधिकारों का सदुपयोग करने के प्रति अपना कथन प्रस्तुत करते हैं - “शासन को ठीक करने का हमारे पास अब एक ही उपाय रह जाता है। हम सवाल उठाये और जनता को समस्याओं के प्रति सचेत करें और स्वयं आगे बढ़कर संगठित होकर काम शुरू करें। शासन का मुँह हमने बहुत ताका।”<sup>81</sup>

नेतागण अपने निजी स्वार्थ के लिए सारे देश के हित को नीलाम करने के लिए तैयार हो जाता है। गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'फूल इमारतें और बन्दर' में प्रमोद मोहन्ती से नेतागिरी के गुण को जानते हुए कहता है जब मोहन्ती के अध्यक्ष बनने की फाइल प्रधानमंत्री के पास दो रास्ते से पहुँचती है एक सीधा तो दूसरा समर सिंह सचिव के जरिए। इस डर के कारण मोहन्ती प्रधानमंत्री के ज्योतिषी के जरिये सिफारिश के लिए कहता है। तब इस सन्दर्भ में प्रमोद कहता है - *“इन नेताओं की जाति-बड़ी अजीबोगरीब है। ये वे नहीं हैं जो अपने कहने पर अड़े रहें। ये हर दूसरे मिनट में बदल जाते हैं... जैसे गिरगिट अपना रंग बदलता है।”*<sup>82</sup>

यह नेतागण अपनी झोली को भरने में लगे रहते हैं। राजनीति में प्रवेश होते ही पदवी संभालने, पैसा कमाना ही मुख्य ध्येय बन जाता है। जो भी सरकार सत्ता में आती है वह अपने स्वार्थ के लिए जनता को लूटने में लगा रहता है। भोली जनता इनके झूठे भाषणों के मोह में फंस जाती है। हृदयेश का उपन्यास 'दंडनायक' में पंडितजी अपने बेटे की नौकरी की सिफारिशों में जिलाधीश के पास गए, वे झूठा आश्वासन देकर कुछ नहीं करते। तब वह रोशन सिंह से दुखभरी वेदना को झकझारता है। वह कहता है - *“हकीम, नेता सब साले बड़े खुदगर्ज होते हैं। इनके लिए भले ही कोई अपनी जान दे दे, मगर ये कहे पर मानने वाले भी नहीं। साँप पर यकीन किया जा सकता है, लेकिन इन सुसरों पर नहीं।”*<sup>83</sup>

आज कथनी और करनी में भारी अंतर आ चुका है। सत्ताधारी अपने मिथ्याभाषण से पेट भर लेते हैं। यह मीठी वाणी से भोली जनता को मंत्र मुग्ध करते हैं। इनकी कथनों को मान उनकी ही लीक लकीरों पर चलने लगता है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन' में चिदंबरा प्रभात को देखकर कहती है जब पत्रकारिता से नौकरी चली जाती है। वह दिल्ली महानगरी संसद भवन के आगे असमर्थ स्थिति में चिदंबरा को देखता है तब इस सन्दर्भ में चिदंबरा कहती है - *“इस*

तहर फटे हाल आँखों में बेबसी के आँसू लिए सबके आगे अपने हाथ फैला रहे हैं। यह तो दिल्ली महानगरी है। यहाँ संसद भवन है। राष्ट्रपति भवन है। यहाँ हर प्रदेश से चुनकर तथा कथित बुद्धिजीवी लोग आते हैं। लम्बे-भौंडे भाषण देते फिरते हैं। पंद्रह अगस्त और छब्बीस जनवरी को इसी लाल किले के प्राचीर से भाषण देते हैं कि हम गरीबों के मसीहा हैं - हम गरीबों के नेता हैं और हमारी पार्टी गरीबों की सेवा में समर्पित है।”<sup>84</sup>

राजनीति में मीठे वचनों से काम चलते हैं। ये सत्ताधारी छुरी को मधु में डुबोकर समाज के ऊपर घोंप दिया है। राजनीति में अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए इन मीठी वाणी का प्रयोग अत्यंत आवश्यक है। सत्ता को अपने वक्तव्य से ही दूसरों को आकर्षित कर सकता है।

सत्ता में वही व्यक्ति टिक सकता है जो अपनी वाणी से दूसरे विपक्षी पार्टी के टांगों को खींच भी सकता है और जनता में ओज का वातावरण फैला भी सकता है। सत्ताधारियों के अपनी प्रखर वाणी से समाज में शुभ कार्यों या बुरा कार्य भी कर सकते हैं। हृदयेश का उपन्यास ‘दंडनायक’ में रोशन सिंह पंडित महेन्द्रनाथ दीक्षित एवं योगेन्द्रनाथ दीक्षित से मिलने जाते हैं, वहाँ सिद्धी में बेंच पर बैठे दो लोग पास जिले में होने वाले उपचुनाव के बारे में बातें करते हैं - ‘एक कह रहा था कि संगठन में भितरघाती बहुत चल रही है। अच्छे-अच्छे नेता ऊपर से ऐसा दिखावा करते हैं कि हम पार्टी के उम्मीदवार के गले-गले एक साथ हैं जबकि अंदर-ही-अंदर वे उम्मीदवार की टाँग धसीटते होते हैं। ऐसे लोगों के विरुद्ध सख्त कार्यवाही होनी चाहिए।’<sup>85</sup>

आज समाज में पैसे व पदवी के आगे सब कुछ फीका नजर आता है। सत्ताधारियों के साथ उनके अधीन काम करने वाले अधिकारी कर्मचारी आदि नेतागण की बातों को सुनना व अमल करना पड़ता है। सत्ताधारी गरीबों से झूठे आश्वासन देते समय इनको भी हाँ में हाँ मिलानी पड़ती है। गोविन्द मिश्र का उपन्यास ‘फूल

इमारतें और बन्दर' में मोहन्ती देश के अधिकारियों के बारे में सोचता है - "सफल उच्च अधिकारी हवा के साथ बहते थे। वे मंत्री के मन का करते, उनके ही मन का कहते।" 86

आज नेतागण ऊपरी दिखावा के कथन से जनता को मंत्र मुग्ध करना ज्यादा पसंद करते हैं। जनता के आगे अपने आप को अच्छे नेतागण बनने की कोशिश में अनेकों झूठ बोलते हैं। रास बिहारी बेहरा का उपन्यास 'विजयी' में सरे आम सत्ता में बैठे सत्ताधारी अपने पद का दुरुपयोग कर रहे हैं। वहाँ न्याय आम बिक रहा है। अशान्ति और व्यवस्था के वातावरण को देखकर सुकांत बाबू के मन में इस व्यवस्था को मिटाने की उत्सुकता उत्पन्न होती है। उनके मन में कर्तव्यहीन लोगों को दूर करने के लिए छात्रों के द्वारा अपनी महत्वाकांक्षा दी है कि - 'सारे देश में न्याय के नाम पर अन्याय चल रहा है, क्षमता में बैठकर लोग अपनी क्षमता का दुरुपयोग कर रहे हैं' 87

आज लोग सत्ता में आने के उपरान्त भी देश में अन्याय होता है। सत्ता कुर्सी को पाने व सुरक्षित करने की आड़ में जनता के प्रति कर्तव्यों को निभाते नहीं है। उन्हें चिन्ता नहीं। सत्ता प्राप्त कर ऊपर से आदर्श दिखाने वाले नेता यथार्थ में वह कुछ और ही होता है, उनकी उदारता के पीछे बड़े-बड़े रहस्य छिपे रहते हैं। वे अपनी जनता को साबित कराते हैं कि देश की आजादी के लिए शहीदों जैसे अपने आप को न्यौछावर करते हैं। मगर सभी नेता ढोंगी ही निकलते हैं। वे अपने स्वार्थ कार्यों में ही लगे रहते हैं। हृदयेश का उपन्यास 'दंडनायक' में रोशन सिंह सोचता है जब पंडित महेन्द्रनाथ के घर में शहीदों के फोटो लगाये होते हैं जो असलियत में वे वतन के प्यारे नहीं हैं। रोशन सिंह जी स्वतंत्रता सेनानी है। वह सोचता है कि देश में झूठे आश्वासनों ने समाज में साम्प्रदायिकता, अराजकता, भ्रष्टाचार का बोलबाला ही सर्वस्व जकड़ रखा है। इस सन्दर्भ में वह सोचता है कि - "आजादी के लिए अपना सर्वस्व

देने वाले उनके लिए बस बहाना होते हैं। वहाँ ढोंग ज्यादा होता है, काम की बातें बहुत कम। मूर्तियों के नीचे नाम अंकित न होने की दशा में उनमें से अनेक पहचान भी नहीं पाते कि कौन किस शहीद की है और कौन किस शहीद की। वे तुच्छ मानसिकता वाले लोग अपने आचरण से वितुष्णा पैदा करते हैं।”<sup>88</sup>

अर्थात् राजनीति में वही सत्ता में टिक सकता है जो अपनी वाणी से भोली जनता को अनैतिक मार्गों से नैतिक की भावनाओं को जगा सके। सत्ताधारियों को अपने भाषण से जनता के शुभ में लगाना ही श्रेयस्कर होता है। न कि उनके भोलेपन का फायदा उठाकर उन्हें हानि पहुँचाये।

#### 4.5.6 सत्ता लोलुपता

आज की आम जनता व अधिकांश सत्ताधारी व्यक्तियों के मन में सत्ता प्राप्त करने की लालसा बढ़ती जा रही है। उनका ध्येय केवल सत्ता पाना ही है। चाहे उसके लिए अधिक से अधिक घृणित कार्य ही क्यों न करना पड़े। राजनीति में सत्ता की प्राप्ति के लिए दूसरे की हत्या करवाने से भी नहीं चूकते। इसमें मानव जीवन का मूल्य विनाशमयी हो रहा है। सत्ता की कुर्सी प्राप्ति की होड़ में लोग अपने कर्तव्यों को भूलते जा रहे हैं। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास ‘महासमर-प्रच्छन्न’ में दुर्योधन भीष्म की कर्तव्यपरायणता के बारे में सोचता है। भीष्म अपने कर्तव्यों की पूर्ति के लिए जीवनोपरान्त संघर्षरत रहते हैं।

“कर्तव्य का पालन ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है। उसमें न व्यक्तिगत भावों के लिए कोई स्थान है न व्यक्तिगत संबंधों के लिए।”<sup>89</sup>

आज हत्या, लूटमार, कत्ले आम की घटनायें मूली-गाजर की भांति समाज में व्याप्त है और देश रक्षा करने वाले इन आतंकवादियों को पकड़ने में नाकामयाब रहते हैं। प्रतिदिन समाचार-पत्रों में, टेलीविजन में आतंकवादियों की खौफ भरी घटनाएँ सुनने

को मिलती है। महेश गुप्त का उपन्यास 'तीसरा मोड़' में आतंकवादी की घटना का उल्लेख है जिसमें कि उन्होंने गोलियों के प्रहार से निरीह प्राणियों को मौत के घाट उतार दिया है, और उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं हो रही है जिसके तहत लेखक सत्ता लोलुप कर्णधार को उनके कर्तव्यों के प्रति संकेत कर कहते हैं - "हमारे देश के कर्णधारों को क्या अधिकार है, कुर्सी पर बैठने का जब वे हमारी सुरक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकते। अपनी सुरक्षा हेतु तो ये कर्णधार गरीब जनता का करोड़ों रुपया व्यय कर देते हैं लेकिन निरीह लोगों की सुरक्षा की कोई व्यवस्था इनके पास नहीं है। किसी की मौत पर मात्र कुछ रुपये देकर ये कर्णधार अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। वे नहीं समझ सकते कि वृद्ध पिता के एकमात्र पुत्र की हत्या से उसके मन पर क्या गुजरेगी, मासूम बच्चों की हत्या से उनके सगे-संबंधियों को कितनी पीड़ा होगी। क्या इन सबका मूल्य कुछ रुपयों को देकर ही चुकाया जा सकता है। चुकाया न जा सकता तो फिर क्यों ये सत्ता लोलुप कर्णधार इस समस्या का कोई स्थायी हल न निकालकर बेशरमी से अपनी कुर्सी पर डटे रहते हैं।" <sup>90</sup>

कुर्सी में बैठे सत्ताधारी अपना सम्पूर्ण जीवन विलासिता में डूबा हुआ है, उन्हें जनता के कष्टों पर चिंता नहीं है। उनके पीड़ाओं को समझ नहीं सके हैं। उन्हें अपने भ्रष्ट विचारों को छोड़कर जनता के प्रति विश्वसनीय सहानुभूति व्यतीत करना चाहिए। हृदयेश का उपन्यास 'दंडनायक' में रोशन सिंह समाज में उपस्थित सत्ताधारियों को देखकर सोचते हुए सन्दर्भ व्यक्त करते हैं - "आजाद देश में स्थितियाँ एकदम उससे उल्टी है। सत्ता के सिंहासन पर बैठे लोग ऐश कर रहे हैं। उन्हें अपनी चिंता है, आम जनता की नहीं। मौकापरस्तों और भ्रष्टाचारियों की बन आई है। कानून उनके लिए नहीं है, वे कानून के लिए हैं।" <sup>91</sup>

सत्ता कुर्सी प्राप्त करने के लिए अनेक चापलूसी, षडयंत्र के कार्य करते हैं। आज राजनीतिज्ञ क्षेत्र में भ्रष्टाचार, घूसखोरी, अर्थ लोलुपता, गुंडागर्दी आदि का

बोलबाला ही है। नेता सत्ता प्रारित व प्राप्ति के पश्चात् इन गतिविधियों से ही कार्यरत रहता है। रामदेव शुक्ल का उपन्यास 'गिद्धलोक' में किशन उदय से कहता है -  
*“सत्ता के केन्द्र में बैठे हुए व्यक्तियों की धिनौनी चापलूसी करना ही राजनीतिक अपना कर्तव्य मानते हैं, वे ही राजनीतिज्ञ कहलाते हैं।”*<sup>92</sup>

आज योग्य व्यक्ति भी कुर्सी पाते ही गुंडा बनने लगता है। हृदयेश का उपन्यास 'दंडनायक' में मनोहरलाल जिलाधीश पदवी के चुनाव में भाषण देते हुए कहते हैं -  
*“सत्ता की कुर्सियों पर बैठने वालों की सिर्फ चमड़ी बदली है। बोली नहीं, सोच नहीं, तौर-तरीका नहीं। उनकी मानसिकता जस की तस ही है।”*<sup>93</sup>

आज कुर्सी की महत्ता सत्ताधारियों की मुख्य बन गई है। चुनाव में चुनकर आने वाले नेता कुर्सी पाकर समाज के लोगों से चुकाये गये कर के पैसों को लूटने की तरकीबें ढूँढते हैं। नेता सत्ता में रहते वक्त ही धन, जायदाद व भारी रकम जमा कर रख लेते हैं। उन्हें जनता के कष्टों तक का आभास नहीं रहता। वे अपने सत्ता को जमाए रखने के लिए राजनीतिज्ञ बड़े-से-बड़े ठोस व घृणित कार्य करने लगते हैं। गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'फूल इमारतें और बन्दर' में मोहन्ती प्रमोद से कहता है जब वह उसके सचिव पदवी से हटाने लगते हैं तब से हटाने का कारण बताते हैं -  
*“जो चुनकर आ रहे हैं वे लोग गठबन्धन की वजह से जिन्हें मंत्री भी बनाना पड़ता है, वे बहुत भ्रूखे होते हैं और उनकी सरकार थोड़े समय के लिए टिकने वाली है... तो उतनी थोड़ी देर में ज्यादा-से ज्यादा रकम खड़ी कर लो। देखा नहीं सत्ता में आने के लिए ये क्या-क्या और कैसी बेशर्मी से करते हैं। सरकार को हर तरह दोहने को ही चतुराई मानना... मुझे तो अपनी इस पूरी व्यवस्था से सड़ाध की दुर्गन्ध आती है।”*<sup>94</sup>

इस राजनीति में सत्ता की प्राप्ति ही नेताओं का लक्ष्य बना है। इसके लिए एक दूसरे की हत्या करवाने से भी नहीं डरते। इन सत्ताधारियों कुर्सी की मोह के कारण



संसार में साम्प्रदायिक दंगे होने लगते हैं। सम्पूर्ण समाज में घृणित हत्याओं से जनता परेशान है। मनवीय मूल्य का त्रास होता जा रहा है। डॉ. अनुराधा भार्गव का उपन्यास 'सत्य की ओर' में नयना के पिता ईश्वर कुलविन्दर से कहते हैं जब संसार में कुर्सी के मोह के कारण सत्ता जातिवाद के नाम पर झगड़ा आरंभ कर देते हैं। वे कहते हैं—  
*“बेटा, यहाँ तो सुबह से ही झगड़ा-फसाद शुरू हो गया था। समझ नहीं आता इस संसार का क्या होगा? एक खुदा का बन्दा ही एक खुदा के बन्दे को मार रहा है।”*<sup>95</sup>

आज के नेता कर्तव्यों को भूलकर धन कमाने में लगे रहते हैं। समाज का लाभ और हानि में उनका ध्यान कम और अपनी कुर्सी की प्राप्ति के लाभ और हानि में ही ध्यान लगा रहता है। सत्ताधारी अपने परिवारों के आगे की पीढ़ी तक धन इकट्ठा कर रख लेते हैं। वे पदवी के समय में पूरा लाभ उठाना चाहते हैं। इस कारण कुर्सी की लोलुपता अत्यधिक मात्र में रहता है। गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'फूल, इमारतें और बन्दर' में रतनकुमार एक बड़े व्यापारी थे। उसने राजनीति क्षेत्र में अपने हैसियत बढ़ाने के लिए पिता को पार्टी का पदाधिकारी बन गया। उसको लगा कि लोग सोचेंगे कि व्यापारी राजनीति क्षेत्र में सिर्फ पैसा कमाने के लिए बैठे हुए हैं। नेता अपने तक सीमित न रहकर परिवार, रिश्तेदारों और सम्बन्धों के लिए भी लाभदायक बने रहते हैं। इस सन्दर्भ में रतनकुमार सोचता है कि - *“राजनीति में कोई नौजवान अपना कैरियर बनाना चाहता है। - इसको लेकर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती थी।”*<sup>96</sup>

सत्ताधारी को अपनी कुर्सी का मोह त्याग कर समाज का चिंतन करना चाहिए। जब समाज के हित के बारे में सोचेंगे, उनके कष्टों के निवारणार्थ कार्य करने लगेंगे। सत्ताधरियों का लक्ष्य *“राज-भोग को छोड़कर न्याय का पक्ष लेकर लड़ना, अन्याय का विरोध करना, वैयक्तिक स्वार्थों का त्याग, जन कल्याण के मार्ग में आनेवाली बाधाओं का निवारण तथा सबके हित और सुख के लिए अपने जीवन को अर्पित करना होगा।”*<sup>97</sup>

#### 4.5.7 नेताओं द्वारा नारी का शोषण

आज राजनीति में अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए मीठी वाणी का प्रयोग अत्यंत आवश्यक पड़ने लगा है। सत्ता कुर्सी पाने के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। अपने सगे-सम्बन्धियों को भी छोड़ने में तैयार हो जाते हैं। इस राजनीति क्षेत्र में नारी का शोषण किसी न किसी तरह होता है। राजनीति में नारी का उपयोग, आडम्बर वस्तु माना जाता है। कई कारणों से नारी राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों का शिकार बन जाती है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'पिंजरे के पंछी' में जगमोहन नेता के करतूतों को देखकर एक युवक दूसरे युवक से कहता है - “यही है वह नेता... जो नारी उत्थान के नाम पर लड़कियों को लूटते हैं। जल्दी चलो... आज साले को मजा चखा देना है। दूसरे युवक कहता है - ‘हाँ, चलो आज इसके शरीर से नेता का नकाब उतार लेना है। इसी नकाब के तले इसने बहुत से काले कारनामों किये हैं।”<sup>98</sup>

हमारे भारतीय पंरपराओं के अनुसार नारी को पूजते हैं। मगर आरंभ से समाज में नारी की स्थिति शोचनीय है। नारी पुरुष की आकर्षक वस्तु बनी हुई है। अपने कार्य होने के लिए स्वार्थी मनुष्य अपने पत्नी को भी अपने काम में मौजूद कर लेते हैं। गोविन्द मिश्र का उपन्यास ‘फूल, इमारते और बन्दर’- में उद्योगपति मोहित अपने दोस्त मोहन्ती व उसके पत्नी को बड़े अधिकारी रंजन से मिलवाना चाहते थे। उनका इरादा था कि अगर उसकी पत्नी को देखेंगे तो मोहन्ती का काम जल्द से जल्द बन जाएगा। यह सोचकर वह कहता है - “आज वे अपनी पत्नी को जानबूझकर नहीं लाए थे क्योंकि मोहित का परिचय कराना था, फोकस उसी पर रहना था और रंजन चाहता था कि मोहन्ती और उनकी पत्नी मोहित से खुल जाएँ, घुलमिल जाएँ - एक ही मुलाकात में लम्बा वक्त, जिन्दगी कहाँ किसको देती है।”<sup>99</sup>

राजनैतिक में नेता जनता की सहायता करने के बजाय वे ही उनको जीना हराम करते हैं। देश के स्वार्थी नेता, अधिकारियों व अन्य पुरुष नारी को नशा देने

वाले वस्तु ही समझते हैं। उनको सुरक्षा देने के बजाय उन्हें शोषित करते हैं, उन्हें नाश कर देते हैं। यादवेन्द्र शर्मा का उपन्यास 'शतरूपा' में शतरूपा अपने पारिवारिक जीवन के असंतुष्ट के कारणवश एक आश्रम में प्रवेश होती है, मगर वहाँ उसकी किसी तरह सुरक्षा नहीं मिलती। उसका जीवन ही बरबाद हो जाता है। लेखक यह प्रस्तुत वाक्य उद्धृत करते हैं - "आश्रम के अधिकार उसे ही बरा-बरा हर कार्य के लिए पूछते थे, आश्रम के अधिकारी रीति-रिवाजों, कार्यकलापों से अनभिज्ञा थे। तत्परान्ते हर कार्य में प्राथमिकता दी जाती थी?... इन सब घटनाओं के पीछे वहाँ के बदचलन अधिकारियों की पिपासाएँ ही थी। वे विभिन्न तरीकों से उसे प्रभावित करना चाहते थे।... छिः स्त्री की समग्र सत्ता और उसके अस्तित्व का आधार केवल शरीर ही है?" 100

कई कारणों से नारी पुरुषों के द्वारा शोषण का शिकार बन रही है। कभी एक नारी को तृप्त करने के लिए दूसरी नारी को वेदनायें सहनी पड़ती है। राजनीतिज्ञ नेता अपने पत्नी के अतिरिक्त में अन्य नारी को माँ, बेटी, बहन के रूप में न देखकर उपयोगी वस्तु ही समझते हैं राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'पिंजरे के पंछी' में जगमोहन नेता अपने पत्नी को शोषित कर उसके साथ घूमने वाली मोनिका के साथ अवैध संबंध रखता है। वह जनता के प्रति अपना कर्तव्य भूलकर उसके साथ घूमता है। वह मोनिका से कहता है - "तुम्हारे सहारे के बिना तो मैं एक कदम भी नहीं चल सकता मोनिका। कभी मुझे इस तरह बेसहारा मत करना कि मैं पशु हो जाऊँ।" 'तुम इस तरह की बात सोचते क्यों हो जगमोहन? तुम्हारी कौन सी इच्छा मैंने पूरी नहीं की है?' दोनों एक दूसरे की बाहों में बाहें डाले बंगले के बरामदे में पहुँच गये थे" 101

आज की नारी अपने मूल्यों को भूलकर पर-पुरुषों को आकर्षित करने में लगी रहती है। कभी पत्नी बनकर, कभी रखैल के जरिये। समाज में नेता नारी को सुरक्षा

का कवच न बनकर खुद नारी को उपयोगी वस्तु समझता है। जब देश के नेता दूसरी नारी को बहन, बेटी समझेगा तब नारी शोषित होने से बच जाएगी।

#### 4.5.8 दल-बदलू नीति

भारतीय राजनीति में दल बदल की सबसे बड़ी विसंगति और विकृति यह रही है कि दल बदल न तो किसी प्रमुख सिद्धांतों के आधार पर किया जाता है, और न ही किसी प्रबुद्ध नीति की सहमति और असहमति के आधार पर। आज के आधुनिक सन्दर्भ में दल बदल की नीति अवसरवादिता के आधार पर की जाने लगी है। यह एक संक्रामक रोग की भांति सम्पूर्ण भारत में फैलता जा रहा है।

*“भारत के चौथे आम चुनाव के पश्चात् की समस्त राजनीति दल-बदल की राजनीति बन गई। दल बदलू आज इस दल में, कल दूसरे दल में, परसों तीसरे दल में और फिर वापिस पहले दल में।”*<sup>102</sup>

सभी पार्टियों सत्ता हथियाने की चालों में व्यस्त रहती है। अवसर पड़ने पर विरोधी दल के नेता एक दूसरे से गठबंधन करने में भी नहीं हिचकते हैं। इस भ्रष्ट राजनीति में सत्ता की प्राप्ति के लिए नेतागण कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाते हैं। सत्ता प्राप्ति का लोभ उनकी रग-रग में समाया हुआ है। दल बदलू नेता कभी इस पड़ाव में कभी दूसरे पड़ाव में कदम रखते हैं। यह उनका नित्य नियम बन चुका है। वे अपने अवसरों का भरपूर फायदा उठाने से तनिक भी नहीं हिचकते। और तो और अपने आप को सदैव ऊँचा मानते हैं। वे अपने नैतिक दायित्व को भी भूल जाते हैं। गोविन्द मिश्र का उपन्यास ‘फूल, इमारतें और बन्दर’ में मोहन्ती का मंत्री अपने कर्तव्य से ज्यादा काम का मतलबी था। किसी भी जगह के मुताबिक अपने आप को बदल लेता था। उसको लेकर लेखक कहते हैं - “वह चतुर था - आपको एक खास वक्त

उस राजनीतिक पार्टी में ही होना चाहिए जो सत्ता में हो और जिसमें मंत्री पद मिले।”<sup>103</sup>

सत्ताधारी सत्ता को हासिल करने के लिए लोभवश अपने कर्तव्यों को भूल जाते हैं। वे जनता को अपने कर्तव्य करना भूल जाते हैं। वे लोभी वश में पड़कर एक दल से दूसरे दल में प्रवेश करते रहते हैं। राजनीति में प्रवेश होते ही व्यक्ति लोभी बन जाता है। उस कारणवश वह एक दल से दूसरे दल में बदलने में नहीं हिचकता। गोविन्द मिश्र का उपन्यास ‘फूल, इमारतें और बन्दर’ में मोहन्ती इन दल बदलू सत्ता के बारे में सोचता है कि - “राजनेता वचन से मीठा ही मीठा होता है सबके साथ। ‘न’ कहना तो वह जानता ही नहीं। पुराने वक्त से आज के वक्त की राजनीति में एक यह फर्क भी तो आ गया है कि पता नहीं कब किसकी पार्टी में खुद को शामिल होना पड़े।”<sup>104</sup>

अर्थात् देश में सत्ता लोभ को त्याग दे और कर्तव्यों को पहचाने तो समाज नैतिक मार्ग में प्रवेश हो सकता है। जनता भी न्याय के पक्ष वाले का ही अपना नेता चुनेगी।

#### 4.5.9 चुनावी हथकंडे

भारत में सत्ता में आने का मार्ग चुनाव है। इसलिए वोट पाने के लिए किसी भी तरीके का चाहे भाषा का, जाति का, वर्ण का, संपत्ति का या गरीबी का हो - अपनाने से वे नहीं हिचकते हैं। जान-बूझकर समाज में विषमताएँ पैदा करके, फिर उसे सुलझाने के बहाने लोगों की सम्पत्ति पाने के तंत्र में कुछ नेता लगे रहते हैं। पहले जमींदारों ने जनता को शोषित किया, उन्हें नीरस बनाया तत्पश्चात् राजनीतिक नेताओं ने गरीबों के खून को चूसना चालू कर दिया है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था नाम मात्र की रह गयी है। जनहित, जनमत की कोई अहमियत ही नहीं रही।

योगेन्द्र प्रताप सिंह का उपन्यास 'टूटते गांव बनते रिश्ते' में आम जनता के शोषण के विरुद्ध जनता की वोटों को लेकर रघु कहता है - "हम भी मनुष्य हैं और हमारे भी वोट की, बात की, राय की, समझ की, मेहनत और पुरुषार्थ की देश की, प्रदेश को, गाँव को, नगर को जरूरत है।" <sup>105</sup>

आज शिक्षितों से वोट पाना आसान कार्य नहीं है। लेकिन अशिक्षितों, गरीबों जैसे समाज के पिछड़े वर्गों को बहकाकर जनसम्मति पाने के लिए नेताओं की अपनी चालें हैं। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन' में प्रभात के दादा अपने गरीबी की हालत सोचकर चुनाव के समय आने वाले नेतागण को देखकर कहते हैं - "बेटा, यह तो कई पुश्तों से चली आ रही है, दुर्व्यवस्था यह तो पुश्तैनी बिमारी है प्रभात... वोट मांगने जब क्षेत्र के नेता आते हैं, तो अपने लम्बे-चौड़े भाषण में राई को पर्वत को राई बना डालने की बात करते हैं - वोट खत्म होते ही फिर वही ढाचे के तीन पात... फिर कौन आता है, इन गरीब खेतिहर, मजदूरों का हालचाल पूछने?" <sup>106</sup>

आज कुर्सी की प्राप्ति के लिए अनेकानेक षडयंत्र भी रच डालते हैं। हृदयेश का उपन्यास 'दंडनायक' में पं. महेन्द्रनाथ चुनाव के समय आपसी पक्ष के पार्टी को आरोप लगाते हुए भाषण देते हैं कि : "इनकी तमन्ना थी कुर्सी, इनका लक्ष्य था कुर्सी, इनकी हर कोशिश थी कुर्सी। इन तीन वर्षों में राष्ट्रीय कोष कम हो गया। देश दिवालिया बना दिया गया। किसी लोग-कल्याणकारी योजना में पैसा खर्च करने की बजाय इनकी सरकार ने कमीशन बैठाने में पैसा खर्च किया।" <sup>107</sup>

सत्ता ऊँचे पद स्थापित करने के लिए अनेकानेक प्रयत्न करते हैं। इनमें वचनबद्धता का नामोनिशान नहीं रहा है। वायदे तो अनेक करते हैं, परन्तु उनका पालन करने में वे असमर्थ हो जाते हैं। उन्होंने लोगों को अपनी ओजस्वी भाषणों से मोहित कर रखा है। उनके बड़े-बड़े अध्यक्षों से भी चापलूसी बातें करनी पड़ती है।

गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'फूल, इमारतें और बन्दर' में 'रंजन' सरकारी अधिकारी मोहन्ती अधिकारी से अध्यक्ष की पदवी के चुनाव के पहले कहते हैं - "गुस्ताखी माफ करेंगे सर। लौबीइंग करनी होगी। आज के जमाने में यह जरूरी है। किसी भी चीज के लिए। फिर यह तो बड़ा पद है जो आप हासिल करने जा रहे हैं।" <sup>108</sup>

आज देश में चरित्रहीन अशिक्षित अयोग्य व्यक्ति ही राजनीतिज्ञ नेता के चुनाव में जीतते हैं। आज हर पद की नियुक्ति में चाहे चपरासी हो, चाहे अफसर हो, सबको एक निश्चित योग्यता से निर्धारित की जाती है। इसमें शैक्षणिक योग्यता का मुख्य स्थान है। भारत में उच्च शिक्षा प्राप्त युवक तक नौकरी की खोज में घूमते हैं। लेकिन खेद की बात यह है कि राजनैतिक नेता, एम.एल.ए., एम.पी., मंत्री आदि बनने के लिए, निश्चित उम्र की पूर्ति के सिवा और किसी योग्यता की गुंजाइश नहीं है। यहाँ तक कि निरीक्षण शिक्षा मंत्री, अस्वस्थ मंत्री बन सकते हैं।

रामदेव शुक्ल का उपन्यास 'गिद्धलोक' में उदय और किशन राजनैतिक क्षेत्र में शिक्षा के महत्व के बारे में अपना मत प्रकट करते हैं। तब उदय कहता है - "यही बुनियादी सवाल है जो जन प्रतिनिधि पूरे देश की योग्यता निर्धारित करने वाले हैं, वे सबसे अधिक अयोग्य हैं। चुनाव के लिए शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं देश में साक्षरता-प्रसार और प्रौढ़ शिक्षा सतृत शिक्षा के नाम पर हर साल करोड़ों रुपये फूँके जा रहे हैं। क्यों?" <sup>109</sup>

अर्थात् आज मंत्री, नेता आदि बनने के लिए शैक्षणिक योग्यता की आवश्यकता नहीं है, जो चाहे नेता बन रहे हैं। देश में कुर्सी प्राप्ति की संख्या बढ़ती जा रही है। इस कुर्सी के मोह में अनेकानेक घृणित कार्य करने से भी नहीं चूकते। गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'फूल, इमारतें और बन्दर' में लेखक बड़े उद्योगपति पृथ्वीसिंह के बारे में कहते हैं - "पृथ्वी ने अपने प्रदेश के एक बड़े नेता को पकड़ लिया था और अब मंत्री होने के सपने देखने लगा था, हालांकि उसने न कभी चुनाव लड़ा और न लड़ने

वाला था, न ही राज्य संभा का सदस्य था... लेकिन उससे क्या आजकल तो बगैर चुनाव लड़े, बगैर एम.पी. हुए लोग पी.एम. हो जाते हैं और बने रहते हैं।”<sup>110</sup>

देश में पदवी के आधार पर योग्य व्यक्ति को मतदान देना चाहिए। मगर अयोग्य व्यक्ति कुर्सी की आड़ में चुनाव में खड़े होते हैं। आज अयोग्य व्यक्ति का बेटा, बेटी चुनाव में खड़े हो जाते हैं। योग्यता के आधार पर व्यक्तियों को अपने योग्यता के बल पर हर कोई पदवी प्राप्त नहीं होती। ‘यातना घर’ उपन्यास में हजारी की बुआ के तीनों लड़कों की बड़ी आसानी से पुलिस में काम मिल जाता है क्योंकि उसके पिता बनवारी डी.एस.पी. हैं। तब हजारी कहता है - “...ये अधिकारी लोग... ? सच तो यह है कि आज भी मंत्री का बेटा मंत्री, आई.ए.एस. का बेटा आई.ए. एस... इंजीनियर का बेटा इंजीनियर ही होता है।”<sup>111</sup>

इसी प्रकार महेश गुप्त का उपन्यास ‘तीसरा मोड़’ में एक मंत्री का बेटा विजय देवव्रत के साथ बुरा व्यवहार करता है। उसके ऊपर पैसों चुराने का झूठा आरोप लगाता है। उसकी माँ तक को जलील करता है। फिर भी सजा मिलती है बेकसूर देवव्रत को। इन सबको देवव्रत सत्ताधारियों के प्रति अपना मत प्रकट करता है - “आज के युग में भौतिकवादी युग में ऐसा लगता है कि समस्त कायदे, कानून, नियम और केवल निर्बल और निर्धन लोगों के लिए ही बनाये जाते हैं। यदि ऐसा न होता तो रतनपुर के उस छोटे से शहर में मंत्रीपुत्र की बदतमीजी की सजा देवव्रत को नहीं भुगतनी पड़ती।”<sup>112</sup>

चुनावों में अगर व्यक्ति समाज का सेवक बन जाए, न्यायपूर्वक आचरण करने लगे तो स्वच्छ न्याय प्रणाली के पदार्पण के साथ-साथ भ्रष्टाचार, घूसखोरी, अर्थ लोलुपता आदि का उन्मूलन कर श्रेष्ठ मूल्यव्युति समाज स्थापित कर सकते हैं। समाज में सत्ता के पद पर आसीन होने के लिए योग्य शिक्षित होना चाहिए। उसे कुर्सी से मोह त्याग देना चाहिए। उन्हें अपना ध्यान पूर्ण रूप से अपनी जनता के कष्टों का



निवारण के लिए कार्यरत रहना चाहिए। अगर सत्ता क्रिमिनल, रहेंगे तो समाज के सभी लोग अन्याय के रास्तों में चलने लगेंगे।

गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'फूल, इमारतें और बन्दर' में मोहन्ती प्रमोद से कहते हैं, जब मोहन्ती अध्यक्ष पदवी में था, उसे अन्याय होते हुए सहा नहीं जाता इसलिए अपना मत प्रकट करते हैं। - *“चुनाव लड़ने के लिए शिक्षा के एक स्तर होने का प्रावधान होना चाहिए, व्यक्ति का रिकार्ड क्रिमिनल न हो... ऐसे प्रावधानों को वे लोग आने नहीं देंगे। उनका स्तर तो और गिरते ही चले जाना है।”*<sup>113</sup>

राजनैतिक क्षेत्र में सत्ता समाज के लोगों को अपना कर्तव्य निभाने से ज्यादा अनेक बड़े-बड़े उद्योगपतियों, अधिकारियों की मदद करते हैं, क्योंकि वे ही चुनावों के समय अपने लाभ के खातिर चुनाव में लड़ने वाले सत्ता की मदद करते हैं। इस कारण सामान्य जनता को मिलने वाले प्रावधान नहीं मिल पाते। गोविन्द मिश्र का उपन्यास “फूल, इमारतें और बन्दर” में नवीनचन्द्र उद्योगपति के पिता चुनाव में लड़ने वाले व्यक्तियों की मदद करते हैं। लेखक कहते हैं - *“नवीन के पिता चुनावों में भी राजनेताओं की दिल खोल मदद करो, जिसकी वजह से उनकी कम्पनी के हर पार्टी के बड़े नेताओं से सम्बन्ध थे। कोई सरकार आए... वह उनकी थी।”*<sup>114</sup>

चुनाव में लड़ने वाले कोई भी पार्टी हो मगर उसका शासक को न्यायपूर्वक रहना चाहिए। स्वच्छ न्यायपूर्वक शासन रहना चाहिए। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'महासमर-अधिकार' में भीष्म पांडुओं पुत्रों को न्याय का मार्गदर्शन करवाते हुए कहते हैं - *“शासक का धर्म, प्रजा का न्यायपूर्वक पालन करना है।”*<sup>115</sup>

## सन्दर्भ सूची

1. अपनी सलीबे, नमिता सिंह, पृ: 153
2. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, पृ: 71
3. फूल, इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 277.
4. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 76
5. महासमर (धर्म), नरेन्द्र कोहली, पृ: 135
6. आज के परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य: डॉ./ हेतु भरद्वाज पररिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य - पृ: 14
7. दंड नायक, हृदयेश, पृ: 113
8. महासमर - अंतराल, नरेन्द्र कोहली, पृ: 131-136
9. दंडनाक, हृदयेश, पृ: 106
10. विजय, रासबिहारी बेहेरा, पृ: 14
11. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 41
12. फूल इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र पृ: 10
13. अभिज्ञान, नरेन्द्र कोहली, पृ:
14. फूल इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र पृ: 83
15. मासमर (धर्म), नरेन्द्र कोहली पृ: 45
16. फूल इमारते और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 9
17. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 119
18. दीक्षातं, सूर्यबाला, पृ: 54
19. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल पृ: 76
20. अपनी सलीबे, नमिता सिंह, पृ: 150
21. दिनेश चन्द्र भारद्वाज - भारतीय शिक्षा की आधुनिक समस्याएँ, पृ: 123

22. अभिज्ञान, नरेन्द्र कोहली, पृ: 51
23. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल, पृ: 126
24. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल, पृ: 69
25. अर्थांतर, चन्द्रकांता, पृ: 137
26. विजयी, रासबिहारी बेहरा, पृ: 36
27. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल, पृ: 20
28. दीक्षांत, सूर्यबाला, पृ: 69
29. दीक्षांत, सूर्यबाला, पृ: 78
30. दीक्षांत, सूर्यबाला, पृ: 65
31. महासमर - अभिज्ञान, नरेन्द्र कोहली पृ: 157
32. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल, पृ: 33
33. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल, पृ: 10
34. रुको द्रौपदी, बलभद्र तिवारी, पृ: 48, 49
35. रुको द्रौपदी, बलभद्र तिवारी, पृ: 49
36. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल, पृ: 70
37. यातना घर, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ: 12-13
38. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: ५२
39. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 20
40. समय सरगम, कृष्ण सोबती, पृ: 45
41. यातना घर, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 13
42. स.ग्र. आज के परिवेश की चुनौतियाँ औ साहित्य : डॉ. हेतु भारद्वाज  
परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य और साहित्य - पृ: 14 (P.S. 1984)
43. फूल इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 123

44. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर पृ: 31
45. यातना घर, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ: 10
46. यातना घर, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ: 12
47. दंडनायक, हृदयेश, चन्द्र पृ: 65
48. महासमर-कर्म, नरेन्द्र कोहली, पृ: 104
49. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 53-69
50. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल, पृ: 69
51. बात अड़तालीस घंटों, जैन कुमार, पृ: 68
52. फूल इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 105
53. टूटते गाँव बनते रिश्ते, योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृ: 83
54. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 55
55. फूल इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 155
56. अक्षरों के आगे मास्टरजी, भैरव प्रसाद गुप्त, पृ: 197-198
57. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 43
58. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 41
59. दीक्षांत, सूर्यबाला, पृ: 85
60. सवालियों के बीच, बनाफर चन्द्र, पृ: 78
61. फूल इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 266
62. अक्षरों के आगे मास्टर जी, भैरव प्रसाद गुप्त, पृ: 180
63. फूल इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 66
64. फूल इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 125
65. सवालियों के बीच, बनाफर चन्द्र पृ: 78
66. वरुण के बेटे, नागार्जुन पृ: 114

67. फूल इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 10-11
68. दंडनायक, हृदयेश पृ: 65
69. सवाल्लों के बीच, बनाफर चन्द्र पृ: 123
70. जर्जर सेतु, देवरा पथिक, पृ: 16
71. गौरी - राजेन्द्र शर्मा, पृ: 27
72. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 94
73. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 42
74. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 45
75. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 85
76. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 45
77. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 10
78. यातना घर, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ: 19
79. गौरी, राजेन्द्र शर्मा पृ: 46
80. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 35
81. अक्षरों से आगे मास्टर जी, भैरव प्रसाद गुप्त, पृ: 247
82. फूल इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 92
83. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 113
84. चुटकी भर चन्दन, राजदेव प्रियंवर पृ: 44
85. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 74
86. फूल इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 239
87. विजयी, रास बिहारी बेहरा, पृ: 52
88. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 86
89. महासमर-प्रच्छन्न, नरेन्द्र कोहली, पृ: 108

90. तीसरा मोड़, महेश गुप्त, पृ: 36, 37
91. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 204
92. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल, पृ: 69
93. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 76
94. फूल इमारते और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 259
95. सत्य की ओर, डॉ. अनुराधा भार्गव, पृ: 40
96. फूल इमारते और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 102
97. समग्र ग्रन्थ - दीक्षा, नरेन्द्र कोहली, पृ: 39
98. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 82
99. फूल इमारते और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 29
100. शतरूपा, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ: 49
101. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 122
102. स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी निबंध - साहित्य में व्यंग्य, उषा रानी, पृ: 187
103. फूल इमारते और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 163
104. फूल इमारते और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 46
105. टूटते गाँव बनते रिश्ते, योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृ: 53
106. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डये, पृ: 17
107. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 77
108. फूल इमारते और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 25
109. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल, पृ: 68
110. फूल इमारते और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 33
111. यातना घर, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ: 14
112. तीसरा मोड़, महेश गुप्त, पृ: 36, 42

113. फूल इमारते और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 260
114. फूल इमारते और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 53
115. महासमर - अधिकार, नरेन्द्र कोहली, पृ: 39

# **पंचम अध्याय**

**बीसवीं सदी के अंतिम दशक के  
उपन्यासों में आर्थिक मूल्य**



## पंचम अध्याय

### बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में आर्थिक मूल्य

#### 5.0 आर्थिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यों की स्थिति

आर्थिक क्षेत्र का सम्बन्ध भौतिक जगत से है। आज जीवन का केन्द्र अर्थ ही है। व्यक्ति के सुख-दुःख अर्थतंत्र से ही निर्धारित करता है। कश्मीरी लाल का उपन्यास 'खूँटे' का सत्य उसे मालिक नत्थू की आर्थिक स्थिति को देखकर कहता है - "इस धरती पर पैसा ही सब कुछ है। जिसके पास पैसा नहीं तो रंडी भी नहीं फटकने देती।" <sup>1</sup>

अर्थ या धन अपने आप में कुछ दोष नहीं रखता है। जब इसका उचित उपयोग होता है तब समाज के लिए हितकारी बनता है। अर्थ मनुष्य को मालिक का दर्जा दिलवाता है। वह मानवीय मूल्यों को भूलकर मालिक के रूप में ही दूसरों तक अधिकार चलाने का निरन्तर प्रयत्न करता है। "अर्थ खाद के समान है, जब तक मनुष्य उसे चारों ओर वितरित नहीं करता तब तक किसी को उससे कोई फायदा नहीं मिलता है।" <sup>2</sup>

आज मशीनीकरण और औद्योगीकरण ने मनुष्य को अर्थकेन्द्रित बना दिया है। जीवन-मूल्यों के बदलाव में अर्थ की स्थिति प्रमुख हो गई है। जो भी अपने आप से न किया जा सके वह धन के द्वारा किया जा सकता है। मूल्य खरीदे और बेचे जा सकते हैं।

डॉ. देवराज पथिक का उपन्यास 'जर्जर सेतु' लेखक समाज में उपस्थित गाँव में रहने वाले पूँजीपति को देखकर कहते हैं - "संसार में स्वार्थी भ्रष्टाचारी और

अनैतिक व्यापार में जुटे लोगों का बाहुल्य होते हुए भी देवता प्रकृति के मनुष्यों की भी कमी नहीं है।”<sup>3</sup>

धनी व्यक्ति निर्धन से अधिक सम्मान पाता है। चाहे निर्धन व्यक्ति कितना ही उदार हो, सत्यनिष्ठ हो, क्योंकि धनी के पास धन और लालच से स्वार्थ पनपता है और स्वार्थ से झूठ बोलने की प्रवृत्ति पनपती है। जो मूल्यों की धारणाओं से विपरीत बन जाती है। आज आर्थिक मूल्यों की विषमता एवं विघटन के कारणवश सामाजिक एवं पारिवारिक मूल्य भी बदल रहे हैं। सभी अर्थ से मोहित होने के कारण मनुष्य-मनुष्य के प्रति शिष्टाचार, सदाचार आदि का व्यवहार सीमित हो गया। आज आर्थिक मूल्यों में परिवर्तन के चलते व्यक्ति अपना ही अस्तित्व खो बैठा है। मधु धवन का उपन्यास ‘आकांक्षा’ में मृणालिनी आज के पुरुष वर्ग के बारे में सोचती हुई कहती है - “धन की खातिर किसी की हवस बनना भी तो समस्या का समाधान नहीं है।”

4

आज आधुनिक वातावरण में व्यक्ति अपनी पहचान बनाने के लिए आतुर रहता है। इस अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उसे अर्थ की जरूरत अधिक मात्रा में रहती है। इस अर्थ की भागदौड़ में अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहिए। अर्थ को पाने की लालसा हमारी बाह्य मूल्य को तो विकसित करती है परन्तु आन्तरिक मूल्य में पनप नहीं पाती। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास ‘महसमर (कर्म)’ में मुनि शलिहोत्र आश्रमवासियों को अर्थ की महत्ता का जिक्र करते हुए कहते हैं - “अधर्म से धन अर्जित कर व्यक्ति और समाज समृद्ध तो हो जाता है किन्तु उसका विकास कभी नहीं होता।”<sup>5</sup> समाज को समृद्ध करने के लिए उचित परिश्रम की आवश्यकता है, अपने नैतिक मूल्यों को नहीं छोड़ना चाहिए।

समाज में मनुष्य का आदर्शपरक जीवन जीना दुष्कर बन गया है। उसे यथार्थपरक बनना पड़ता है। हमारे देश में दरिद्रता के कारण भी मनुष्य अमानवीय

कृत्य एवं अनैतिक कर्म करने को बाध्य हो गया है। दरिद्रता के कारण आदमी को दूसरे अमीर व्यक्ति के सामने झुकना पड़ता है। उनका ईमान बेच कर भी काम करना पड़ता है। आदमी पेट भरने के लिए किसी भी वस्तु को बेचने को बाध्य हो जाता है।

डॉ. कश्मीरी लाल का उपन्यास 'खूँटे' में नत्थू की बेटी सत्तु को पुराने कपड़े देती है। उसकी पत्नी चोरी का माल सोचकर उसे तुरन्त चोरी का इल्जाम लगाती है। सत्तू कहता है - “पता नहीं इन पैसे वालों को किस बात का घमण्ड हो जाता है... क्या आँख में चला जाता है... क्या दिमाग को हो जाता है... कैसा मन हो जाता है कि हर गरीब-गुरबा पर तोहमत लगा देते हैं - आसानी से। जैसे गरीब की इज्जत होती ही न हो... जैसे गरीब की छाती में दिल न होकर कोई बेश दुजी फिट हो।”<sup>6</sup>

समाज में युगगत बदलते जीवन मूल्यों के कारण व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है। अर्थ संग्रह को वरीयता मिलने से मनुष्य परम्परागत मूल्यों को ठुकराकर अधिक से अधिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त करना चाहता है। नगरों और महानगरों में कुकृत्य-सम्बन्धी घटनाएँ दिन-रात हो रही हैं।

डॉ. मदनमोहन तरुण ने 'स्वाधीनोत्तर हिन्दी साहित्य और भारत पुस्तक में लिखा है कि “औद्योगिक सभ्यता ने मनुष्य को सर्वथा यांत्रिक बना दिया है। घड़ी की सुई पर घूमता हुआ आज का कार्यरत मनुष्य अपने समस्त संवेगों का महत्व खोकर यंत्र का एक पुर्जा-सा रह गया है। मनुष्य के भीतर श्रेष्ठ मूल्य मर गया हैं और सबके ऊपर भौतिक सुख-साधनों और अर्थ की स्थापना हो गई है।”<sup>7</sup>

शिक्षित युवा पीढ़ी बेकारी के कारण हताश हो गयी है। समाज में अर्थ ही सभी कठिनाइयों का कारण है। अर्थ का सम्बन्ध समाज से और समाज का सम्बन्ध अर्थ से, एक दूसरे के पूरक हैं।

## 5.1 विवाह मूल्यों में अर्थ का महत्व

परिवार वैवाहिक बंधनों पर आधारित है। पहले धन-धान्य स्वेच्छा से कन्या के विवाह में किया जाता है। कभी-कभी लड़की वाले आर्थिक विषमता के कारण विवाह में दहेज देने में असमर्थ हो जाते हैं। आर्थिक मूल्यों के विघटन के कारण लड़के वाले लड़के के जन्म से ही उसके भविष्य की योजना बनाने लगते हैं। अब दहेज की खातिर माँ बेटी की दूसरी शादी करना चाहती है। मधु धवन का उपन्यास 'मैं सृष्टि की आत्मा हूँ' में नेहा अपने माँ से पूछती है कि वास्तविक सुख क्या धन से मिल सकेगा तो माँ कहती है - "पैसा होगा तो सभी सुख मिल जाते हैं... सुना नहीं बाप बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपया।" <sup>8</sup> अर्थात् अर्थ ही समाज को चलाता है।

इस वैवाहिक व्यवस्था की विकृतियाँ उभर कर सामने आईं। लड़की के पिता पैसों की कमी के कारण लड़की को उसकी अनुमति के बिना किसी भी युवक के साथ अपनी लड़की का विवाह कर देते हैं। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास 'संयुक्ताक्षर' की नायिका श्यामा सोचती है - "जब युवा अवस्था को धारण किया तो पिता ने बिना उससे अनुमति लिए उसकी शादी एक अर्धे उमर के मर्द से कर दी। उसकी दौलत देखकर, उसकी खेती-बाड़ी देखकर और उसके घर-मकान आलीशान देखकर।" <sup>9</sup>

पैसों के अभाव के कारण लड़की की शादी नरक बन जाती है। जहाँ पैसों के साथ लड़की का ब्याह किया जाता है वहाँ खुशी सम्पन्न से रहती हैं। अनमेल विवाह करनेवाली नारी धीरे-धीरे परम्परागत सामाजिक बंधनों को तोड़कर उन्मुक्त रहना चाहती है। वह विवाह की दहलीज पार करते ही अपने खिलखिलाते संसार का गला घोट लेती है। अगर वे नहीं झुके तो तलाक देकर पुनर्विवाह कर लेती हैं। वह विवाह के बाद ऐशो आराम से जीना चाहती हैं। डॉ. मधु धवन का उपन्यास 'मैं सृष्टि की आत्मा हूँ' में शान्ति तुषार का जीवन अपने उच्छंखल व्यवहार के कारण जीवन बर्बाद कर लेती है। शान्ति ने शेखर से कहा - "मैंने तुमसे विवाह इसलिए किया था कि मैं

हर तरह के ऐशों आराम का जीवन जी सकूँ। रोज फाइव-स्टार में जा सकूँ... आए दिन पार्टियों में नए साज-सज्जा के वस्त्र आभूषण पहन सकूँ... माँ के घर में क्या मिलता है।”<sup>10</sup>

विवाह पति-पत्नी के आपसी समझौते से जीना ही नारी-पुरुष का सौन्दर्य बनता है। अनुज का उपन्यास ‘टूटे सपने’ में चित्रित है। - राजेश-रजनी पति-पत्नी हैं। राजेश उसके पत्नी के पुराने प्रेमी कमल के पास वापस जाने के लिए कहता है लेकिन वह नहीं जाती। रजनी वैवाहिक जीवन की अटूटता का परिचय देता है - “विवाह बन्धन अटूट है, जिस सामाजिक परंपरा पर इसकी नींव पड़ी है, वह अत्यन्त ठोस है। यह बालू की भीत या शीशे की दीवार नहीं है।”<sup>11</sup>

स्त्री अघेड़ उम्र व्यक्ति से शादी करे, या उसके विपरीत सोच विचार के मर्द से विवाह करे उसका ही तन-मन से अपना पति मानकर सर्वस्व जीवन न्यौछावर करना चाहिए। उसकी चाह कम होनी चाहिए। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास ‘संयुक्ताक्षर’ में श्यामा वृद्ध पति के साथ रहकर समझौता नहीं कर पाती। नारी का त्यागमय संस्कारों को पूरी तरह निभा नहीं पाती। उसका मन झकझोरता है। वह सोचती है “अगर बाबू के पास पैसा होता तो आज मैं शम्भू की दुल्हन न सही किसी अन्य नौजवान इन्सान की दुल्हन तो जरूर बनी होती।”<sup>12</sup>

शिक्षा, संस्कार, सौकुमार्यता, शालीनता आदि मूल्य अप्रधान होकर स्त्री-पुरुष सम्बन्ध व्यापार सम्बन्ध के रूप में परिणत हो जाता है। जिस के पास अधिक रुपये हैं। वो किसी न किसी प्रकार लड़की की शादी करवा देता है। हमारी पुरानी धारणाओं के अनुसार “विवाह के द्वारा पुरुष और स्त्री आपस में प्रेम सूत्र में बंधते हैं जिस से दोनों बराबर के स्तर पर पहुँच जाते हैं।”<sup>13</sup> आज स्त्री पुरुष के आपसी सम्बन्ध धन दौलत पर आधारित हैं। प्रेम से बड़ा मालिक रुपये, गहने आदि बन जाते हैं तो

अक्सर शादी भंग हो जाती है। वैवाहिक सस्था में बंधे पति-पत्नी धन सम्पादन की यात्रा में जाने के कारण दोनों बुरे रास्तों में भटक जाते हैं।

आधुनिक युग में स्त्री और पुरुष वैवाहिक बंधन को पारम्परिक एवं कृत्रिम मानने लगे हैं। परिवार के सदस्य स्वच्छंदता, स्वार्थ, अहम आदि के कारण एक दूसरे अपने को आत्मसीमित कर लेते हैं। परिवार के आपसी मूल्य, रिश्तों की एहमियत एक दूसरे के प्रति स्नेह, अपनापन आदि से कुछ विलुप्त-सा हो गया है। डॉ. मधु धवन का उपन्यास 'जुर्माना' में लेखिका कहती है कि "शुचि की समझ में एक बात नहीं आ रही थी सब लगभग अपने ही थे फिर एक दूसरे की आलोचना क्यों कर रहे हैं? वे अपने को परिवार का अंग क्यों नहीं मानते।" <sup>14</sup> उच्चवर्गीय परिवारों में लड़की ब्याही जाने के बाद अगर उसका ससुराल आर्थिक दृष्टि से मायके जितना समृद्ध न हो तो भी उसकी इज्जत नहीं की जाती। परिवार वाले पारिवारिक मूल्यों को विस्मृत कर उसको अपमानित करते हैं।

इसी उपन्यास में शुचि अपने माता-पिता के व्यवहार को देखकर सोचने लगी - "जिस कन्या को माता-पिता पाल पोस कर बड़ा करते हैं... उसके लिए वर ढूंढते हैं। फिर वर पक्ष वालों के पास करोड़ों की जायदाद न हो तो वे छोटा क्यों समझने लगते हैं...." <sup>15</sup>

परिवार में नारी का ही दृढ़ संकल्प होना चाहिए। नारी को धर्मसंकट स्थिति में वह अपने आप को आत्म-विश्लेषण करना चाहिए। वैवाहिक जीवन में पैसे का महत्व रहता है। इस जमाने में स्त्री-पुरुष का आत्मिक प्रेम नहीं रहता। स्त्री-पुरुष के धन को देखकर प्रेम या विवाह होता है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'पिंजरे के पंछी' में इन्द्रसेन शकुनि से कहता है जब उसका लड़का कृष्णकुमार हेमन्त की बहन सीमा से प्यार करता है तब इन्द्रसेन कहता है - "अरे शकुनि। यह पैसों का युग है। इस युग में लैला-मजनूँ और शीरी-फरहाद का नाटक नहीं चलने वाला है। दीनता का दानव

जब झटका मारेगा न... तो मुहब्बत का सारा नशा हिरण हो जायेगा।”<sup>16</sup> इसी उपन्यास में इन्द्रसेन अपने बेटे कृष्णकुमार से कहता है कि इस संसार में पैसा ही सब कुछ है। लड़की से आदर्श प्रेम रखना झूठ व ढकोसला होता है। इन्सान पैसे के लिए अनेक कुकृत्य कार्य करता है। वो पैसों की महत्व को समझाता है।

वैवाहिक बंधन के मूल्य के विघटन से अनभिज्ञ युवा वर्ग दिशाहीन होकर भटक जाता है और इसका दोष एकांकी परिवारों में युवक-युवतियों की व्यस्तता ही है। डॉ. मधु धवन का उपन्यास ‘करवट लेता वक्त’ में अविनाश अपने जीवन की एकाकीपन को सोचते हुए कहता है कि - “कभी मैं परिस्थितियों को देखकर सोचता हूँ कि विवाह परमात्मा द्वारा गढ़ा हुआ पूर्व निश्चित संयोग है। कभी सोचता हूँ यह एक लाटरी है, किस्मत पर निर्भर है... यह मनुष्य द्वारा रचा जाता है... प्रश्न पर प्रश्न उभरते हैं, लेकिन कोई समाधान नहीं।”<sup>17</sup>

अर्थात् वैवाहिक बंधन स्त्री-पुरुष प्रेमपूर्वक आपसी समझौते पर निर्भर है। तभी संयुक्त परिवार या एकाकी परिवार के पति-पत्नी सुखी एवं शांतिमय रह सकते हैं।

## 5.2 पारिवारिक मूल्यों में अर्थ का महत्व

भारतीय समाज में परिवार महत्वपूर्ण कड़ी है। आज मनुष्य अपने कर्तव्यों से पलायन करता हुआ नजर आ रहा है। मनुष्य अर्थ के पीछे अपना मान-ईमान, नाते-रिश्ते सभी को ठुकरा दिया है। समष्टि परिवार हो या व्यक्ति परिवार दोनों में अर्थ की महत्ता ही प्रमुख भूमिका निभाती है। अर्थ के नाते ने पारिवारिक संबंधों को तोड़-मरोड़ कर रख दिया है। इन पारिवारिक संबंधों को लेकर नरेन्द्र कोहली जी उनके उपन्यास ‘तोड़ो कारा तोड़ो’ में सुरेन्द्र राम से आजकल के पारिवारिक संबंधों में चले आ रहे अर्थ की महत्ता को बताते हुए कहते हैं - “संबंधों में भी रुपया-पैसा

बहुत महत्वपूर्ण है भाई। कहते हैं न कि धनी संबंधी, निर्धन संबंधी को पहचानता ही नहीं।”<sup>18</sup>

अर्थ केन्द्रित दृष्टि भी परिवार को अलग करने में योगदान देता है। परिवार में पति-पत्नी औद्योगिकरण व मशीनीकरण के कारण उनकी व्यक्तिगत चाहतों को पूर्ति नहीं कर पाते। वे बच्चों के भविष्य पर पूरी तरह ध्यान नहीं दे पाते। इस कारण उनकी कमाई का खर्चा उनके पूर्ति में हो जाता है। ब्रजनारायण सिंह का उपन्यास ‘समर्पिता’ में नायिका समर्पिता के माता उसके पिता से कहती है - “परिवार में रोटी-दाल ही पूरी नहीं होती, शादी-ब्याह के लिए दहेज कहाँ से जुटाया जाए। मैं तो इसीलिए तुमसे कहती हूँ, कुछ और काम करो और किसी सेठ से कह-सुनकर समर्पिता को भी कहीं नौकरी दिलवा दो।”

पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के अतिरिक्त अन्य सदस्य भी पैसों के लालच में लार टपकाते रहते हैं जिससे जीवन में कटुता आ जाती है। पारिवारिक रिश्तों में दरार आ जाती है और पति-पत्नी यंत्रचालित से दर्द भरी जिन्दगी गुजारने पर मजबूर हो जाते हैं। मधु धवन का उपन्यास ‘आकांक्षा’ की शीतल में मृणालिनी से उसके ससुराल वालों के बारे में पूछा तो बोली - “मत लीजिए... उनका नाम... उसकी क्रूर धिनौनी योजनायें... परिवार वालों की व्यापारिक सौदेबाजी से मुझे सख्त नफरत है।”<sup>20</sup>

आज गरीबी से ग्रस्त लोग व महंगाई के जमाने में उसके निवारणार्थ संतानोत्पत्ति सीमित रखने के पक्ष पाती हैं। पुष्पा हीरालाल का उपन्यास ‘रिश्तों के बीच’ में वीना की अपनी कोई संतान नहीं है, विजय उसका सौतेला बेटा है। पर वीना ने पुरानी परम्परायें, अंध विश्वास, झूठी रुढ़ियों का खण्डन कर अपना स्तर ऊँचा उठाया है। वह निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति देखते हुए सीमित परिवार की पक्ष पाती है। तभी वह कह रही है - “माँ जी आप कैसी बातें कर रही हैं, इकलौते बच्चे का



लालन-पोषण ठीक से होता है। इस महंगाई में ज्यादा बच्चे ठीक नहीं होते। हमारे लिये इकलौता विजय ही ठीक है।”<sup>21</sup>

आज हर कोई धन की अहमियत को भाँप चुका है और यह सर्वविदित तथ्य बन गया है कि धन है तो हर कार्य सुगमता से कराया जा सकता है। अपनी मनोकामना की पूर्ति धन के द्वारा पूर्ण की जा सकती है। कमल कुमार का उपन्यास ‘हेमबरगर’ में चाची रवीन्द्र का पासपोर्ट वीजा बनवाने जाती है। वीजा बनवाने के लिए उसके पास पर्याप्त समय नहीं है, लेकिन यहाँ पर नारी ने भी अर्थ की महत्ता को समझा है जिसके तहत वह स्वावलम्बी होकर काम करती है। इसी कारण चाची रवीन्द्र को धन की महत्ता से अवगत करा रही है - “तू देखी चल रत्ती। यहाँ कोई काम कराना मुश्किल नहीं है। बस सही इन्सान मिलना चाहिए। बाकी पैसा और पहचान सब कर देता है।”<sup>22</sup> आज के युग में दिखावा बहुत अधिक है। औद्योगिकरण एवं मशीनीकरण ने जहाँ जीवन को सुगम व सुविधापूर्ण बनाया है वहीं मन में लालसा की प्रचण्ड आग जलाकर उसके जीवन को अभिशप्त भी कर दिया है।

### 5.2.1 दाम्पत्य मूल्यों में अर्थ का महत्व

दाम्पत्य में स्त्री-पुरुष के संबंध की आधारशिला प्रेम ही होता है। इन संबंधों में तन और धन का अधिक महत्व देने लगे हैं। आज बदलते युग में पुरुषवर्ग बैठे-बैठे पत्नी के लाये दहेज से जीवन गुजारना चाहता है। आर्थिक स्थिति को बढ़ाने के लिए पत्नी को नौकरी के लिए भेजता है। डॉ. मधु धवन का उपन्यास ‘आकांक्षा’ में रूपा अपनी राम कहानी शीतल को सुनाती है। - “पलक झपकते ही मैं वैवाहिक सूत्र में बांध दी गई... पर पति के लिए जहरीली बन गई...क्योंकि अपेक्षित धनराशि रत्ती भर भी नहीं थी... पहले दिन ही कटोक्तियाँ मारने लगा।”<sup>23</sup>

पति-पत्नी के मानवीय रिश्तों में एक प्रकार की निर्जीविता उभरने लगती है। जीवन मानो अर्थहीन हो गया है। इसी रूपा का पति पैसे के भूख के कारण उस पर अत्याचार करता है। उनकी भावनाओं को केवल उनसे मिलने वाले दहेज रूपी पैसों में तौलते हैं। इस दहेज के कारण पति-पत्नी को झूठे इल्जाम, बुरे लांछन लगाना उसे चरित्रहीन साबित कराता है। यादवेन्द्र शर्मा का उपन्यास 'शतरूपा' में शतरूपा का पति मंगल उसके माँ के कहने पर पत्नी को दहेज के कारण चरित्रहीन समझने लगता है। शतरूपा यह जानकर भी कुछ कर नहीं पाती। वह उसकी सहेली बन्नों से कहती है -

*"बन्नो, मेरा पति मुझे चरित्रहीन समझता है। उसको यह भ्रांति है कि मेरा तुम्हारे पति से अनैतिक संबंध है।"* <sup>24</sup>

मर्द अपनी मर्दानगी कभी नहीं छोड़ता। ऐशो आराम से जीवन बिताने के लिए पत्नी का जीवन बर्बाद करता है। यह धन जीवन में चाहे खरीद सकता है, मगर सुख-शांति खरीदना असंभव है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'तलाक दर तलाक' में नमिता अपने पति को देखकर कहती है -

*"मन का सुख-संतोष कहाँ से पाओगे! यही तो पैसों से नहीं खरीदा जा सकता। और तुम कभी भी जीवन में सुख-संतोष नहीं खरीद सकते।"* <sup>25</sup>

देवराज पथिक का उपन्यास 'जर्जर सेतु' में पवन और निशा के बीच अर्थ के कारण सामाजस्य न होने के कारण दोनों अलग हो जाते हैं। पवन आर्थिक तंगी के कारण मुकदमा हारने लगता है। वह कमाने लायक नहीं था, जहाँ उसे सुख-दुःख में साथ देना चाहिए था वहाँ अपने पति को अकेला छोड़कर अपने मायके चली जाती है। वह नहीं चाहती अपने माँ-बाप के लिए उसका पति बोझ बन जाये। वह बड़ी चतुराई से अपने पति को उसके भाई दीपक के पास भेजकर कहलवा देती है कि

*"पवन पागल हो गया है। तभी पवन सोचता है और मन ही मन कहता है - 'मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मुकद्दमेबाजी उसे तबाह कर देगी और उस हालत में"*

पत्नी भी साथ छोड़ देगी किन्तु संसार बड़ा विचित्र है। चार पैसे आते ही व्यक्ति मदमाने लगता है। खून के रिश्तों को भी मानने से इन्कार करता है।”<sup>26</sup>

यह अर्थ मनुष्य को मानवीयता से राक्षस बना देता है। अर्थ के लिए हजारों साल के रिश्तों को ही छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है। ममता कालिया का उपन्यास ‘दौड़’ में पवन अपने पापा से कहता है - “पापा आप भारी भरकम शब्दों से हमारा रिश्ता बोझिल बना रहे हैं। मैं अपना कैरियर, अपनी आजादी कभी नहीं छोड़ूंगा। स्टैला चाहे तो अपना बिजनेस चेन्ज ले चलो।”<sup>27</sup>

पति अपने स्टेटस को दिखाने के लिए या पत्नी की सुन्दरता पर दूसरों का आकर्षण अपनी और खींचने की कोशिश करता है। जहाँ पति-पत्नी का रिश्ता सिर्फ चार-दिवारी में न रहकर पत्नी की सुन्दरता को समाज के दूसरे पुरुष को अर्थ के खातिर दिखाना चाहता है। चंद्रकांता का उपन्यास ‘अंतिम साक्ष्य’ में विजय अपनी पत्नी कम्मों को उनके आर्थिक स्थिति का विज्ञापित करने के लिए रंग-बिरंगी साड़ी लाकर उसे पार्टी पर जबरदस्ती ले जाता है। कम्मो सोचती है - “कम्मो अब सफेद साड़ी नहीं पहनती, अक्सर वार्डरोब में चटख रंग-खोलती-टटोलती है। अब उसे भोली और प्यारी नहीं, बिजनेसमैन की ग्लैमरस वाइफ लगना है।”<sup>28</sup>

पति-पत्नी के मानसिक तनावों को समझता नहीं। वह उसे भोग-वस्तु ही समझता है। पति-पत्नी का दाम्पत्य हवा के झोंके के साथ नहीं है। वह इतना मजबूत बनके रहना है, मगर बदलते परिवेश में पुरुष-नारी रस्सी के धागे के समान समझता है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास ‘शतरूपा’ में शतरूपा अपने पति के अत्याचार को सोचते हुए कहती है - “अर्थहीन आक्षेपों का कोई महत्व नहीं होता है। वे जलहीन बादलों की तरह होते हैं। आकाश को ढकते हैं और चले जाते हैं। हवा के झोंके के साथ।”<sup>29</sup>

मधु धवन का उपन्यास 'जुर्माना' में किशोरी, अपूर्वी अपनी-अपनी स्वतंत्रता को एहमियत देते रहे। जहाँ पुरुष-नारी के आपसी मूल्य बिगड़े हो वहाँ बच्चे स्वाभाविक रूप से बिगड़ ही जाते हैं। यहाँ किशोर के बच्चों भी बिगड़ जाते हैं। किशोरी ने शुचि से कहता है। - *"मैंने छोटी उम्र से ही रंगरेलियाँ मनायी। पैसा बेशुमार था... आपने कितना समझाया था कि इन सोसाइटियों का असर बच्चों पर बुरा पड़ता है... वह सही निकला... मेरा पन्द्रह साल का लड़का अभी से ही...मुझसे चार कदम आगे।"*

30

स्त्री-पुरुष धन को ऐहमियत कम देकर जीवन में आत्मीयता रखना अधिक अनिवार्य है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र का उपन्यास 'तलाक दर तलाक' में वृन्दा अपने पति रामरिख से कहती है - *"मुझे लग रहा है कि मेरे लिए उपहार सस्ते हो रहे हैं और आप महंगे। मुझे आपकी दरकार है। स्वामी, यह धन आदमी को मुर्दा बना देता है।"* <sup>31</sup>

### 5.2.2 अर्थ के कारण रिश्तों के सम्बन्धों में बिखराव

समाज में एवं परिवार में व्यक्ति को मूल्यों से ज्यादा उसकी धनराशि से अन्य सदस्य प्रेम और मर्यादा देते हैं। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन' में प्रभात अपने दादा से कहता है - *"गरीबी वाकई में बेदर्द शब्द का नाम है... यह हर परिवार में बाप-बेटे के बीच, पति-पत्नी के बीच और भाई-भाई के बीच दीवार बनकर खड़ी है। - तूफान में पर्वत टूट कर गिर जाता है, पेड़-वृक्ष गिर जाते हैं, गाँव का गाँव भर कर खण्डहर बन जाता है, लेकिन एक गरीबी ही ऐसी है।"* <sup>32</sup>

ससुराल से लेकर मायके वाले तक धन के आधार पर ही लड़की को इज्जत देते हैं। जब तक घर में रिश्तेदारों और मित्रों की खातिरदारी धूमधाम से होती रहती है कोई शिकायत नहीं करता। जहाँ थोड़ी सी भी कमी नजर आई वहीं रिश्तों में दरार

पड़ने लगती है। माँ-बाप, भाई-बहन, चाचा-ताया सभी के आपसी रिश्ते धन पर टिके हैं। मधु धवन का उपन्यास 'जुर्माना' में शुचि सोचती हुई कहती है - "शुचि के मन में एक ही सवाल उभरने लगा कि पैसों के चलते हम हर रिश्ते भूल जाते हैं। खून का रंग कितनी जल्दी सफेद हो जाता है।" <sup>33</sup>

विज्ञान की नयी-नयी उपलब्धियों ने हमारी आवश्यकताओं को अधिक बढ़ा दिया है। आज तो सास-ससुर की सेवा करना तो दूर वह उन्हें आर्थिक रूप से भी मदद करने के लिए हिचकती है। अपनी अल्प बुद्धि के कारण वह अपने पति को भी हिदायत देती है कि सास-ससुर की आर्थिक मदद करने की जरूरत नहीं है। बहुतों अपने कर्तव्य से विमुख होती जा रही हैं। उन्हें कोई परवाह ही नहीं है। उन्हें अपनी सुविधा के लिए अनेकों खर्च पसंद है। परन्तु अपनी सास व ससुर के लिए तनिक भी संवेदना नहीं। 'साथ सहा गया दुख' नरेन्द्र कोहली के उपन्यास में सुमन अमित को हिदायत देते हुए कहती है - "पिताजी को तो आदत ही है कुछ न कुछ लिखते रहने की। जैसे आप पच्चीस रुपये अधिक भेजने लगेंगे तो अम्मा बड़ा पौष्टिक भोजन खाने लगेंगी। कोई जरूरत नहीं है भेजने की।" <sup>34</sup>

माँ-बेटे-बेटी के रिश्ते जन्मोत्तर है। रिश्ते प्रेम से पालना चाहिए, पैसों से नहीं। मधु धवन का उपन्यास 'उस मोड़ पर' में आर्थिक मूल्यों से माँ-बेटों का रिश्ता टूटा जाता है। बेटा रघु शादी के बाद बदल जाता है। वह अपनी माँ रजनी से कहता है - "तुम्हारा मैं पूरा ध्यान रखता हूँ। तुम्हें मैं पिछले साल से हर महीने पैसे भेज रहा हूँ। रजनी को लगा कि किसी ने उसे तपते रेगिस्तान में उठाकर फेंक दिया हो।... आज वह मुझे पैसे देकर तृप्त है। मन में आया कि बैंक की सारी रसीदें लाकर मुँह पर मारे और कहें अच्छा, माँ की भावनाओं और ममता का कर्ज इन पैसों को देकर चुकाया है।" <sup>35</sup>

आज धन में लिप्त व्यक्ति के पास अपने बेटे-बेटियों तक के लिए अवकाश नहीं है। भैरव प्रसाद गुप्त का उपन्यास 'अक्षरों के आगे मास्टरजी' में मास्टर-मास्टरानी को बता रहे हैं कि पहले माता-पिता की सम्पत्ति में से बेटी को कुछ न दिया जाये तो बेटी का पति उसके विरुद्ध न्यायालय में दरवाजा खटखटाते में भी नहीं हिचकता। वे रिश्तेदारी बगैरह सब कुछ भूलकर मात्र सम्पत्ति का अधिकारी बनने की अपेक्षा रखता है। क्योंकि उसे पता है कि इस मायावी संसार को चलाने वाला धन ही है। नाते-रिश्ते उसे सम्मुख तुच्छ हैं जिसे कि मास्टरजी महसूस कर अपने शब्दों में व्यक्त कर रहे हैं - *“अर्थ-प्रधान समाज व्यवस्था में ऐसा ही होता है। मनुष्य-मनुष्य के बीच के सारे संबंध, समाज की सारी नैतिकता, मनुष्य के सारे बहुमूल्य गुण, प्रेम, मित्रता, भाईचारागी, क्षमा, सहिष्णुता, सहानुभूति, संवेदना, दया, ममता, सच्चाई, नम्रता सब कुछ अर्थ धन की आग में स्वाहा हो जाते हैं।”*<sup>36</sup>

माँ-बेटी का रिश्ता सखी की तरह होता है। माँ ही बेटी के सुख-दुःख का ख्याल रखती है। कभी-कभी आर्थिक मूल्यों के चलते भाई-बहन एवं बहनों के आपसी संबंधों में भी दरार पड़ने लगती है। मधु धवन का उपन्यास 'आकांक्षा' में बहन-बहन के बीच अर्थ के कारण उनका रिश्ता बिखर जाता है। शीतल ने जिस दीदी एवं बच्चों की सुख-सुविधा के लिए अपना सारा जीवन न्यौछावर कर दिया था वही दीदी एवं उसके बच्चे अपने जीवन को सुनहरा बनाने के लिए शीतल को विधुर मि. राव से विवाह करने पर मजबूर करते हैं। व्यक्ति अपने स्वार्थ की खातिर रिश्तों की एहमियत भूल रहा है। धन की परम आवश्यकता उसकी आँखों में पट्टी बांध देती है। शीतल सोचती है कि - *“इन दस दिनों में जो-जो नजारे देखे थे उने चलते दिल परकटे पक्षी की तरफ फड़फड़ाने लगा है... क्या शहर का वातावरण इस कदर मानव-मन पर हावी हो जाता है... तो क्या दीदी और उनके बच्चों में परिवर्तन आ गया है...?”*

उनके लिए जीवन मूल्यों का कोई अर्थ नहीं?... उनकी दृष्टि मि. रामाराव की संपत्ति पर टिकी हुई है...।”<sup>37</sup>

जहाँ बहन माँ के पश्चात् भाई-बहनों का ख्याल रखती है वहीं पैसे के खातिर अपनी जिम्मेदारी से विमुख भी हो जाती हैं। बहुओं को ससुराल को अपना घर मानना चाहिए। लड़की की शादी होने के बाद उसके ससुराल ही सब कुछ होते हैं। बहुएँ स्वच्छंद विचार की होती है। वे सास-ससुर को विद्रोही ही मानती है। वे माता-पिता का दर्जा नहीं दे पाती। उसी प्रकार सास भी बहू की पैसों के कारण ही बेटे से शादी करवाती है। वे लड़की वालों के घर से जितना हड़प सकते हैं उतना हड़पने की कोशिश करती हैं।

सुदेश भाटिया का उपन्यास ‘घूँघट’ में ममता की शादी में उसकी सास पाँच लाख रुपये पूछ लेती है। तब अपने संबंधी से कहती है - “ठीक है बहनजी, आप जो कहें हम देने के लिए तैयार हैं। हमारी एक ही बेटी है। बस हम यह चाहते हैं कि यह जिस घर में जाए सुखी रहे। ठीक है, ममता के नाम पाँच लाख रुपये जमा करवा देंगे। नहीं-नहीं रुपये तो आपको मुझे देने पड़ेंगे।”<sup>38</sup>

आज नारी ही नारी का शोषण पैसे की खातिर शोषित करती है। चाहे वो सास या ननद या अन्य कोई रिश्ता हो। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ में इन्द्रसेन की बहन की शादी में लड़के वालों की इच्छाओं के अनुकूल दहेज न प्राप्त होने की वजह से अत्याचार करते हैं। लेखक के द्वारा कहे गये वाक्य - “नारी के द्वारा ही नारी का शोषण? कितनी ही हास्यास्पद बात है वही माँ बेटी को कितने लाड़-प्यार से पालती है और उसी ढंग से पत्नी-बेटी जब उसके घर बहू बनकर आती है तो वही माँ कितना अत्याचार करती है उस पर... कितनी दुखद बात है।”<sup>39</sup>

ससुराल में सास के साथ ननद-भाभी के बीच भी अर्थ के कारण मन-मुटाव, बिखराव उत्पन्न हुए हैं। आज की सभ्यता पैसे की छीना झपटी का सुसंस्कृत रूप है।

भाभी अपने ननदों को खुशी से चीजें खरीद के नहीं देती। डॉ. मधु धवन का उपन्यास 'जुर्माना' में जब जयंत और शुचि दिल्ली पहुंचे तो ननद बोली शुचि भाभी आपको थ्रेडवर्क की चार भारी साड़ियाँ लाने को कहा था? उन्हें साड़ियाँ देने के बाद शुचि के मन में चुभन होने लगी। उसे ऐसा लगा कि वह हंस नहीं पायेगी और... कहाँ हंस पायी थी वह...। क्या कहेंगे घरवाले। नयी साड़ियों के बदले पुरानी दे दी। माना की बड़ी भारी एवं खूबसूरत है। उसने सोचा - *"कितना कठिन है तय कर पाना कि कैसा व्यवहार करें... अपने खून के रिश्ते ऐसा व्यवहार करेंगे तो?"* 40

भाभी-ननद का रिश्तों में चाहे किसी प्रकार के टकराहट पैदा हो मगर भाभी को माँ की तरह उसके दुःखों में सहायता करनी चाहिए। उसकी भावनाओं को समझकर सही दिशा दिखाना भाभी का कर्तव्य है। जैसे चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में अंकित की भाभी अंकिता को उसका जन्मसिद्ध अधिकार मिलने के लिए मदद करती है। उसकी दूसरी एवं तीसरी भाभियाँ माँ के मृत शरीर पर अंकिता को घुसने नहीं देते, क्योंकि उनका डर था कि उनकी जायदाद में इसको भी आधा हिस्सा रहेगा। इसमें रीना भाभी दोनों भाभियों से गुणवान थी। रीना कहती है - *"रीना जब तक जीवित है तेरे लिए यह घर कभी नहीं मरेगा बिट्टी... हम तो जीवित ही मृत हैं। बड़े भैया अपने मन की भावनाओं को कभी अधिकार नहीं दे सके। गली में जीप खड़ी देख वह दुःख और अवसाद के घोर क्षणों में भी चौंकी।"* 41

चाचा-चाची, मौसी आदि सौतेली माँ का रवैया ही होता है। उनका कर्तव्य भांजी को माँ-बाप का प्यार, स्नेह, जिम्मेदारी दे मगर आर्थिक दबाव की वजह से व्यक्ति स्वार्थी बन जाता है। वह अपने सुख-चैन के बारे में ही सोचने लगा है। चंद्रकांता का उपन्यास 'अंतिम साक्ष्य' में भी मीना की शादी पचास-साल के आदमी से करवा देते हैं। बीजी अपने प्रति प्रताप से कहती हैं - *"आह! कैसे कसाई लोगों में थे*



चाचा-चाची! बारह बरस की लड़की को पचास साल के रंडुवे के पल्ले बांध दिया।”

42

आज आदमी पैसों के खातिर इतना गिर गया है कि कोई भी किसी की मदद करना पसन्द नहीं करता।

### 5.3 समाज मूल्यों में अर्थ का महत्व

समाज में सामाजिक मूल्य में आर्थिक मूल्य का घनिष्ठ संबंध है। समाज में मनुष्य की आर्थिक स्थिति ही समाज में टकराहट उत्पन्न करती है। अब अर्थ के क्षेत्र में विषमता होगी तो समाज हिल-डुल जाएगा। सर्वप्रथम मनुष्य के जीवन में अर्थ का ही प्रश्न उठता है। इस अर्थ से प्रत्येक कार्य होता है। कार्ल मार्क्स ने साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम आर्थिक मूल्यों को अलग रूप में प्रस्तुत किया है। कार्ल मार्क्स के अनुसार *“राजनीतिक, बौद्धिक, दार्शनिक, साहित्यिक और कलात्मक आदि विकास आर्थिक विकास पर निर्भर है।”*<sup>43</sup>

समाज में बदलते मूल्यों बदलाव में अर्थ की स्थिति प्रमुख हो गई है। राजदेव प्रियंवर या उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ में हेमन्त बहन की शादी के लिए इन्द्रसेन के पास जाता है तब समाज को सोचकर बहन से कहता कि - *“मुझे कुछ नहीं पूछना है। प्यार, मुहब्बत ये सब ढकोसला है। आजकल सबसे बड़ी चीज है - पैसा। जिसके बदले लोग मान, प्रतिष्ठा, प्यार, मुहब्बत सब कुछ खरीद सकते हैं।”*<sup>44</sup>

आज समाज में उच्च वर्ग आर्थिक उन्नति के लिए अपने अधीनस्थ व्यक्तियों का शोषण करता रहा है। गरीबी के कारण युवा को शिक्षा प्राप्त नहीं होती। अगर शिक्षा भी प्राप्त हो जाये तो भी युवा पीढ़ी नौकरी के लिए बेकारी से जूझ रहा है। डॉ. विष्णु पंकज का उपन्यास ‘टूटा हुआ आदमी’ में बिस्मिल का परिवार आर्थिक दयनीय स्थिति में गूँज जूझ रहा था। इस कारण बिस्मिल छोटी आयु में काम करने आ गया।

घर के पड़ौसी के दुकान में काम करने लगा। वहाँ का दुकानदार कहता है - “तू अभी बहुत छोटा है। क्या काम करेगा?” पड़ोस के अन्सारी होटल में कप-प्लेट धो लूँगा या बाजार में मिस्त्री आविद की दुकान पर गाड़ियाँ पोछ दिया करूँगा।”<sup>45</sup>

डॉ. कश्मीरी लाल का उपन्यास ‘खूँटे’ में सत्तू नत्थू को देखकर कहता है। सत्तू गरीबी के कारण माँ की चरित्रहीनता को देखकर वहाँ से नत्थू के पास नौकर का काम करने लगता है। नत्थू भी धन व औरत का लोभी होता है। वह कहता है - “व्यक्ति पैसे और औरत का लोभ किसे नहीं होगा? उसका मत था कि सोना तो नाली में से भी उठा लेना चाहिए, और इसीलिए वह नारी में गिरने लायक चीज को भी खाद्य बनाकर पैसा खींच लेता।”<sup>46</sup>

आज लड़की से विवाह उसकी हैसियत को देखकर विवाह करने के लिए वर और वर के घर वाले आगे बढ़ते हैं। सुदेश भाटिया का उपन्यास ‘धूँघट’ की नायिका ममता की बड़ी माँ उनके माँ से कहती है जब उनकी दोनों बहनों की शादी छोटे देवर से तय हो जाती है, जब उनकी माँ को डर होता है कि लड़के वाले कितना पूछेंगे तब कहती है - “माँ जी, शादी लड़की से होगी, पैसों से नहीं।”<sup>47</sup>

जब लड़की वाले के परिवार निश्चित धन का इंतजाम करने के काबिल नहीं होते तब लड़के वाले उस लड़की से रिश्ता तय नहीं करते या प्रतिदिन अत्याचार की गुंजाइश होती है। ब्रजनारायण सिंह का उपन्यास ‘समर्पिता’ में समर्पिता की माँ उसके पिता से कहती है जब उसके विवाह के बारे में बातचीत चलती है तब कहती है - “हुआ कैसा नहीं पैसे के बिना तुम्हारी ऊर्वशी को कौन पूछेगा। आजकल तो ऊर्वशी भी हो और कुबेर कन्या भी, तभी लड़के वालों से पुछती है।”<sup>48</sup>

अर्थात् अर्थ संग्रह की वरीयता मिलने से मनुष्य परम्परागत मूल्यों को ठुकराकर अधिक से अधिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त करना चाहता है। सविता राघव अविनाश का उपन्यास ‘सूखे आँसू’ में वैशाली अपने भाई शंकर का ऑपरेशन कराने में असमर्थ

है। उसके भाई शंकर ने गरीबी दूर करने के लिये बुरे मार्ग को अपनाया। जब उसे अपनी गलती का अहसास हुआ, उसने सुधरना चाहा तो उसे ठोकरें ही मिली। बुरे कर्म के परिणाम हमेशा भुगतने पड़ते हैं, एक गरीब को हमेशा अत्याचारों का सामना करना पड़ता है। उसकी बहन वैशाली कहती है -

“हे भगवान! कैसा अन्याय है तेरा। जब भैया ने गलत राह का अनुसरण किया और अत्याचार किये तो ये बेरहम समाज उनकी ठोकरों में नतमस्तक हो गया और आज जब सत्य का पालन करने के लिए न्याय का मार्ग अपनाया तो कदम-कदम पर उपेक्षा और ठोकर। क्या एक इन्सान कभी अच्छा आदमी नहीं बन सकता? अतीत की बुराईयाँ उसका साये के समान क्यों पीछा करती है? ये समाज जीने क्यों नहीं देता?”<sup>49</sup>

आज समाज में राजनीतिक के सत्ता से लेकर साधारण आम जनता तक अर्थ के लिए भाग दौड़ करते हैं। जब मनुष्य जरूरत से ज्यादा अथ लोलुपता हो जाता है तब समाज में अनैतिक कृत्य जैसे चोरी, डकैती, भ्रष्टाचार आदि बढ़ जाते हैं। मनुष्य मानवीयता को खोकर हैवान बन गया है।

### 3.3.1 अर्थ के पीछे अंधी दौड़

आज समाज में सभी कर्म आर्थिक मूल्यों से बंधे हुए होते हैं। आर्थिक मूल्य पर निर्भर होने के कारण मनुष्यों में टकराहट होने लगी है। मनुष्य आत्मकेन्द्रित बन गया है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में प्रेम की ही आधारशिला पर टिके होते हैं। मगर आज धन-प्राप्ति के लिए आत्मपरक सम्बन्ध को भूलता जा रहा है। डॉ. विष्णु पंकज का उपन्यास ‘टूटा हुआ आदमी’ की मलिका अपने पति से कहती है - “मलिका तो मुझे बस पैसा कमाने की मशीन समझती है। उसकी तरह से कहीं से भी पैसा लाओ वह सिर्फ पैसे की कद्र करती है और पैसे वाले की इज्जत।”<sup>50</sup>

पति-पत्नी से पैसों के लिए विवाह करता है। पुरुष नारी के ढेर सारे दहेज को देखकर उसकी इज्जत करता है। नारी के दहेज के साथ मासिक वेतन पर भी चाह रखता है। जब अपनी पत्नी से ज्यादा धन कोई और लड़की लेकर आये तो अपनी पत्नी को छोड़कर उसे दूसरे लड़की से विवाह करने को भी तैयार हो जाता है। सुदेश भाटिया का उपन्यास 'घूँघट' में ममता अपने पति से कहती है - “तो तुम उससे शादी करोगे? मेरा क्या होगा यह भी सोचा है? तुम कमाओ और खाओ। तो तुमने मुझसे केवल पैसे कमाने के लिए शादी की थी। अपनी औकात मत भूलो, औरत हो औरत की तरह हो।” <sup>51</sup>

लेकिन आज के युग में जो लोग विवाह जैसे पवित्र रिश्ते को धन की तराजू में तौलते हैं, जो मान-मर्यादा को महत्व नहीं देते। भैरव प्रसाद गुप्त के 'अक्षरों के आगे मास्टरजी' के उपन्यास में हेडमास्टरजी अपनी बेटी के विवाह के लिए लड़के वालों के पास जाते हैं पर लड़के वालों के मन में लड़की वालों के प्रति हेय दृष्टि है। समधी ने एक कॉपी बनाकर रखी हुई है और वह कहता है कि जिस पार्टी का ऑफर सबसे ऊँचा होगा, उस पार्टी की लड़की को ही पहले देखेंगे। लेकिन यहाँ पर हेडमास्टरजी अमीर वर्ग जो कि विवाह को धन से माप रहे हैं। वे उनका विरोध करते हैं और अपनी बेटी का रिश्ता नहीं करते। वे वहाँ से निकलकर बाहर आकर अपने दोस्त से कहते हैं - “आगे सुनना मेरे लिए असह्य हो उठा। मैंने मित्र का हाथ पकड़कर उठते हुए कहा, यह कैसे अर्थ पिशाच के यहाँ आप मुझे ले आये? उठिये चलिए।” <sup>52</sup>

सुदेश भाटिया का उपन्यास 'घूँघट' में सास निश्चित दहेज अप्राप्त होने के कारण बहू के प्रति अत्याचार करने लगती है। उसकी धन के प्रति लालच बढ़ती जाती है। उसके बेटे और बहू का रिश्ता तोड़ने में बाध्य भी बन जाती है। ममता की सास अपने बेटे से कहती है - “बहू से कहो पढ़ना छोड़कर अब पैसे कमाने में लगे। केवल तेरी कमाई से तो घर का खर्चा भी नहीं चलता, लेकिन माँ उसके पिताजी ने

तो तुझे पाँच लाख नगद दिए थे। पाँच लाख में क्या होता, पाँच लाख तो एक लड़की शादी का खर्च है आजकल।”<sup>53</sup>

आर्थिक मूल्यों के विघटन के कारण लड़के वाले लड़के के जन्म से ही उसके भविष्य की योजना बनाने लगते हैं। अगर जरा सी भूल हो जाए या उनकी आशा के विपरीत दहेज कम मिले तो बेचारी लड़की का जीना दूभर कर दिया जाता है। ‘पिंजरे के पंछी’ उपन्यास में इन्द्रसेन की बहन के ससुराल वाले दहेज के खातिर उस पर अत्याचार करने लगते हैं। लेखक कहता है - “इन्द्रसेन से बड़ी उसकी एक बहन थी। जिसकी शादी दोनों बाप बेटे ने मिलकर पड़ोस के गाँव में ही कर दी थी। परन्तु दहेज का पैसा शादी होने के बावजूद भी पूरा नहीं हो पाया था। जिसके चलते उसकी बहन के ससुराल वाले जुल्म ढाया करते थे।”<sup>54</sup>

अगर लड़की के माँ-बाप अपनी काबिलियत के अनुकूल लड़का ढूँढ़ें तो आर्थिक तंगी के कारण मानव मूल्यों में टकराहट उत्पन्न नहीं होगी। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ में हेमन्त की प्रेमिका ललिता के पिता हेमन्त के आर्थिक तंगी के कारण अपनी लड़की को देने से इन्कार कर देता है। वह अपनी बेटी को धनवान बूढ़े से शादी करवा देता है। थोड़ी ही दिनों में विधवा बन जाती है। दुखीलाल हेमन्त को देखकर लोग कहते हैं - “हेमन्त की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी, इसलिए दुखीलाल उसके साथ अपनी बेटी का विवाह करना उचित नहीं समझ रहा था और सामाजिक व्यंग्य की सहना भी उसके लिए कठिन हो रहा था।”<sup>55</sup>

मनुष्य इतना गिर चुका है कि मनुष्य-मनुष्य के प्रति भावनात्मक प्रेम न रखकर पैसों की खातिर उनके जायदाद के लिए जुड़ा रहता है। मनुष्य को इज्जत उनके जायदादों और धन के कारण मिलती है। चित्रा मुद्गल का उपन्यास ‘एक जमीन अपनी’ में रीना भाभी कहती है - “अम्मा के जीवित रहते न किसी बहू को कभी किसी की चिन्ता हुई न आवश्यकता होती तब भी अम्मा कौन अपनी देहरी छोड़ती। न

वे रुपयों पैसों की मोहताज थी, न देख-भाल की। बाबूजी की पेंशन नियमित आती थी, दो दुकानों का किराया ऊपर।”<sup>56</sup>

आर्थिक जटिलता मानव को इन्सानियत से हैवान बना देता है। मनुष्य अपने सुख-सुविधाओं के लिए दूसरों का सुख-चैन जीना हराम कर देता है। दूसरों के पेट को भरकर अपना पेट पालता है। बनावर चन्द्र का उपन्यास ‘सवालियों के बीच’ में दिनेश सोचता है। - “बिजनेस में पैसा तो जरूर है लेकिन सुख-चैन और इन्सानियत नहीं है। दिन भर से पता नहीं कितने झूठ बोलने पड़ते हैं और कितने लोगों को धोखा देना पड़ता है। मुझे झूठ, धोखा और ईमानदारी पसन्द नहीं। इस नौकरी में कम पैसा है मगर सुख शान्ति से चैन की नींद सो सकता हूँ।”<sup>57</sup>

अर्थात् मनुष्य परिश्रम कर धन कमाना चाहिए। बिना परिश्रम से धन अनर्थकर निकालते हैं। अर्थ के पीछे की दौड़ में मनुष्य सभी मानुषिक मूल्यों को छोड़कर कई दुर्गुणों का शिकार बन जाता है।

#### 5.4 नारी की स्थिति

पुराने वेदों कालों में नारी की पूज्यनीय स्थिति थी वही अलौकिक सुख माना गया अभी उसको कुचला जा रहा है। यादवेन्द्र शर्मा उग्र चन्द्र का उपन्यास ‘शतरूपा’ में शतरूपा परिवार जीवन से विरक्त होकर आश्रम में पहुँचती है वहाँ का गुरु कहता है - “स्त्री ने ही समस्त देव-दैत्यों को मोहा है। यह स्त्री है न, सम्पूर्ण सृष्टि है। उसी में ही अलौकिक सुख है।”<sup>58</sup>

मध्यवर्गीय नारी पर ही समाज के विधि-निषेधों, पाप-पुण्य, नैतिकता का सर्वाधिक भार पड़ता है। प्राइवेट सेक्रेटरी, स्टेनो, नर्स, अध्यापिका आदि वर्गों की नारी का यौन शोषण होता है। यादवेन्द्र शर्मा उग्र चन्द्र का उपन्यास ‘दो रंग’ की नायिका मोनी की बहन लिली का विवाह करना था। उस दायित्व को निभाने के लिए उसको

पैसों की जरूरत थी। इसलिए वह अपने बॉस के चाह के अनुसार मजबूरी के कारण सहती रही। वह सोचते हुए कहती है - “मेरे बॉस ने मुझे चार बार स्पर्श किया और सिनेमा में उसने मेरी गर्दन के पीछे हाथ भी फैलाया, यह कह कर कि तुम्हें कोई एतराज तो नहीं होगा, जरा हाथ में दर्द सा होने लगा है।”<sup>59</sup>

आर्थिक विषमता के कारण नारी को यौन शोषण का शिकार होना पड़ रहा है। आर्थिक स्तर के अंतर्विरोध का उस पर इतना दबाव पड़ता है कि नारी अनैतिक कृत्य करने में मजबूर बन जाती है। नारी अपने और परिवार के पेट पालने के लिए सब कुछ न्यौछावर कर देती है। डॉ. कश्मीरी लाल का उपन्यास ‘खूटे’ में सत्तू की विधवा माँ पैसे के खातिर गाँव के एक आदमी से अनैतिक सम्बन्ध रख लेती है। सत्तू उसे मामा पुकारता है। जब उसे पता चलता है कि उसकी माँ नीच हरकतों में गिर गई तब कहता है। - “पशु-पक्षी भी अपने बच्चों से लाड़-लड़ाते हैं, छूते हैं, चूमते हैं, पुचकारते हैं। बंदरिया की ममता देखें कोई। एक उसकी माँ थी जो बस पैसे के सामने... मामा के पास पैसा न होता तो...।”<sup>60</sup>

आज दुनिया में स्त्री नौकरी करती है। दबाव सहन करना पड़ा है। चित्रा मुद्गल का उपन्यास ‘एक जमीन अपनी’ में नीता और अंकू विज्ञापन मीडिया में काम करती है। जब साधारण आफिसों में ही नारी का दबाव होता है तो वह ग्लैमर की दुनिया है। यहाँ अधिकतर पुरुष स्त्री को भोग की वस्तु समझते हैं। यहाँ की नारी अपना अलग अस्तित्व बनाने के लिए, परिवार की आर्थिक तंगी के कारण मीडिया में प्रवेश हो जाती है। यहाँ भी अपने आंतरिक भावनाओं को दबाकर काम करना पड़ता है, आर्थिक विषमता उन्हें वैश्या भी बना देती है।

जब अंकिता को मान-सम्मान को छोड़कर विज्ञापन दुनिया में काम करना पसन्द नहीं है तब नीता समझती है - “यह ग्लैमर की दुनिया है अंकू...। यहाँ जीने की, जी पाने की पहली शर्त है - विशिष्ट दिखना, विशिष्ट करना, विशिष्ट होना,

विशिष्ट होना, विशिष्ट बनना जा वास्तविकता नहीं है... बहुत कड़वी बात कह रही है... तुम्हारी भावनाओं को ठेस पहुँचान के ध्येय से नहीं ... यह मेरा कटु अनुभव है...।”<sup>61</sup>

भारतीय पत्नी का जीवन पति के साथ जुड़ा है। पति को वह आज भी अपना सर्वस्व मानती है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के कारण और बाहर काम पर जाने से उसका संबंध अनेक रूपों में, अनेक पुरुषों से रहना सहज हुआ है।

डॉ. कश्मीरी लाल का उपन्यास ‘खूँटे’ में नत्था के साथ मोती नाम उसका दोस्त मिलकर अफीम उपयोग किए मगर नत्था के षडयंत्र से मोती को पुलिस पकड़ ले जाती है। उसकी पत्नी नादान, कमसिन औरत होने के नाते उसके चाल में घिर जाती है। उसकी कमजोरी का फायदा नत्था ले लेता है। लाल नामक दूसरा नौकर सत्तू से कहता है - “इतनी कमसिन औरत वो भी अकेली वो भी परदेस में... वो भी बेसहारा। उसने जाल फेंक दिया। नौकरी का वादा किया और सौ की जगह दो सौ या तीन सौ दे दिए... बस तो औरत आ गई इसकी गिरफ्त में... क्योंकि वह जानती है कि अकेली बेसहारा को चार साल तो क्या चार दिन भी नहीं काटने देगी यह जालिम दुनिया... इसलिए टाईप सीखने लगी।”<sup>62</sup>

सूर्यबाला का उपन्यास ‘सुबह के इंतजार तक’ की नायिका मीनू अपनी भाभी या छोटे भाई बिट्टू से पूरी स्वतंत्रता से खुश नहीं रह पाती क्योंकि जब उसी चाची आर्थिक तंगी के कारण इसको अपने घर काम करने के लिए कुछ रकम परिवार को देकर खरीद लेती है। वहाँ चाची मॉडर्न सभ्यता की होती है। इसको भी इस सभ्यता में लाने की कोशिश करती है। वही एक अजनबी आदमी जो चाचा के रिश्ते से चाची के पास आता-जाता था वह इसे बलात्कार कर देता है। वहाँ से भाग जाती है। माँ-बाप की आर्थिक तंगी व इसके अन्याय को सोचकर अपने भाई बिट्टू के साथ किसी दूसरे जगह चली जाती है। वह सोचती है - “जिन्दगी में आती खुशहाली की



संभावनाएँ मुझे एक विराट शांति में डुबोती जा रही है। हंसती हूँ पर सन्नाटे की परतें मौका पाते ही फिर बिछ जाती हैं।”<sup>63</sup>

पुरुष वर्ग उसकी आर्थिक कमजोरी से फायदा उठाकर नारी का यौन शोषण करते हैं। ब्रजनारायण सिंह का उपन्यास ‘समर्पिता’ में समर्पिता के पिता उसकी माता अनुराधा से कहते हैं कि - “अरे! अनुराधा तू तो समझती नहीं। आजकल लड़कियों को नौकरी मिलना कोई आसान रह गया है। दफ्तरों का बुरा हाल है। दफ्तर में साहब लोग भूखे भेड़ियों की तरह लड़कियों पर टूट पड़ने को बैचन रहते हैं।”<sup>64</sup>

इस प्रकार नारी के मूल्यों का विघटन का परिवेश निर्मित होता जा रहा है। आज मध्यवर्गीय परिवारों पर जबरदस्त आर्थिक दबाव पड़ा है।

#### 5.4.1 वैश्यावृत्ति

वैश्यावृत्ति एक प्रवृत्ति होती है जिसके कारण यह समस्या और भी उग्र होती है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र का उपन्यास ‘अधिकार’ में नायिका प्रेमा वैश्या की बेटी होती है और वह भी डान्सर होती है। उसे देखकर रास्ते में बैठी एक बूढ़ी औरत जो जवानी में डान्सर होती है वह अपने अनुभव से उसको समझाती है - “यह तरह-तरह के रंगों में नाचने वाली औरत है न, वह असली औरत नहीं। एक झूठ है। सफेद झूठ। यह झूठ जब खुलेगा तब तक धिनौना सत्य प्रकट हो जाएगा। एक भयानक सत्य... मैं कहती हूँ कि अपने भीतर की औरत को पहचानो।”<sup>65</sup>

समाज में वैश्या अपने जिस्म को दिखाकर पैसा कमाती है। भारत में जहाँ नारी के समक्ष सतीत्व तथा पतिव्रता जैसे मूल्य सर्वोच्च रहे हैं, वहाँ भी वैश्या व्यापार अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास ‘चुटकी भर चन्दन’ में पवन अपने प्रेमिका चिदंबरा के जीवन को देखकर कहता है - “तुमारा मूल्य सिर्फ दस हजार है न? अब चारों तरफ भटक क्यों रही हो? चिदंबरा, पैसा कमाने का यह

धन्धा बेहद घटिया किस्म का है इतिहास के पन्ना कोई नारी पलटेगी तो तुम्हें गाली ही देगी।”<sup>66</sup>

हमारे भारतीय नारी के अनुसार नारी का देह पति के अलावा प्रकृति के सूर्य भी देखना मना हाता है वहाँ वहाँ नारी पैसों के लिए शरीर में अश्लील वस्त्र पहनकर समाज के सामने प्रस्तुत करना पड़ा है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र का उपन्यास ‘अधिकार’ में राजेश प्रेमा के पोज को देखकर कहता है वह कॉलेज में पढ़ता है, वे और उसके दोस्त देखकर चर्चा करते हैं तब वह कहता है - “इस डान्सर ने भी पोस्टर बनवाने में हद कर दी। बेहद अश्लील और गंदे पोस्टर। देखते ही आँख बन्द करनी पड़ती है।”<sup>67</sup>

समाज में वैश्या ही अतिशीघ्र बिना कष्ट से पैसे कमा लेती है। समाज में यह अनैतिक नीच कृत्य है। समाज इनको बहिष्कृत कर देता है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ में हेमन्त इन्द्रसेन की अर्थ लोलुपता को देखकर वैश्या को संबोधित करते हुए कहता है कि - “आपके लिए हो सकता है पैसा ही सब कुछ हो। लेकिन मेरे लिए रुपया-पैसा कुछ भी नहीं है। रुपया तो समाज से बहिष्कृत वैश्या भी कमा लेती है।”<sup>68</sup>

समाज में वैश्या करने वाली औरत से भय रहता है क्योंकि इससे समाज की अन्य लड़की बिगड़ न जाय। अगर अच्छी घर की बहु-बेटी की इज्जत लूट जाय तब मौत के रास्ते चली जाती है। जब वह मर नहीं पाती पारिवारिक ढांचा के सोच नारी को वैश्या बनने में विवश कर देता है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ उपन्यास में सीमा सोचती है जब इन्द्रसेन दहेज के लालच में अपने बेटे की प्रेमिका का जीवन नाश कर देता है। इन्द्रसेन का चमचा शकुनि उसका बलात्कार करके उसे वैश्यावृत्ति में छोड़ देता है। वह सोचती है - “आखिर मेरे साथ ऐसी हरकत क्यों की गयी? कहीं मैं मुखिया इन्द्रसेन की गंदी चाल का शिकार तो नहीं हो गयी हूँ। उफ...

कहीं यही घिनौनी जिन्दगी मुझे भी...। सिर्फ सोचती है... ऐसा मैं कदापि नहीं होने दूँगी। इससे तो अच्छी मौत है” 69

आरम्भ में आर्थिक लोभ वशीभूत होकर स्त्री वैश्यावृत्ति को ग्रहण कर लेती है। उससे बाहर आना मुश्किल का कार्य बन जाता है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र का उपन्यास ‘अधिकार’ में प्रेमा राजेश के प्यार में इस पेशे के बाहर आती है तब वह कहती है - “बीबी जी! समय बड़ा बलवान होता है। वक्त की मार बड़े से बड़े ताकतवार के हौसले पस्त कर देती है। मेरा वक्त बड़ा खराब है, एक वक्त था कि शौहरत और दौलत मेरे पाँव घूमती थी।” 70

समाज में पुरुष वर्ग इसका जीवन तबाह कर देता है। उसका चैन से जीना असंभव ही होता है। पुरुष उसे कामुक नजरों से ही देखता है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र का उपन्यास ‘अधिकार’ में रमेश प्रेमा से प्रेम करता है। उसका भाई राजेश पहले विद्रोह करता है फिर बाद में वही इसके पीछे पड़ जाता है और विवाह भी करने को तैयार हो जाता है। राजेश प्रेमा से कहता है - “जानती हैं आप छोटे भाई की प्रेमिका बड़े भाई के लिए पूजनीय होती हैं। आप दोनों कमीनेपन की गहराई से भी नीचे उतर गए। प्रेमा जी, लोग इन्सान को सिर्फ सन्देह समझेंगे। सिर्फ शक...।” 71

समाज नारी को स्वावलम्बी नहीं बनने देता, उसे स्वतंत्र रूप में जीविका उपार्जन करने में अनेक बाधाएँ उत्पन्न करता है। परिणामतः नारी घबराकर आर्थिक आय के सस्ते और निम्नकोटि के उपाय ग्रहण करती है। इस प्रकार ‘अन्तिम साक्ष्य’ उपन्यास में मीना बीजी के परिवार को तोड़ कर उसके पति की रखैल बन जाती है। मीना को आर्थिक तंगी के कारण चाचा-चाची अथेड़ उग्र से पैसों के लालच में शादी करवाते हैं। उसके बेटे के कामुक नजर के कारण उसे वापस भेज देता है, दूसरी शादी भी पैसों के खातिर चाची किसी गुंडे से शादी करवा देते हैं। वह थोड़े दिन के बाद पैसों के लिए अपने दोस्तों के हवाले कर देता है। वे वैश्यावृत्ति में पहुँचा देते हैं। वहाँ

से किसी प्रकार जब बाहर आती है तब उसका वही पेशा बन जाता है। उसकी दयनीय स्थिति आर्थिक व वैयक्तिक दृष्टि बीजी के परिवार टूट जाता है और बीजी व बाऊजी की मृत्यु भी हो जाती है। तब वहाँ के गाँव वाले इसे देखकर कहते हैं -  
*“दुल्हन तो वह तब भी नहीं बनी, जब वेदी की परिक्रमा करके आई थी।”*<sup>72</sup>

आज समाज में युवा वर्ग भी फैशन के नाम पर वैश्या ही करने लगी है। इस कारण इसका परिणाम समाज में आतंकवादी एवं बुरी भयंकर गुप्तरोगों से ग्रस्त होकर अपने स्वास्थ्य तथा आयु को क्षीण करती है। यादवेन्द्र शर्मा का उपन्यास ‘अधिकार’ में बूढ़ी औरत प्रेम को देखकर कहती है - *“एक दिन जवानी का ज्वार ढल जायेगा, संगमरमरी जिस्म कीचड़ की तरह लगेगा। धन सेंट की तरह उड़ जायेगा। बाकी रह जायेगा - यह यानी मैं। देखती हो मुझे। न देखा हो तो और गौर से देखो... अंजाम में जिन्दगी में। औरत असली पोस्टरों में नहीं होती बल्कि औरत होती है बीबी, माँ... एक घर की इज्जत और मर्यादा।”*<sup>73</sup>

अतः आर्थिक शोषण का यह धंधा समाज में चलता रहेगा। पुरुष वर्ग नारी का शोषण जब तक बन्द नहीं करते तब तक नारी वैश्यावृत्ति बनने का अन्त नहीं।

## 5.5 शैक्षणिक में अर्थ का महत्व

आज अनेक नौजवान बेरोजगार घूम रहे हैं। युवक-युवती को नौकरी मिलती है तो भी निश्चित वेतन नहीं मिलता। इसलिए पैसों के अभाव के कारण शिक्षक किसी बड़े घराने के लड़के लड़कियों को ट्यूशन पढ़ाते हैं। सूर्यबाला का उपन्यास ‘दीक्षांत’ में लेखिका शर्मा जी को देखकर कहती है - *“ट्यूशन के बल पर जर-जमीन खरीदने, मकान बनवाने या लड़की की शादी जैसे महायज्ञ उनकी औकात से बाहर के रहे, वैसे लड़की है ही नहीं, ईश्वर की यह बहुत बड़ी दया ही रही है।”*<sup>74</sup>

शिक्षकों का स्तर अर्थ के अभाव के कारण गिर चुका है। वे ट्यूशन के बच्चों या कॉलेज के अमीर घराने के शिक्षार्थी से अपना वैयक्तिक चरित्र घटित हो जाता है। पैसों का बोलबाला होने के कारण शिक्षक को पैसों से खरीद लेते हैं और शिक्षा में पैसों से परीक्षा में नम्बर लिया जाता है। सूर्यबाला का उपन्यास 'दीक्षांत' में शर्मा जी का लड़का कहता है - "जिसे ट्यूशन देते हैं उसे अवश्य नंबर देंगे, पर तुम्हारे काटेंगे क्यों? आप नहीं मानते न, कल स्कूल में जाकर कॉपी देख लीजिएगा।" <sup>75</sup> यहाँ शिक्षक पैसों के कारण उस अमीर लड़के को अधिक नम्बर देता है।

बच्चों का वह भी नसीब नहीं होता। डॉ. देवराज पथिक का उपन्यास 'जर्जर सेतु' में शीलभद्र अपने पिता अमिरत्न के बारे में कहता है, उनके पिता उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे मगर उनको जिले के बड़े स्कूल में प्रवेश नहीं मिलता। गरीब बच्चों को न्यायपूर्वक शिक्षा भी अर्थ के अभाव से प्राप्त नहीं होती। उसकी माँ अपने जेवर बेचकर पढ़ाने की कोशिश करती है। इस संबंध में लेखक का कहना है कि - "घर के समस्त आभूषण बेचकर उसने अपने पुत्र अमिरत्न को शहर के स्कूल में उच्च शिक्षा के लिए भेज दिया। गाँव में स्वयं मेहनत मजूरी करके वह अपने पुत्र के भोजन, वस्त्र आदि का प्रबन्ध जुटाती रही।" <sup>76</sup>

शिक्षार्थी शिक्षा मिलने के लिए लाख प्रयत्न करते हैं। शिक्षा मिलना ईश्वर का वरदान होता है। इसलिए गरीब घर के बच्चे तन के कपड़े बेचकर भी पढ़ाना चाहते हैं। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन' का प्रभात सोचता है - "मैं तो पका आम हूँ... थोड़ी-सी भी तेज बयार आयेगी तो जमीन पर टपक जाऊँगा... कोई ठौर... ठिकाना नहीं... तेरी तो अभी सारी उम्र पड़ी है... कम से कम बी.ए. तो कर ले... अपने तन के कपड़े बेचकर भी पढ़ाने के लिए तैयार हूँ।" <sup>77</sup>

'गिद्धलोक' उपन्यास का नायक किशन की माँ अपने बेटे की पढ़ाई के लिए उसके बैल व गहने बेच देती है और मजूरी पर पैसे इकट्ठे कर पैसे भिजवाती है।

उसकी माँ सोचते हुए कहती है - “पढ़ाई का खर्च भरने को ही जर्जरता आयी। बैल के गहने बिक गये। खेत धीरे-धीरे बिकते जा रहे हैं। जो बचे हैं वे भी कब तक बचे रहेंगे। पिता सब कुछ स्वाहा करते जा रहे हैं, एक उम्मीद में कि उनके बेटे की पढ़ाई अब पूरी हुई कि तब दिन लौटते देर नहीं लगेगी...”<sup>78</sup>

रामदेव शुक्ल का उपन्यास ‘गिद्धलोक’ में किशन अपने पी.एच.डी. उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने विभागाध्यक्ष का काम व दुकानों से सब्जी आदि खरीदकर लाना आदि उसी का काम था। पी.एच.डी. की डिग्री पढ़ाई से मिलती काम करने से या रिश्वत देने से मिलती है। वह सोचते हुए कहता है - “बच्चे को स्कूल छोड़कर किशन करीब दो किलोमीटर उल्टे रास्ते चलकर सब्जी मंडी पहुँचा। दस पैसे का हरा धनिया खरीदकर मैडम के पास पहुँचा।”<sup>79</sup>

शिक्षा मिलने के एक ओर धनी छात्र विलास में अपव्यय करते हुए शिक्षार्जन का ढोंग करते दिखाई देते हैं तो दूसरे अनेक गरीब छात्र केवल रोटी पाने के लिए कठिन परिश्रम करते हुए डिग्रियाँ प्राप्त करने की चेष्टा करते दिखाई पड़ते हैं। शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य, मानसिक संस्कार और नैतिक आचार-निष्ठा, पूर्णतया विलुप्त है। शिक्षा के क्षेत्र में सब बराबर के भागीदार हैं। शिक्षा प्राप्ति का सबको समान अधिकार है, उसमें ऊँच-नीच भेद कर उसकी पवित्रता के नाम पर धब्बा लगाना है, उसमें कोई जातीय असमानता भी नहीं होनी चाहिए। योगेन्द्र प्रताप सिंह का उपन्यास ‘टूटते गाँव बनते रिश्ते’ में जातीय भेद के आधार पर शिक्षा दी जाती है पर जिससे जातीय तनाव पनप रहा है। रघु कहता है - “विद्या एक पवित्र चीज है, गंगाजल की तरह, गंगाजल किसी जाति के लिए वर्जित नहीं। जैसे गंगा जी में जो नहायेगा वही तेरेगा। जाति का सवाल नहीं है, उसी तरह विद्या आदमी के लिए है। तोता तथा कुत्तों तक को विद्या दी जाती है। इसमें कोई रोक-टोक न करें।”<sup>80</sup>

आज छात्रों को शिक्षा से भी शांति नहीं मिलती। क्यों कि शिक्षा ही छात्रों को नौकरी दिलाती है। यही बेरोजगारी का मूल कारण बन जाता है। 'गिद्धलोक' उपन्यास का किशन भी अपने भविष्य को सोचते हुए कहता है - "उसका जीवन अभाव और असंतोष का हर क्षण फैलता रेगिस्तान बनता जा रहा है। बेकार रहने का दर्द इस देश के पढ़े-लिखे युवक की नियति है।" <sup>81</sup>

डॉ. मधु धवन का 'करवट लेता वक्त' उपन्यास में जय विदेश उच्च शिक्षा प्राप्त करने जा रहा है। उसकी अध्यापिका शिक्षा की वास्तविकता का उसे ज्ञान दे रही है। अध्यापिका के द्वारा शैक्षिक स्तर का समझाते हुए लेखिका कहती है - "शिक्षा का उद्देश्य मानव के अज्ञान को दूर करना है। शिक्षा मात्र मानव ज्ञान की वृद्धि नहीं करती वरन् शिक्षा मानव मस्तिष्क को विकसित करती है। शिक्षा का उद्देश्य मस्तिष्क भरना नहीं, मस्तिष्क विकसित करना होता है।" <sup>82</sup>

अर्थात् शिक्षा हर छात्रों के लिए अनिवार्य है। क्योंकि शिक्षा ही मनुष्यों को अच्छे संस्कार, नैतिक आचरण सिखाता है।

## 5.6 वर्ग संघर्ष

आज व्यक्ति ने समाज को अनेक देशों, जातियों, सम्प्रदायों, धर्मों और वर्गों में विभाजित कर रखा है। समाज के उस वर्ग को सर्वहारा कहते हैं जो अपने श्रम को बेचकर अपनी जीविका चलाता है। जैसे सूर्यबाला का उपन्यास 'अग्निपंखी' का नायक जयशंकर की माँ अपनी जमीन को पास गिरवी रखकर घर के खर्चों में लगा देती है। वह कहती है - "जनानियों के उधार खातों और गिरवी रखी चीजों का कारोबाल सफलनाथ की भौजाई ही संभालती थी। सुरमेदार आँखों और पान रचे होटों वाली गठीली भौजाई से पैसे लेते हुए माँ ने आखिर बार करघनी की तरफ देखा था।" <sup>83</sup>

इस सभी वर्गों दिखाई पड़ने से भी शोषक वर्ग शोषित वर्ग को मूल रूप से शोषित करते हैं। इन शोषित से उनका अस्तित्व पर कोई सर्वहारा मुनाफा नहीं बनाता बल्कि श्रमिक वर्ग इन खेती बारी के श्रम की मांग पर निर्भर रहते हैं। 'चुटकी भर चन्दन' का प्रभात समाजवाद के मध्यवर्ग के मजदूर वर्ग को सम्बोधित करते हुए कहता है - *“शायद दुनिया की यही रीति है, कमजोर को और कमजोर करना। मनहूस को और मनहूस करना। चूसे नीबे को और चूसना। किसी जर्जर और खस्ता वस्तु पर और आघात पहुँचाना।”*<sup>84</sup> इस संघर्ष का समाप्त समाजवादी क्रांति से यह समाप्त है। मगर फिर भी यह शोषक वर्ग शोषित करते ही हैं।

### 5.6.1 शोषक वर्ग

हमारे समाजवादी व्यवस्था के अनुसार मजदूर वर्गों को उसके परिश्रम का वेतन नहीं मिलता। यह शोषक वर्ग शोषित वर्ग को शारीरिक कष्ट नहीं देता, बल्कि वह उनको जोंक की तरह चूसता रहता है तथा उसके हृदय को धीरे-धीरे खोखला बनाता है। वह मनुष्य ही नहीं समझता। देवराज पथिक का उपन्यास 'जर्जर सेतु' का शीलभद्र दीपक से कहता है - *“अमीर और गरीब का कोई रिश्ता नहीं होता। धनवान कभी गरीब के काम नहीं आ सकता। धनवान से मित्रता तो धनवान की स्वार्थी मनोवृत्ति का प्रतीक है, वह गरीब से भरपूर लाभ उठाकर आम की चूसी हुई गुठली की तरह उसे फेंक देता है।”*<sup>85</sup>

आज मजदूर वर्ग की स्थिति अत्यन्त शोचनीय बन गयी है। चाहे वे ईमानदारी एवं परिश्रम से काम करें उनका पैसे आधा ही मिलता। बनाफर चन्द्र का उपन्यास 'सवालियों के बीच' का दिनेश कहता है - *“मिल का अधिकतर मजदूर जो इस खाते में काम को आता है ईमानदारी से काम कर ही नहीं सकता। यदि वह परिश्रम और ईमानदारी से रात के आठ घंटे काम करता है तो प्रायः उसे तीन-चार रुपये ही*



अधिक मिल ही नहीं सकते और तीन-चार रुपये में बनता ही क्या है? आठ बारह आने की तो बीड़ी ही फूंक देता है मजदूर।”<sup>86</sup>

शोषित निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति का कारण है कि वे उचित - अनुचित में भेद करने में सक्षम नहीं, क्योंकि वे अशिक्षित हैं, अंधानुकरण की प्रवृत्ति के रहते हुए उनका जीवन नरक की भांति होता है। बृजलाल हांडा के ‘मंगलसूत्र’ उपन्यास में शरणबन्धु निम्न वर्ग की टूटती हुई स्थिति को समझता है इसलिए वह समाज में फैली गरीबी को दूर करने की ओर प्रयत्नशील है। वह चन्द्र से देश में फैली दरिद्रता के लिए निम्न वर्ग की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास कर रहे हैं। वह कहता है - “हमारे देश की अधिकांश जनता अशिक्षित होकर गरीबी की रेखा के नीचे नारकीय जीवन व्यतीत कर रही है। उनका खुलेआम शोषण हो रहा हो। उनकी ओर देखने की किसी को फुर्सत नहीं।”<sup>87</sup>

अपने मजदूरी की मांग मिलने के लिए मजदूर वर्ग मार्क्सवाद एवं लेनिन के समाजवादी के अनुसार हड़ताल ही श्रमिक वर्ग का प्रमुख हथियार था, मगर इस हड़ताल से भी उनका जीवन गरीबी व अति शोचनीय बन गया। इस कारण मजदूर वर्ग हड़ताल के लिए भी मौजूद होने से डरते हैं। बनावर चन्द्र का उपन्यास ‘सवालियों के बीच’ में दिनेश अपनी पत्नी से कहता है - “इस माह बहुत कंजूसी से घर चलाना पड़ेगा। मैंने पत्नी से कहा तन्खाह आधी मिली है। हड़ताल के पैसे कट गये हैं। फिर दूध बन्द कर दो। बच्चे कैसे रहेंगे?”<sup>88</sup>

### 5.6.2 जमींदार व किसान वर्ग

जमींदार वर्ग खेती बाड़ी में किसानों का शोषण करता है। यही जमींदार शोषक वर्ग होता है। अशिक्षित होने तथा उद्योग नहीं जानने के कारण उनका लाभ उठाते हैं। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ का कृष्णकुमार का दोस्त रमेश गाँव

वालों से कहता है - “इन्द्रसेन से आप लोग डरते हैं? सिर्फ मैं ही नहीं सब डरते हैं उससे। आखिर क्यों? क्रांति के आगे तो बड़े-बड़े महारथी को झुकना पड़ा है। इसके सामने इन्द्रसेन की क्या बिसात है। वह तो एक छोटा-सा जमींदार है।” <sup>89</sup>

रमेश मार्क्सवादी अनुयायी होने के कारण वह क्रांति करना चाहता है। इन मजदूर वर्ग का जीवन उन सामंती व्यक्तियों के पालतू जानवरों के जीवन से भी दयनीय जीवन जीते हैं। उन्हें उनके आवास से लेकर खान-पान तक की दुविधाओं का सामना करना पड़ता है। डॉ० कश्मीरी लाल का उपन्यास ‘खूंटे’ का सत्तू नत्थू के घर में नौकर का काम करता है। वह अमीर-गरीब के शोषण को देखकर कहता है - “क्यों उसका धरम भ्रष्ट किया गया। क्यों हर ताकतवर यह समझता है कि वह अपने नीचे पड़े ही दीन-हीन को जब चाहे मसल सकता है - तड़पा सकता है। इस पत्थरों की दुनिया में गरीब होना अपराध है। बच्चों की दुनिया में गरीब सिर्फ एक अदद बकरी है।” <sup>90</sup>

अगर शोषक वर्ग अर्थ लोलुपता की चाह और समाज, राष्ट्र, देश की उन्नति चाहते हैं तो समाज की उन्नति समग्र में निहित होगा। वे अहं, ईर्ष्या, लोग, द्वेष आदि भाव को छोड़कर उन्हें शोषण वर्ग न समझकर उन्हें भी मानवीयता का दर्जा देना चाहिए।

### 5.6.3 शोषित वर्ग

भारत में श्रमिक वर्ग ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति तथा औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था की उपज है। आज शोषण का बोलबाला अधिक होने लगा। संसार में प्रत्येक प्राणी को स्वतंत्र रूप से जीने का अधिकार है मगर इनकी स्वार्थ पूर्ति, उसके अधिकारों वे वंचित करना अन्याय है। शहरों में पूँजीपति श्रमिकों की मजदूरी में ही कटौती करके आधी मजदूरी ही देते हैं। इस कारण जब श्रमिक उनका विरोध करते

हुए हड़ताल करते हैं। बनाफर चन्द्र का उपन्यास 'सवालियों के बीच' में कारखानों में पूँजीपति वर्ग मजदूरी वर्ग का विरोध होता है जिसमें नायक लखीम कहता है - "हड़ताल में हम लोगों का जो पैसा कट गया है उसका क्या होगा? प्रसंगवश हो सकता है कि हड़ताल छुट्टी में बदल जाये और उसका पैसा भी मिल जाये। लेकिन यह तय तभी हो पायेगा जब घाटे की भरपाई हो जायेगी।" <sup>91</sup>

शोषित वर्ग जितना भी मेहनत करे उसे मजदूरी नहीं मिलती। उन्हें गरीब रहना पड़ता है। 'चुटकी भर चन्दन' उपन्यास का प्रभात कहता है - "जीवन भर तुमने हाड़-तोड़ मेहनत की परन्तु गरीबी अपनी जगह पर कायम रही - तुम्हारी श्रम बूढ़े उसे न तो गला सकी और न ही उसे मना पायी।" <sup>92</sup>

कारखाने के मजदूर वर्ग की तरह जमींदार किसानों की समस्या भी खड़ी हो जाती है। वह किसान की भूखमारी, बेसेर की तलाश का कारण बन जाती है। इस कारण किसान वर्ग के बच्चे रोजी-रोटी के लिए अनेक भ्रष्ट कार्य करने के लिए बाधित हो जाते हैं। रामदेव शुक्ल का उपन्यास 'गिद्धलोक' का किशन पापा से कहता है - "आपके गाँव के किसान की समस्या खाते-पीते आदमी की समस्या है। उनका लड़का अपने को गरीब मानता है तो इसलिए नहीं की गरीब है, बल्कि इसलिए कि अमीर होने की इच्छा उसके भीतर अपने आप से अधिक है।" <sup>93</sup>

इस प्रकार जमींदारी, ठेकेदारों आदि से जुल्मों को सहना भी पाप बन जाता है। समाज में अर्थ की प्रधानता अधिक मात्रा में बढ़ती जा रही है। यह अर्थ ही समाज में निहित वर्ग, जाति आदि व्यवस्थाएँ को अलग बनाती है। यह मनुष्यों के द्वारा बनी गई व्यवस्थाएँ मनुष्यों के जरिये ही तोड़ी जाती है जो कि यह व्यवस्था समाज अपने हितोपदेश के लिए ही ग्रहण किया गया है। कोई ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं होना चाहिए। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'पिंजरे के पंछी' का हेमन्त का दोस्त रमेश नौकरी की तलाश में शहर जाके गाँव वापस आता है, तब इन्द्रसेन हेमन्त के किये

जुल्म का पता चलता है, इस वितृष्टा को सोचकर समाज को सम्बोधित करते हुए कहता है - “रमेश के मन में रोष की हल्की-सी लहर फैल गयी। बोली वह - “क्या सामाजिक षडयंत्र? मैं अच्छी तरह जानता हूँ कितनी ताकत है - आपके समाज में। आप जानते नहीं - जुर्म सहना भी एक प्रकार का पाप है।”<sup>94</sup>

उच्च वर्ग के लोग अपने घर के नौकरों पर भी जुल्म करते हैं। लेकिन शहरों में उच्च वर्ग इन्सानियत को भुला देते हैं। डॉ. कश्मीरी लाल का उपन्यास ‘खूँटे’ का नत्थू उनके नौकरों से सत्तू लाल से मानवीयता का व्यवहार नहीं करता। वह अपने गुस्से को नौकरों पर दिखाता है। उन्हें पीटता है, मारता भी है। उनके परिवारों का नाम भी बदनाम करता है। साथ ही उनका वेतन भी पूरा नहीं देता। सत्तू नत्थू के इस बुरे व्यवहार को कोसते हुए कहता है - “नत्था से पिटते-पिटते उसने महसूस किया कि इस संसार में दो जातियाँ हैं - एक मनुष्यों की, दूसरी पशुओं की। ये पशु हैं। सत्तू यह भी सोचते हुए कहता है कि ‘जब सत्तू नीबू निचोड़ता तब उसे लगता कि वह स्वयं एक नीबू है।’”<sup>95</sup>

इसी उपन्यास में नत्थू उसके तनख्वाह भी काट लेता है। धन का असमान वितरण ही समाज को दो वर्गों में बांटता है। आज समाज महसूस करने लगे है कि संजय की प्रवृत्ति ही समाज के बीच खाई खड़ी की है। जब तक इस लोलुप भरी प्रवृत्ति का नाश नहीं किया जा सकता। नरेन्द्र कोहली का ‘अभिज्ञान’ उपन्यास में सुदामा अपने मित्र श्रीकृष्ण के पास मिलने जाते हैं। वहाँ अमीर और गरीब वर्ग की असमानता धन संजय की प्रवृत्ति के ही परिणाम स्वरूप कायम है, उसे रोकना होगा। तभी सुदामा कह रहे हैं - “क्या मनुष्य ऐसे समाज का निर्माण नहीं कर सकता जहाँ व्यक्ति अपनी और अपने परिवार की आवश्यकताओं से निश्चित होकर अपना काम करें। उसके मन में संजय की इच्छा ही न जागे, वह दूसरों को वंचित कर

अपना भविष्य सुरक्षित करने का प्रयत्न न करे? यदि ऐसा समाज बन जाए तो सुदामा किसी कृष्ण की कृपा का आकांक्षी क्यों हो?" 96

अर्थात् मनुष्य चाहे उच्च वर्ग हो या निम्नवर्ग में इंसान की मर्यादा देना चाहिए। हमें दूसरों से सद्व्यवहार भर्त्सना ही मानव-जीवन का मूल्य बनता है। इन भेदों को मिटाकर प्रेम पूर्वक समाज में स्थापित करना चाहिए।

## 5.7 बेरोजगार पीढ़ी

बेरोजगारी एक पुराना रोग है जो समय गुजरने के साथ-साथ बिगड़ता जा रहा है। शिक्षा का पहला उद्देश्य है सामाजिक परंपराओं एवं ज्ञान का संरक्षण एवं नई पीढ़ी को यह पूँजी सौंपना। शिक्षा और बेकारी की समस्या निर्धनता से भी मध्यवर्ग ग्रस्त रहा है। शिक्षा प्राप्त व्यक्ति से ज्यादा नौकरी मिलने वाले सदस्य ही जरूरत से ज्यादा बना है। उन्हें परिवार का बोझ संभालना पड़ता है। सुदेश भाटिया का उपन्यास 'आघात' का नायक विजय कहता है - "माता-पिता, पत्नी एवं पुत्री के पालन-पोषण का भार उसके कंधों पर है, लेकिन इतनी बड़ी डिग्री और इतना अच्छा परीक्षाफल होने पर भी उसे नौकरी के लिए दर-दर की ठोकरें खानी पड़ेंगी।" 97

अगर धन प्राप्ति का कोई साधन न होने के कारण निर्धन व्यक्ति का जीवन अत्यन्त कटु हो जाता है। उसके पास जो भी है उसे बेच देता है। कुसुमांजलि का उपन्यास 'सीपी भर सुख' का नायक अपने परिवार को संभालने के लिए अपनी कला को ही रद्दी वाले के पास बेच देता है। परिवार के आर्थिक विषमता से बचाने के लिए अमूल्य चीजें को बेच देता है। लेखक कहते हैं। - "एक व्यक्ति जो कवि था, कतिवताएँ लिखता था, पैसे के लिए बिक गया पैसा। पैसा हम खा नहीं सकते, पहन नहीं सकते, तब उसके पीछे ऐसी भागम भाग क्यों?" 98

आज हमारे भारत में गरीबी का स्तर दिन-भर-दिन बढ़ता जा रहा है। बेरोजगारी में शिक्षित लोगों के सामने ही बेरोजगारी का प्रश्न नहीं है। यह ग्रामीण अशिक्षित और अर्धशिक्षित युवक भी इस अभिशाप से न बच सके। औद्योगिकरण के विकास से बेकारी की समस्या अति तीव्र गति से फैलने लगी। सूर्यबाला का उपन्यास 'अग्निपंखी' का नायक शहर में आकर नौकरी के लिए दर-दर फिरता है। पहले से नौकरी नहीं मिलती, ऊपर से उसके पास बचे-खुचे पैसे भी खत्म हो जाते हैं। सोचता है - "ऊपर से लौटने पर, घर में दाखिल होने के साथ ही थके पैरों, झल्लाए दिमाग के बावजूद एक सिर से कहाँ रहे दिन भर?... नौकरियाँ लगी कहीं कि आज भी आने-जाने का पैसा दंड ही गया। ऐसे पढ़े से तो बे पढ़े ही भले भैया। राजगद्दी न सही, अपनी लुंगडी-पुंगडी में अपनी मेहनत का खाते हैं। किसी के आसरे तो नहीं। दूसरों की मेहनत का पैसा हराम की कमाई ही तो हुई।" <sup>99</sup>

इस औद्योगिक ने घरेलू उद्योगों को अस्थायी नौकरी को कम व क्षतिपूर्ति बना दिया है। सूर्यबाला के उपन्यास 'सुबह के इंतजार तक' की नायिका मीनू के पिता को नौकरी नहीं मिलती। जो नौकरी मिली वह भी अस्थायी बन गयी। उसकी बेटी सोचती है - "पिता जी को कोई नौकरी करते नहीं, बस लगातार दिन के दिन कड़ी धूप कड़ी ठंडक और बारिश में नौकरी तलाश करते हुए ही देखा। कभी कुछ महीनों की नौकरी लग जाती। कुछ दिन अपेक्षाकृत चैन से कहते, फिर भी पुरानी तलाश और दर-दर के ये सिलसिले जुटने भी कम होने लगी।" <sup>100</sup>

आज अनेक कारणों से युवा पीढ़ी को काम नहीं मिल रहा है। राज्य के लिए सम्भव नहीं कि सभी को रोजगार दे सके और पढ़े-लिखे व्यक्ति अपने पैतृक धंधों का अपनाते नहीं। मजबूरी से अपना लेते हैं। सुदेश भाटिया का उपन्यास 'आघात' का अंश में वह अपनी कुटीर उद्योग करने लग जाता है। वह अपने चाचा से कहता है - "इतनी उम्र बिता दी तुमने नौकरी की तलाश में और अब दुकान खोलने की सोच

रहे हो? इतनी पूँजी है तुम्हारे पास? उसी के लिए तो आपके पास आया हूँ चाचा।”<sup>101</sup>

बेकारी सर्वप्रथम प्रभाव परिवार पर पड़ता है। परिवार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ऋणग्रस्त हो जाता है। युवा नौकरी की तलाश में परिवार के अन्य सदस्यों के मन में आघात पहुँचाता है। चन्द्रकांता का उपन्यास ‘अंतिम साक्ष्य’ में विजय भी कम्पों को पूरी खुशियाँ नहीं दे पाता। विजय की नौकरी चली जाती है। वह सोचता है और लेखिका के द्वारा यह सन्दर्भ प्रस्तुत किया है - “जगह की तंगी, उपयुक्त नौकरी की तलाश, अभिजात जीवन न जी पाने की लाचारी और न जाने कितनी विवशताओं का हवाला देकर वह कम्पों को परिजात करता रहा था।”<sup>102</sup>

इस बेरोजगारी ने युवा पीढ़ी को सुख-शांति से जीने में दुष्कर बना दिया है। उसे किसी भी जगह नौकरी में युवा पीढ़ी को सुख-शांति से जीने में दुष्कर बना दिया है। उसे किसी भी जगह नौकरी नहीं मिलती। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास ‘चुटकी भर चन्दन’ का प्रभात अपने दोस्त से कहता है वह शहर में नौकरी की तलाश में आता है उसे प्राइवेट फर्म में काम मिलता है जब चाहे निकाल देते हैं। उसका दोस्त कहता है - “प्रभात, मिलते रहना यार... यह तो हम लोगों के साथ भी हो सकता है। इन प्राइवेट फर्मों पर कोई भरोसा नहीं।”<sup>103</sup> अनेक कारणों से बेरोजगारी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है।

### 5.7.1 महंगाई के कारण बेरोजगारी की वृद्धि

यह महंगाई युवा पीढ़ी के मासिक वेतन से अधिक बढ़ने लगी है। इस कारण परिवार अपनी न्यायपूर्वक आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर पा रहा है। इस बढ़ती हुई आर्थिक तंगी से परिवार के खर्चे नहीं चला सकते। डॉ. विष्णु पंकज का उपन्यास ‘दूआ हुआ आदमी’ में बिस्मिल कहता है - “बात को यूँ न उड़ाओं मिया। आमदनी

और बढ़ाने की कोशिश करो ना देखते नहीं, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, पिक्चर, नौकर-चाकर, गाड़ी, टैक्स न जाने क्या-क्या खर्चें हैं। सौ-डेढ़ सौ रुपये रोज में घर का खर्च नहीं चलेगा।”<sup>104</sup>

अत्यधिक यंत्रीकरण से महंगाई के कारण लाखों लोग बेकार हो गये हैं। पूँजीपति यन्त्रों के उपयोग से उत्पादन बढ़ाकर सम्पत्तिशाली हो रहे हैं और गरीब श्रमिक बेकारी से पीड़ित है। उन्हें परिवार का देखभाल भी नहीं कर पा रहे हैं। डॉ. देवराज पथिक का उपन्यास ‘जर्जर सेतु’ में शीलभद्र के परिवार के बारे में लेखक कहते हैं “शीलभद्र की कमाई इतनी नहीं थी कि वह परिवार का भरण-पोषण भली भाँति कर पाता। छोटी-सी नौकरी के अतिरिक्त जब कुछ काम मिल जाता नींद की परवाह किये बिना जी जान से जो बन पाता वह कर पाता।”<sup>105</sup>

नौकरी पाना आज के युग में रेगिस्तान में से पानी निकालने के समान हो गया है। हृदयेश का ‘दंडनायक’ उपन्यास में रोशनसिंह गरीबी से परेशान है तथा बेरोजगार है। उसकी उम्र भी इतनी ज्यादा हो गयी है कि वह सरकारी नौकरी करने के काबिल नहीं रहा। बेरोजगारी को दूर करने के लिए कम आय वर्गों के आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए बैंक से कम ब्याज पर ऋण दिया जाता है। इसी के माध्यम से रोशनसिंह अपनी बेकारी को दूर कर पाता है - “वह बैंक से वित्तीय सहायता प्राप्त करता है, साथ ही उसके ससुराल के एक संबंधी जो कि जिला उद्योग कार्यालय में थे, उनकी मदद और उसकी अपनी भागदौड़ से उसे बीस हजार रुपये का कर्जा भी मिल गया, उन रुपयों से उसने पिसे हुए मसाले का काम शुरू कर दिया।”<sup>106</sup>

अर्थात् यही महंगाई के कारण परिवार को आर्थिक विषमता से जूझना पड़ता है, जो उनको रोजी रोटी या भूखमरी सहनी पड़ती है।



### 5.7.2 भूखमरी/रोजी रोटी की तलाश

जनसंख्या की वृद्धि, महंगाई की वृद्धि ने मनुष्यों के बेकारी बढ़ा दी। सूर्यबाला का उपन्यास 'अग्निपंखी' का नायक जयशंकर शहर में नौकरी के लिए ढूंढता है। उसे रोजगार की तरह ही नौकरी करनी पड़ती है। इस आमदनी से उसे परिवार को संभाल नहीं पा रहा है। उसने अपने बच्ची के लिए दवा के बचे पैसों से दूध का डिब्बा खरीदता है। "दवा के बचे पैसों से वह सबसे पहले बच्ची के लिए एक डिब्बा मिल्क पाउडर लाया। पिछले पंद्रह बीस दिनों से पहले वाले डिब्बे में बचे थोड़े से पाउडर का ही ज्यादा से ज्यादा पानी और जरा सी चीनी या गुडा मिलाकर उसे दिया जाता था। इसलिए बच्ची अक्सर चिल्लाती-रोती ही रहती।" <sup>107</sup>

औद्योगिक यंत्रीकरण शहर के युवा वर्ग व गाँव के श्रमिक वर्गों का रोजी-रोटी छीन लिया है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन' का प्रभात स्नातकोत्तर डिग्री उत्तीर्ण की है। उसके दादा खेतीबाड़ी का काम करते हैं। वे दोनों निमंत्रित नौकरी न मिलने के कारण अर्थाभाव से भूखमरी ही रहते हैं। प्रभात अपने दादा के भूख को मिटाना चाहता था। वह कहता है - "उसमें मात्र चार रोटियाँ थी। पिता कई बार दुकान पर राशन लेने गया था, लेकिन उधार राशन, दुकानदार ने नहीं दिया था। न पिता ने सुबह से खाना खाया था और न माँ ने ही। उसने पिता की उदासी का कारण अच्छी तरह से भाँप लिया था और उसके सामने रोटियाँ रखते हुए कहा था 'बापू तुम्हें भूख सता रही है ना।'" <sup>108</sup>

जिनके पास संपत्ति सिफारिशे आदि को तभी नौकरी मिलती है। दूसरे गरीब शिक्षित वर्ग को गरीब ही रहना पड़ता है, उन्हें आगे बढ़ने के लिए कोई रास्ता नहीं होता, एकमात्र सहायता, नौकरी भी नहीं मिलती इस कारण उन्हें ऋणग्रस्त होना पड़ता है और रोजी-रोटी के लिए दूसरों से पैसे मांगना पड़ता है। राजदेव प्रियंवर का

उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन' का प्रभात अपने माँ से कहता है "घर में आज कुछ नहीं है नमक भी दो दिन से नहीं है... कल तो कमला के घर से लकार किसी तरह काम चलाया, लेकिन आज तो मैं नहीं मांगने चांगने नहीं जाऊँगी। और बोला, आज कहीं से मांग-चांग कर काम चलाओं आज कहीं जाने का दिल नहीं कर रहा। आज शाम को पैसे रुपये की व्यवस्था करूँगा कहीं से।" <sup>109</sup>

अमीरों परिवार के मनुष्यों को इसका अभाव नहीं रहता। इसलिए उनको कष्ट का अनुभव नहीं पहचानते। सूर्यबाला का उपन्यास 'दीक्षांत' में शर्मा जी दूसरे अमीर घराने के शिक्षकों को देखकर कहता है - "ये किताबें कैसे गंदी कर ली... कायदे से रखे तो आधे से ज्यादा ही दाम में किसी साथ को दे दो अगले साल..." <sup>110</sup>

मध्यवर्गीय परिवार आर्थिक विषमता से जूझते हैं। उन्हें रोजी-रोटी के अलावा बीमारी के इलाज के लिए पैसा नहीं होता। इस कारण गरीब व्यक्ति जितना जनसंख्या का वृद्धि करते हैं उतने ही उनकी मृत्यु संख्या बढ़ती है। डॉ० विष्णु पंकज का उपन्यास "टूटा हुआ आदमी" का बिस्मिल की माँ कहती है - "आज और प्याज रोटी खा ले - आज इतने ही पैसे हैं। तेरे अब्बा भी तो कोई काम नहीं करते पड़े-पड़े खाते हैं। घर में पाँव जाने, थोड़ी आमदनी खर्च ज्यादा कैसे काम चले? तेरे अब्बा को दमे की बीमारी अलग है। इनके इलाज में अलग से पैसे खर्च होते हैं।" <sup>111</sup>

मध्यवर्गीय परिवार को रोजी-रोटी की तलाश में अनेक परिस्थितियों में समस्याओं का शिकार होना पड़ता है।

### 5.7.3 बसेरे की तलाश

रोजी-रोटी के साथ-साथ बसेरे की तलाश भी आदमी के लिए एक समस्या बन चुकी है। कुछ महलों के चारो ओर किला सदृश दीवार बनाकर दर्जनों कुत्ते पाल कर अमीर लोग रहते हैं तो सड़क पर स्वतंत्रा-भारत के वोटर धूप, वर्षा सहकर, खाना

पकाकर, खाते-पीते, सोते-जागते हैं। गरीबों को परिवार को संभालने के लिए घर-बार की आवश्यकता है। सूर्यबाला का उपन्यास 'अग्निपंखी' का नायक जयशंकर शहर में नौकरी करके बसने के लिए उसे एक भी जगह उसके हैसियत आमदनी के अनुसार नहीं मिल पाती। "नीचे अखबार ऊपर खेस, थैले का तकिया, काट ली रात कहीं भी रहने को घर नहीं तो क्या, सारा जहाँ हमारा। अकेले नहीं, अपने जैसे हजारों के साथ। बगल वाले परिवार में तो माँ-बाप प्लास्टिक की शीट पर दूधमुँहा बच्चा गुदड़ी पर और बाकी तीनों बच्चे एक बोरी में... पहली सुबह बोरी में ठूसे तीनों बच्चों को देखकर एक बारगी तो वह सन्न रह गया फिर अंदर-अंदर ठठाकर हंसा - यह शहरी बच्चों को बेडरूम है।" <sup>112</sup>

आज शिक्षित युवकों को भी नौकरी मिलना एक समस्या बन गई है। मकान नौकरी के अभाव से शादी-शुदा पत्नी को गाँव छोड़कर शहरों में आकर नौकरी करते हैं। मकान और किराया देने की असमर्थता ने कई युवकों को विवाह समस्या बनी हुई है। रामधारी सिंह दिनकर का उपन्यास 'काली सुबह का सूरज' में नरेन्द्र कहता है - "बिना किसी नौकरी के शादी नहीं करूँगा। आखिर बिना नौकरी के शादी करने की उसकी जिद प्रतीक्षा की अवधि मान ली गयी थी।" <sup>113</sup>

युवक-युवती को परिवार बसाने के लिए घर-बार की आवश्यकता होती है। परिवार के पालन-पोषण के लिए लोग कुछ भी राह ढूँढ लेते हैं। किसी प्रकार के काम करते हैं। चंद्रकांता का उपन्यास 'अंतिम साक्ष्य' में मीना को संगीत मास्टर अपने जीवन की कहानी बताता है। वह आर्थिक तंगी से जूझने के कारण इस वैश्यावृत्ति में संगीत की डिग्री होने के बावजूद परिवार को संभालने के लिए सिखाता है। वह कहता है - "तुम नहीं जानती, संगीत की डिग्री लेकर मैं महीनों दर-दर भटकता रहा। नाम की तलाश में तन-मन से टूटा। तभी बाई के यहाँ कला का सौदा करने गया। सौदा न करता तो पत्नी और बच्चों को पालता कैसे?" <sup>114</sup>

मध्यवर्गीय परिवार के युवक शहर में नौकरी करते वक्त किराये के पैसे देने के लिए वे एक ही घर में दो-तीन युवक साथ रह लेते हैं। तब उनको अलग-अलग किराया देना नहीं पड़ता। आमदनी में बचत ही बनती है। उससे उनका बसेरे का इंतजाम भी बन जाता है। ममता कालिया का उपन्यास 'दौड़' में लेखिका कहती है -  
*“अटैची में कपड़े, आँखों में सपने और अंतर में आकुलता लिए न जाने कहाँ-कहाँ से नौजवान लड़के नौकरी की खातिर इस शहर में आ पहुँचे हैं। बड़ी-बड़ी सर्विस इंडस्ट्रीज में कार्यरत से नवयुवक सवेरे नौ से रात नौ तक अधिक परिश्रम करते हैं। लड़के मिलकर तीन या चार हजार तक के किराये का फ्लैट ले लेते हैं और सभी शेयर करते हैं।”*<sup>115</sup>

अर्थात् रोजी-रोटी, बसेरे की तलाश के लिए मध्यवर्गीय मनुष्य लाख कोशिश करके इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। वे दुनियाँ के सामने इज्जत का जीवन जीना चाहते हैं।

#### 5.7.4 भ्रष्टाचार

भारतवर्ष में शिक्षित बेरोजगारों समस्या अधिक बनती जा रही है। शिक्षा का प्रत्येक स्तर नौकरी के विशेष स्तर से जुड़ा हुआ है। मगर आज समाज में सिफारिश, रिश्तों के अनुसार काम मिलता है। चाहे युवक स्नातकोत्तर में प्रथम श्रेणी में हो मगर उनके योग्यता को नहीं देखा जाता है। रिश्तों, सिफारिश अयोग्य युवक-युवती को नौकरी दिला देती है।

सूर्यबाला का उपन्यास 'सुबह के इंतजार तक' में बुलू के माता-पिता कहते हैं उनकी आर्थिक स्थिति उसे पढ़ा नहीं पाये क्योंकि वे जानते थे लोग घूस, रिश्तों से ही काम आगे बढ़ाते हैं। *“बुलू, आजकल पढ़ाई-लिखाई में कुछ रखा नहीं बेटे। तेरे लिए*

कोई नौकरी ढूँढे तो कैसा रहे। देख, आजकल तो बी.ए., एम.ए. वाले भी बेकार ही घूम रहे हैं ना।”<sup>116</sup>

‘चुटकी भर चन्दन’ उपन्यास में भी प्रभात को नौकरी नहीं मिलती। जहाँ भी इंटरव्यू है वहाँ सिफारिश पूछी गयी। वह कहता है “समय पर दो जून की रोटियाँ नसीब नहीं तो घूस कहाँ से दे पायेगा... हित... मित्र ऐसे कोई बड़े पोस्ट पर नहीं कि उसके लिए कोशिश पैरवी कर सकते।”<sup>117</sup>

आज भारतीय समाज में बेरोजगारी का कारण इस रिश्वत, चोरी, मुनाफाखोरी, काला बाजारी आदि के कारण ही होती है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र का उपन्यास ‘यातना घर’ का नायक हजारी कहता है जब वह पुलिस के उद्योग के लिए परीक्षा लिखता है तब वह समाज को सोचते हुए कहता है - “कोई मृत्यु को याद नहीं करता। आज के भ्रष्ट और आचरणहीन समाज में याद रखने लायक बातें ही बदल गई हैं। चोरी, मुनाफाखोरी, काला बाजारी, रिश्वत, पैसा... पैसा...पैसा...।”<sup>118</sup>

समाज के अतिरिक्त परिवार में ही एक सदस्य ही कमाने वाला हो तो दूसरे घर बैठे आवश्यकता की पूर्ति कर लेते हैं। उनका लाभ लेते हैं। डॉ. विष्णु पंकज का उपन्यास ‘टूटा हुआ आदमी’ का बिस्मिल आर्थिक तंगी से विरक्त होकर कहता है - “मेरे मुकद्दर में तो बस कर्जा चुकाना ही लिखा है। सबका कर्जा चुका रहा हूँ। सब मिलाकर मुझे तोड़ते जा रहे हैं अहमद। ताबड़तोड़ मेहनत और घर की फिक्र ने मुझे तपेदिक का मरीज बना दिया है। पैसे की कमी से अपना इलाज तक नहीं करा सकता।”<sup>119</sup>

अर्थात् इस भारतीय समाज में युवक नौकरी करना चाहता है, मगर उसे योग्यता के अनुसार नौकरी नहीं मिल पाती। आज नौकरी मिलना प्रतियोगिता बन चुका है। उसमें भी सरकार नौकरी मिलना बेहद मुश्किल बन गया है। हृदयेश का उपन्यास ‘दंडनायक’ का ठाकुर रोशनसिंह कहता है - “सरकारी नौकरी के लिए

उसकी बीत चुकी है। होती भी तो वह क्या पा लेता? सुनते हैं कि नौकरी पाना भी आज बहुत मुश्किल है, भगवान को पाना जैसा। हजारों बी.ए., एम.ए. डिग्री याकता जूती चटखारते घूम रहे हैं। छोटे तबके के आदमी के लिए सच में आज बुरा वक्त है।” 120

अगर सरकार इन नौजवानों को ध्यान में रखकर रिश्त, घूस लेने वालों को दंड देगी तभी इस समाज में गरीब शिक्षित व्यक्तियों को बेरोजगारी से छुटकारा मिल पायेगा। उसकी आर्थिक स्थिति की समस्या भी खत्म होगी।

“आज मानवीय रिश्ते उसी रूप में मान्य नहीं रहे जैसे पहले थे। संयुक्त परिवार के विघटन और रोजी-रोटी की तलाश में परिवार के सदस्यों को बाहर जाकर बस जाना आदि के परिणाम स्वरूप परिवार के सदस्य अपनी छोटी-छोटी इकाइयों तक ही अपने को सीमित रखने लगे।” 121

## सन्दर्भ सूची

1. खूंटे, डॉ. कश्मीरी लाल पृ: 83
2. The Joy of Working : Denis Wailley and Reni L. Ditt., P.264
3. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 17
4. आकांक्षा, मधु धवन, पृ: 35, 36
5. महासमर-कर्म, नरेन्द्र कोहली, पृ: 175
6. खूंटे, डॉ. कश्मीरी लाल, पृ: 73
7. स्वाधीनोत्तर हिन्दी साहित्य और भारत, डॉ. मदनमोहन तरुण, पृ: 183
8. मैं सृष्टि की आत्मा हूँ, मधु धवन, पृ: 61
9. संयुक्ताक्षर, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 103
10. मैं सृष्टि की आत्मा हूँ, मधु धवन, पृ: 79
11. टूटे सपने अनुज, पृ: 55
12. संयुक्ताक्षर, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 99
13. A christian method of moral judgement: A Philip Wogran, P.95
14. जुर्माना, मधु धवन, पृ: 55
15. जुर्माना, मधु धवन, पृ: 63
16. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 33
17. करवट लेता वक्त, मधु धवन, पृ: 82
18. तोड़ो कारा तोड़ा, नरेन्द्र कोहली पृ: 11
19. समर्पिता, बृजनारायण सिंह, पृ: 6
20. आकांक्षा, मधु धवन पृ: 27
21. रिश्तों के बीच, पुष्पा हीरालाल पृ: 34, 35
22. हैमबरगर, कमल कुमार, पृ: 36

23. आकांक्षा, मधु धवन, पृ: 11
24. शतरूपा, यादवेन्द्र शर्मा पृ: 119
25. तलाक दर तलाक, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 73
26. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 151
27. दौड़, ममता कालिया, पृ: 71
28. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 155
29. शतरूपा, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ: 88
30. जुर्माना, मधु धवन, पृ: 121
31. तलाक दर तलाक, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ: 71
32. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 20
33. जुर्माना, मधु धवन, पृ: 56
34. साथ सहा गया दुख नरेन्द्र कोहली, पृ: 43
35. उस मोड़ पर, मधु धवन, पृ: 66
36. अक्षरों से आगे मास्टरजी, भैरव प्रसाद गुप्त, पृ: 45
37. आकांक्षा, मधु धवन, पृ: 82
38. घूँघट, सुदेश भाटिया, पृ: 55
39. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 77
40. जुर्माना, मधु धवन, पृ: 79
41. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, पृ: 171
42. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 16
43. कलैक्टिड वर्क्स ऑफ कार्ल मार्क्स, पृ: 341
44. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 21
45. टूटा हुआ आदमी, डॉ. विष्णु पंकज, पृ: 8



46. खूँटे, डॉ. कश्मीरी लाल, पृ: 83
47. घूँघट, सुदेश भाटिया, पृ: 16
48. समर्पिता, ब्रजनारायण सिंह, पृ: 6
49. सूखे आँसू, सविता राघव अविनाश, पृ: 17
50. टूटा हुआ आदमी, डॉ. विष्णु पंकज, पृ: 48
51. घूँघट, सुदेश भाटिया, पृ: 53
52. अक्षरों के आगे मास्टरजी, भैरव प्रसाद गुप्त, पृ: 42
53. घूँघट, सुदेश भाटिया, पृ: 40
54. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 76
55. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 47
56. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, पृ: 162
57. सवालियों के बीच, बनाफर चन्द्र, पृ: 37
58. शतरूपा, यादवेन्द्र शर्मा, पृ: 170
59. दो रंग, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 57
60. खूँटे, डॉ. कश्मीरी लाल, पृ: 83
61. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, पृ: 65
62. खूँटे, डॉ. कश्मीरी लाल, पृ: 66
63. सुबह के इंतजार तक, सूर्यबाला, पृ: 140
64. समर्पिता, ब्रजनारायण, पृ: 7
65. अधिकार, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 14
66. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 63
67. अधिकार, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 8
68. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 21

69. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 59
70. अधिकार, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 24
71. अधिकार, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 120
72. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 72-89
73. अधिकार, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 25
74. दीक्षांत, सूर्यबाला, पृ: 30
75. दीक्षांत, सूर्यबाला, पृ: 39
76. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 15
77. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 16
78. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल पृ: 6
79. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल पृ: 10
80. टूटते गाँव बनते रिश्ते, योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृ: 43
81. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल पृ: 6
82. करवट लेता वक्त, मधु धवन, पृ: 137
83. अग्निपंखी, सूर्यबाला, पृ: 21
84. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 48
85. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 108
86. सवाल्लों के बीच, बनाफर चन्द्र, पृ: 90
87. मंगलसूत्र, बृजलाल हांडा, पृ: 95
88. सवाल्लों के बीच, बनाफर चन्द्र, पृ: 87
89. सीधा, सादा रास्ता, डॉ. रांग्ये राघव, पृ: 277
90. खूंदे, कश्मीरी लाल, पृ: 38, 68
91. सवाल्लों के बीच, बनाफर चन्द्र, पृ: 105

92. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 20
93. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल पृ: 74
94. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 41
95. खूँटे, कश्मीरी लाल, पृ: 108, 31
96. अभिज्ञान, नरेन्द्र कोहली, पृ: 117
97. आघात, सुदेश भाटिया, पृ: 102
98. सीपी भर सुख, कुसुमांजलि, पृ: 106
99. अग्निपंखी, सूर्यबाला, पृ: 27
100. सुबह के इंतजार तक, सूर्यबाला, पृ: 86
101. आघात, सुदेश भाटिया, पृ: 109
102. अंतिम साक्ष्य, चन्द्रकांता, पृ: 105
103. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 48
104. टूटा हुआ आदमी, डॉ. विष्णु पंकज पृ: 11
105. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 62
106. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 17
107. अग्निपंखी, सूर्यबाला, पृ: 76
108. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 13
109. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 15
110. दीक्षांत, सूर्यबाला, पृ: 35
111. टूटा हुआ आदमी, डॉ. विष्णु पंकज पृ: 7
112. अग्निपंखी, सूर्यबाला, पृ: 26
113. काली सुबह का सूरज, रामधारी सिंह दिनकर, पृ: 17
114. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 26

115. दौड़, ममता कालिया, पृ: 21
116. सुबह के इंतजार तक, सूर्यबाला, पृ: 90
117. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 15
118. यातना घर, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र, पृ: 21
119. टूटा हुआ आदमी, डॉ. विष्णु पंकज, पृ: 34
120. दंडनायक, हृदयेश, पृ: 12
121. समकालीन कहानी युग बोध का सन्दर्भ - पुष्पपाल सिंह, पृ: 93

## **षष्ठ अध्याय**

**बीसवीं सदी के अंतिम दशक के  
उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्य**

## बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्य

### 6.1 धर्म की आवश्यकता - धर्मनिर्पेक्षता का मूल्य

मानव मूल्य में धर्म की उत्कृष्टता अतीत कालों से मानी गयी है। मनुष्य और पशु में जो अन्तर है उनमें धर्म गणना भी है। मनुष्य के मन में धर्म का निवास होता है, जो मनुष्य के स्वभाव का एक अंग है। भव लोक के मानव को परलोक की कामना करने का काम धर्म का है। जीवन की जटिल समस्याओं में उलझते मानव को निराशा के गर्त में घुट-घुट कर मरने से बचाकर उसे जीने की प्रेरणा दिलाने में धर्म के मूल्य काम आते हैं। भारतीय सभ्यता की नींव धर्म पर आधारित है। इसलिए कई विदेशी सभ्यताओं से अपनी सभ्यता श्रेष्ठ है।

नरेन्द्र कोहली के उपन्यास 'महासमर-अधिकार' में युधिष्ठिर अपने आचार्य द्वारा किये गये व्याख्यान को आगे बढ़ाते हुए कुंती से धर्म के मर्म को समझाते हैं -  
“धर्म ही संसार का धारण करता है। वह बोला अधर्म इसका क्षय करता है। मानव का जन्म सृष्टि के क्षय के लिए नहीं उसे धारण करने के लिए हुआ है।”<sup>1</sup>

धर्म के मर्म को समझा नहीं जा सकता। उसे महसूस किया जा सकता है। वह अपने कर्तव्यों के बल पर शक्तिशाली बनता है। मानव ने अपना सुरक्षा कवच के लिए धर्म का निर्माण किया। सृष्टि और प्रकृति के तौर पर देखा जाए तो धर्म अति सूक्ष्म है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'अंतराल' में कृष्ण युधिष्ठिर को धर्म का मर्म समझाने का प्रयास करते हैं। उनका कहना है कि - “धर्म का मर्म अत्यन्त सूक्ष्म है। किसी विशेष सन्दर्भ में मानवों के किसी समाज विशेष के

द्वारा अपनी रक्षा और कल्याण के लिए बनाए गए नियम प्रकृति का धर्म नहीं है। मानव-निर्मित जड़ नियम सृष्टि का सत्य नहीं हैं, धर्म की गति अत्यंत सूक्ष्म है।”<sup>2</sup>

यह धर्म मनुष्य को असत्य से सत्य के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है। भारतीय जीवन में प्रत्येक नेक काम ईश्वरीय वंदना से शुरू करते आये हैं। इस दुनिया की रचना, संचालन, शासन सब परमेश्वर करता है। इनके अनुयायी वास्तव में आदर्श जीवन के पक्ष में होते हैं। आर्थिक अराजकता से भक्ति की ओर मुड़ा गरीब मनुष्य भौतिकता की बढ़ती इच्छाओं में ईश्वरान्वेषण भूल जाते हैं। ईश्वर और संपत्ति दोनों एक साथ वर्तमान नहीं रह सकते हैं। इसलिए विलासमय से प्रलोभित प्रारंभकालीन भक्त में अपक्वता महसूस कर अधर्म की राह अपनाते हैं। धर्म मनुष्य को प्रेम, त्याग और अपरिग्रह होता है। अधर्म मनुष्य को स्वार्थ अधिग्रहण तथा परिग्रह करता है। सबसे बड़ी साधना धर्म के मार्ग पर चलने की होती है।

भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। धर्म निरपेक्ष भारत में संसार भर के कई धर्म और उनके भक्त मौजूद हैं। अपने धर्म में स्थिर रहने या दूसरे को ग्रहण करने में यहाँ कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति से है। व्यक्ति की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबंध नहीं लगा सकता है। हमारे संविधान ने यह घोषण की है - “यहाँ अंतःकरण की और धर्म के आबोध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता है।”<sup>3</sup> इसके विपरीत धर्म के नाम पर होने वाले सभी कार्य अनुचित है।

हिन्दु धर्म के अनुसार त्यौहारों पर पूजा-पाठ का आयोजन किया जाता है। धर्म की मान्यताओं को गलत रूप दिया जाता है। कुसुमांजलि का उपन्यास ‘सीपी भर सुख’ में आज के धर्म शब्द को लेकर लेखिका कहती है। - “बंगालियों में दशहरे के पर्व पर देवी के सम्मुख भैंस की बलि देखी है। धर्म का कुस्मित रूप देखा है। क्या धर्म यही है जो बलि देकर फूले-फूले धर्म को नहीं मानती। सभी धर्मों के साथ-साथ वास्तविक मूल्यवान खो जाते हैं।”<sup>4</sup>

धर्म लोगों को सच्ची राह पर चलना सिखाता है। धर्म का नाम लेकर समाज को कलुषित करना अन्याय है। हमारी भारतीय सभ्यता में धर्मानुसार आचरण ही करना चाहिए। हम किसी भी धर्म का पालन करने से उसे सच्चे मन से निर्वाह करना ही हमारा कर्तव्य है। मगर सबसे बड़ा कर्तव्य है कि किसी भी धर्म के मनुष्य को उनकी जाति न देखकर मानवीयता जताना ही सबसे बड़ा धर्म व कर्तव्य होगा। मनुष्य-मनुष्य को जाति के नाम पर उच्च या नीच समझना मनुष्यहीनता है।

### 6.1.1 अस्पृश्यता

आर्य-अनार्य, ब्राह्मण-शूद्र, सवर्ण-अवर्ण, शहरीली-जंगली, गोरा-काला आदि अनेक नामों से अस्पृश्यता या छुआछूत की भावना भारतीय समाज में प्रचलित है। इस जाति-पिशाच से अपने को बचाने में निम्न जातिवालों का ही परिश्रम करना चाहिए। परिश्रम के अभाव ने उन को तिरस्कृत ही बनाया। ब्राह्मण की गुलामी और मुसलमानों की या ब्रिटिशों की गुलामी में शूद्र ने अन्तर नहीं समझा। यह अस्पृश्यता निवारण के बारे में गांधी जी ने बहुत अधिक भाषण दिये। उनके विचार में - *“अस्पृश्यता रूपी पाप, दण्ड या विषैले साँप को हिन्दुत्व से नाश न करें तो एक दिन वह उसका संहारक होगा। हिन्दु धर्म से अस्पृष्यों को बहिष्कृत करने की अपेक्षा उन्हें अपने धर्म के सदस्य समझ कर आदर और सम्मान करना चाहिए।”*<sup>5</sup>

ऊँचे धर्मावलम्बियों को चाहिए कि भारत के नागरिकों को चाहे शूद्र हो, मुसलामन हो, ईसाई हो अपने सगे भाई के रूप में माने। तब धर्म परिवर्तन की बात कोई नहीं सोचेगा। छुआछूत और अस्पृश्यता की समस्या हिन्दू समाज में सदियों से धर्म के नाम पर व्याप्त एक अनिवार्य अंग बन गया है। समाज की जड़ों को हिला देने वाली इस समस्या के बारे में गांधी जी का कथन है - *“अस्पृश्यता हिन्दु धर्म का अंग*



नहीं, बल्कि उसमें घुसा हुआ वहम है, पाप है और उसका निवारण करना प्रत्येक हिन्दु का धर्म है, उसका परम कर्तव्य है।”<sup>6</sup>

राजेन्द्र पाण्डेय के उपन्यास ‘संयुक्ताक्षर’ की नायिका श्यामा के पिता रामअवतार को देखकर गाँव वाले कहते हैं - “हाँ मुंशी चाचा ने। उन्होंने यह आरोप लगाते हुए मना कर दिया कि रामअवतार नीच जाति के लोगों के साथ खाते-पीते हैं। उनकी पत्नी भरे बाजार में सामान लाने जाती है और किसी और मर्द से फटाफट बातें करती है। उनका छुआ पानी भी हम पी नहीं सकते।”<sup>7</sup>

यह अस्पृश्यता, जातिभेद, ऊँच-नीच के भाव आदि भारत की प्रगति में अवरोध डाले हुए हैं। स्वतंत्रता के मिलते ही यहाँ हिन्दु-मुसलमानों में मार-काट, लूट-खसोट, हत्या-अपहरण, बलात्कार आदि देश व्यापी हो गये जिसके परिणाम स्वरूप समस्त देश में घृण-द्वेष-बर्बरता का नग्न नृत्य होने लगा जिससे यह प्रतीत होने लगा कि इन्सानियत मर गयी।

अस्पृश्यता को अनेक विविध रूप में देखा जाता है। कभी धन, पद, सम्मान आदि के आधार पर भी भेदभाव देखा जाता है। सदियों पुरानी अस्पृश्यता, ऊँच धर्म के लोग, निम्न वर्ग के लोगों से दूर रहने के लिए बेचारों को सड़कों, मन्दिरों से दूर भगाना था। अपने को दूसरों से बड़ा सिद्ध करने का मोह मनुष्य में है। इस स्वार्थ ने ही छुआछूत, अस्पृश्यता आदि विनाशकारी बुरी आदतों को समाज में फैला दिया। कश्मीरी लाल का उपन्यास ‘खूँटे’ में सत्तू अपने मालिक नत्थू को देखकर कहता है - “धरम किसका टूटा है? उसका या नत्थे का? वैष्णव कौन बना फिरता है? वह या नत्था? जीव हत्या कौन करवाता है? उसने पाया कि धरम उसका अपना टूटा है। गरीब के पास धर्म ही तो होता है। अमीर का घर तो पल-पल टूटता है।”<sup>8</sup>

ऊँची जाति के लोग नीच जाति के लड़के-लड़की से विवाह करना पसन्द नहीं करते। यह परंपरा पुराने जमाने से चली आ रही है। चाहे वह कितना भी पढ़ा लिखा

हो, उसकी हैसियत भी कम न हो मगर विवाह करने में हिचकते हैं। बनावर चन्द्र का उपन्यास 'सवाल के बीच' में जब दिनेश ऊँची जाति का होने के बावजूद भी उसकी प्रेमिका पूनम से शादी नहीं हो पाती। लखीम दिनेश से कहता है - "उसके माँ-बाप अभी तक राजी नहीं हुए। पता नहीं जबकि मैं उनसे ऊँची जाति का हूँ। नौकरी कर रहा हूँ। पढ़ा-लिखा हूँ। शक्ल-सूरत भी कोई बुरी नहीं है। फिर भी पता नहीं क्यों आनाकानी कर रहे हैं।" <sup>9</sup>

इसी प्रकार इस्मत चुगताई का उपन्यास 'जिद्दी' में नायक पूरन की माँ को जब पता चलता है कि यह नौकरानी नीच जाति की लड़की उसके बेटे की प्रेमिका बनी है तब वह उससे कहती है - "क्षमा...? अब मेरा घर उजाड़ कर मुझसे ही क्षमा मांगती है। सच है नीच जात का मनुष्य मुँह लगाने से सर पर चढ़ने लगता है। बोल, ये तुझे हिम्मत कैसे हुई।" माता जी जब जलाल में आती थी तो काली माई बन जाती थी। उन्होंने उसके बाल पकड़ कर मुँह उठाया।" <sup>10</sup>

सभी धर्म के लोग अपने ही धर्म के कमजोर लोगों को, गरीबों को घृणा के साथ देखते हैं। अपने समकक्ष बैठने तक नहीं देते। निम्न धर्म के नाम पर ऊँचे ओहदों पर आरक्षण के बल पर पधारे नये अमीर भी अपने ही धर्म या जाति के गरीबों को अपनों से छोटा मानते हैं। दूसरों को अपने से श्रेष्ठ मानना सज्जनता का लक्षण है। अस्पृश्यता एक विश्व-व्यापी समस्या बन गयी है।

संसार में जाति-पाँति सब मनुष्यों की देने है। परन्तु जब व्यक्ति इन सब चीजों से परे हो जाता है तब उसकी आत्मा विकसित हो उदारवादी धरातल पर पहुँच जाती है। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'तोड़ो कारा तोड़ो' में विश्वनाथ नरेन्द्र को आत्मिक विकास के बारे में समझाता है। नरेन्द्र असमंजस में रहता है कि जाति कैसे भंग होती है। उसके भंग होने पर उसका परिणाम क्या है। तब उसका उत्तर देते हुए विश्वनाथ

कहते हैं। कि - “जाति भंग हो जाए तो आत्मा का विकास होता है।’ विश्वनाथ बोले ‘बुद्धि उदार होती है और अनेक लोगों के प्रति व्यवहार स्नेहयुक्त हो जाता है।”<sup>11</sup>

हम अन्याय का साथ न देकर धर्म सत्य की पूजा पर ही ज्यादा जोर देते हैं। देवराज पथिक का उपन्यास ‘जर्जर सेतु’ में दीपक समाज को देखकर सोचता है - “अंग्रेजों ने हमारे देश को बहुत अधिक शोषण किया है तो इसमें अंग्रेज जवाबदार नहीं थे। यदि कोई समाज कमजोर है, कोई जाति विशेष निर्बल, अशक्त और साहसहीन है तो उस पर सबल समाज अथवा जाति का शोषण चक्र चलेगा ही।”<sup>12</sup>

### 6.1.2 द्वि धार्मिक

प्रत्येक धर्मावलंबी आज अपने-अपने धर्म के प्रचार-प्रसार में लगे हैं। वह अपने धर्म का विस्तार करना चाहता है। उसके लिए एक-दूसरे को नीचा दिखाने की होड़ में लगे हैं। कोई धर्म के प्रचार के लिए दूसरे धर्म को गंदा, घटिया कहकर अपने आपको महान साबित करना चाहते हैं। इस धर्मों की लड़ाई में इंसान हैवान बनता जा रहा है। लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए हैं। मानवीयता खो चुके हैं। डॉ. अनुराधा भार्गव का उपन्यास ‘सत्य की ओर’ की नायिका नयना के पिता उसके दामाद से कहते हैं - “शहर में आजकल फिर हिन्दु-मुसलमान का झगड़ा जोर पकड़ रहा है। लगता है अबकी बार बंटवारा होकर रहेगा। बेटा कुलविन्दर, शाम को जल्दी घर पहुँच जाया करो और देर रात घर से बाहर मत निकला करो। माहौल ठीक नहीं चल रहा इंसान-इंसान का दुश्मन होता जा रहा है। लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए हैं। सड़कों पर इंसानों को लहू पानी की तरह बह रहा है।”<sup>13</sup>

कभी-कभी लोग धर्म परिवर्तन इच्छानुसार कर लेते हैं। धर्म बदलने से पाप नहीं होता। परन्तु धर्म के परिवर्तन के पश्चात् व्यक्ति अपने पूर्व धर्म की खिल्ली उड़ाये या उसका अपमान करे यह श्रेष्ठता नहीं है। नरेन्द्र कोहली के उपन्यास ‘तोड़ो कारा

तोड़ो' में नरेन्द्र लोगों के विकृत रूप का चित्रण करते हुए कहते हैं - “जो बंगाली ईसाई हो गये थे उनके कारण इनकी संख्या बढ़ती जा रही थी। वे हिन्दु विश्वासों का निर्विच्छेद, निर्विघ्न अपमान करते थे। उन्हें विकृत करते थे, काले रंगों में रंगते थे। वे प्रचार करते थे कि गंगा-स्नान से पाप होता है, सरसों के तेल की मालिश कर नहाना पाप कृत्य है, दाढ़ी बढ़ाना अंधविश्वास है।”<sup>14</sup>

धर्म तो ऐसी श्रद्धा है जो थोपी नहीं जा सकती। पहले व्यक्ति को विरासत के तौर पर मिलती है। आधुनिक युवक और युवतियाँ आजकल अपना चुनाव खुद करते हैं। वे किसी जाति-पाँति में विश्वास नहीं रखते हैं। वे अपना जीवन अपनी इच्छानुसार जीना चाहते हैं। द्वि धर्म के विवाह धर्मों को एक सूत्र में बांधती है। विवाह के गठबंधन में बंधने के लिए व्यक्ति कोई धर्म नहीं देखता है। इसमें इंसान एकसूत्र में बंधता है। डॉ. विष्णु पंकज का उपन्यास ‘टूटा हुआ आदमी’ में हमीद नामक एक पात्र बीना नाम की हिन्दु लड़की से कोर्ट में शादी कर लेता है। तब बिस्मिल कहता है - “कानून कायदे इंसान को सिर्फ हद में रखते हैं। अच्छेकाम में कभी हद भी पार हो जाए तो क्या फर्क है? जो मजहबों के लोग नजदीक आएंगे, एक होंगे।”<sup>15</sup>

इस द्वि धार्मिक विवाह से सभी बड़े दुखित नजर आते हैं। दूसरे धर्म के लड़के-लड़की से विवाह कराना पसन्द नहीं करते। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ का नायक कृष्णकुमार अपनी प्रेमिका सीमा से कहता है - “मेरा विश्वास रखो सीमा! वैसे मेर पिताजी कुछ खड़िवादी जरूर हैं किन्तु हमारे आगे उन्हें हारना ही पड़ेगा। आखिर, मेरे अलावा उनका अपना है ही कौन। इसलिए मेरा हृदय कह रहा है कि हमारा प्यार निश्चय सफल होगा।”<sup>16</sup>

द्वि धर्मी विवाह के कारण अभिभावक अत्यंत दुखी है। परन्तु घर का चिराग को बुझाया तो नहीं जा सकता। बच्चों के सामने बड़ों को हार माननी ही पड़ती है। धर्म, जाति-पाँति आदि मानवीयता के सामने ओछे नजर आते हैं। अर्थात् मनुष्य को

केवल मानवीयता से ही संबंध रखना चाहिए। मानवीयता ही मनुष्य को एक सूत्र में बांध के रखती है। डॉ. अनुराधा भार्गव का उपन्यास 'सत्य की ओर' की नायिका नयना के पिता लालाजी उसके दामाद कुलविन्दर से समाज को देखकर कहते हैं। -  
*“बेटा, लोग ये क्यों भूल जाते हैं कि हिन्दु-मुसलमानों तो बाद में हैं, पहले तो सब इंसान हैं।”*<sup>17</sup>

अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होता है कि वह सभी धर्मों का सम्मान तहे दिल से करें। विभिन्न धर्मों में निहित अच्छाइयों को खोजने का प्रयत्न करें।

### 6.1.3 कर्म की महत्ता

मनुष्य को कर्म करने से ही फल प्राप्त होता है। प्रत्येक कर्म में अपना फल अवश्य प्रदान करता है, यह कर्मफल का परंपरागत सिद्धान्त होता है। जो जैसा बोयेगा, वैसा ही काटेगा। हाथ-पर-हाथ धरने से कुछ नहीं होता। हम अनेक योजना तो बनाते और विचार को क्रियान्वित करने के लिए कर्म न किया तो फल की प्राप्ति नहीं होती है। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'महासमर-प्रत्यक्ष' में कृष्ण विदुर से कहते हैं कि अगर व्यक्ति कार्य की पूर्ति के लिए विचार ही करता है परन्तु कार्य नहीं करता तो उसे उस कर्म का फल नहीं मिलेगा। विचारों का समन्वय कार्य के द्वारा ही होता है। *“मनुष्य ने केवल विचार ही किया हो, विचार को कर्म में परिणत न किया हो तो उसे उस कर्म का कर्ता नहीं मान लेना चाहिए।”*<sup>18</sup>

वैसे कर्म और फल का चक्र निरन्तर चलता रहता है। अच्छा कर्म अच्छे फल प्रदान करता है और बुरा कर्म बुरा फल प्रदान करता है। व्यक्ति को सदैव कर्म की ओर ही ध्यान देना चाहिए। कमल कुमार का उपन्यास 'हैमबरगर' में भी रतीन्द्र के माध्यम से कार्य की महत्ता को स्वीकारा किया है। इस उपन्यास में रतीन्द्र की कुलविन्दर से जबरदस्ती से सगाई होती है। कुलविन्दर रतीन्द्र के साथ सगाई के

उपरांत, उसे बर्बाद कर देता है, और शादी करने से इन्कार कर देता है। कुलविन्दर ने ऐसा करके बुरा काम किया है, पर रतीन्द्र को कर्मों की महत्ता पर विश्वास है और वह कहती है - “वाहे गुरुजी की मरजी। जित राखे तित रहना। वाह गुरु करेगा उसके दुःखों का निवारण। उसकी रजा बिना तो पत्ता भी नहीं हिलता। उसी के कहे नाले पशु, प्रकृति, मनुष्य जन्म लेते, अपने करमादा भोग-भोगते मरते हैं।”<sup>19</sup>

संसार के प्रत्येक विद्वान लोग भी कर्म की महत्ता पर ही जोर देते हैं। कर्म मनुष्य को उदात्त बनाता है। शश्वत मूल्य परक में कर्म मनुष्यों के आदर्श जीवन की पहचान है। धर्म एक है। उसके नाम अलग होते हैं। प्रत्येक धर्म में कर्म की महत्ता की बात कही गई है। हम कर्म करेंगे तभी हमें फल मिलेगा, अन्यथा नहीं। रास्ते को ढूंढने पर ही मिलता है। नरेन्द्र कोहली के उपन्यास ‘तोड़ो कारा तोड़ो’ का विश्वनाथ कृष्ण के और ईसा के विचारों को प्रकट करते हुए कहता है - “कृष्ण कहते हैं, तुम कर्म करो और फल तुम्हें मैं दूंगा, दूसरी और ईसा कहते हैं, कि तुम खोजों तो पाओगे, खटखटाओगे तो द्वार खुलेगा।”<sup>20</sup> प्रत्येक धर्म कर्म की महत्ता को ही उजागर करता है।

व्यक्ति को कर्मासक्त होना चाहिए। कर्म ही मनुष्य ऊँचे धरातल पर ले जाता है। कर्म की पूर्ति के लिए भक्ति, श्रद्धा, प्रेम आदि बातों का होना अनिवार्य है। व्यक्ति को अपने कर्म करते रहना चाहिए। उसके फल की आशा ईश्वर पर छोड़ देनी चाहिए। कर्म के साथ फल जुड़ा हुआ है। दोनों एक दूसरे के अन्योन्यश्रय हैं। व्यक्ति कर्म न कर भक्ति करे तो कर्म का फल प्राप्त नहीं होता।

कभी कर्म का फल सुखमय जीवन भी रहता है, बुरा भी होता है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास ‘शतरूपा’ में शतरूपा सोचती है - “सुख का मिलना भी भाग्य की बात है? अपने आपको और तुम्हें देखती हूँ तब मुझे अपने भाग्य पर गुस्सा आता है। भाग्य को कुछ भी न मानकर मैं परिस्थिति को सर्वोपरि मानती हूँ। मगर

भीतर से भाग्य की महाशक्ति की मान्यता करता नजर आता है। अगर ऐसा नहीं तो तुम्हें इतना सुखमय जीवन क्यों।”<sup>21</sup>

इसी प्रकार नरेन्द्र कोहली का उपन्यास ‘अभिज्ञान’ में कृष्ण कर्म की महत्ता को सुदामा और सहपाठियों से कहते हैं। - “कामना के साथ कर्म न हो तो भक्ति उस कामना को पूर्ण नहीं कर सकती।” कृष्ण बोले’ जैसे कोई व्यक्ति प्रतिदिन अपनी दीर्घायु के लिए कामना करे और साथ ही साथ विष या विषाक्त वस्तुओं का सेवन करें, उसकी भक्ति उसे बचा नहीं पाएगी।”<sup>22</sup>

व्यक्ति को कर्म के साथ फल की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। कर्म के जरिए ही कोई व्यक्ति मानव से महामानव बनता है, कोई जन्मजात ही महामानव नहीं होता। किसी महान व्यक्ति के पीछे उसके कर्मों की श्रेष्ठता ही मानी जाती है। रास बिहारी बेहरा के उपन्यास ‘विजयी’ में शिबू और रमेश देश के नैतिक और आध्यात्मिक पतन के बारे में विचार करते हैं कि सफलता को पाने में पर्याप्त नहीं वरन् कर्म करने से ही सफलता हासिल होती है। वे अपने देश को अधोगति से बचाने के लिए विचारों को आदर्श रूप देना चाहते हैं। वे जनता को भी यह विचार प्रदान करते हैं कि इसान कर्मवादी होना ही कर्म की धर्म महत्ता है। “कर्म बिना धर्म नहीं। धर्म बिना हमारा उद्धार नहीं। सागर मथे बिना अमृत नहीं निकलता।”<sup>23</sup>

व्यक्ति को कर्म के साथ फल की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। फल की इच्छा से व्यक्ति संकुचित हो जाता है। व्यक्ति का धर्म और कर्तव्य केवल कर्म करते रहने से है। न कि फलों की गिनती करते रहने से। कभी व्यक्ति के प्रेम, श्रद्धाभाव, बुरे कर्म करने वाले व्यक्ति को भी सही रास्ते पर ले आता है। उन्हें प्रायश्चित्त करवाता है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ में कृष्णकुमार के पिता इन्द्रसेन अपने बेटे से कहता है - “बेटे! तेरा गुनहगार मैं भी हूँ। सीमा के अपहरण में मेरा ही हाथ

था। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि तुम्हारे यह भोलेपन और निश्छल प्रेम ने मेरे हृदय के बुरे विचार को निकाल दिया है। तुम चाहें तो मुझे दण्ड दे सकते हो।”<sup>24</sup>

कर्मासक्त व्यक्ति फल की इच्छा नहीं रखता। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास ‘अभिज्ञान’ में कृष्ण सुदामा से कर्म और फल के बीच संबंधों का मार्गदर्शन करते हुए कहते हैं - “जिसने फल की कामना की, उसे उतना ही अथवा उससे भी कम मिला तथा उसने अपना क्षय किया और जिसने फल की कामना नहीं की उसे ज्ञान भी मिला, सम्मान भी यश भी, धन भी।”<sup>25</sup>

कर्म की अवधारणा हिन्दु जीवन दृष्टि का अविभाज्य अंग है। धर्म और कर्म को पृथक् नहीं कर सकते क्योंकि वे दोनों ही मिलकर मानव जीवन के समग्र क्षेत्र का निर्धारण करते हैं। भारत की धार्मिक परंपराओं का विश्वास है कि हर मानव-क्रिया का एक निश्चित परिणाम होता है। सुख या दुःख का चक्र कर्मों के मुताबिक चलता ही रहता है। व्यक्ति का अपना कर्म ही उसके जीवन की स्थिति व दिशा का निर्धारण करता है। उसके कर्म ही उसे पाप-पुण्य प्राप्ति में सहायक होते हैं। कृष्ण सोबती का उपन्यास ‘समय सरगम’ में गुरुजी की धारणा है कि कर्म पाना हमारे हाथ में है, फल हमें अपने कर्मों के मुताबिक मिलता है, जैसा कर्म करेंगे, वैसा ही फल मिलेगा, फल पाना हमारे हाथ में नहीं - “हम कर्म से स्वतंत्र हैं किन्तु फल भोगने में परतंत्र हैं।”<sup>26</sup>

### 6.13.1 निष्काम कर्म

निष्काम का अर्थ फल की इच्छा न रखते हुए निस्वार्थ भाव से कार्य करना है। निष्काम निर्लेप, अनासक्त भाव से करते हैं। वास्तविक तौर पर निष्काम का तात्पर्य फलसक्ति की कामना न रखते हुए शुभ कार्य करते रहना है। इसमें अपने पराये का भेद-भाव नष्ट हो जाता है। सर्वत्र आत्मैक्य की अनुभूति होती है और



परमानंद की प्राप्ति होती है। भगवद गीता में निष्काम कर्म को मोक्ष का साधन माना गया है। भगवान कृष्ण का कथन है, जो मनुष्य फलासक्ति का परित्याग करके केवल लोक-संग्रह के लिये, स्वधर्म के अनुसार कार्य करते हैं वहीं निष्काम कर्म है। मनुष्य सुख-दुख, लाभ-हानि, जय-पराजय, राग-द्वेष आदि समस्त द्वन्दों से ऊपर उठकर अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए कर्म करता है। उसमें स्वार्थ और अहंकार की भावना नहीं होती है। किसी कर्म को कर सके फल की आकांक्षा रखने से फल सीमित हो जाता है। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'अभिज्ञान' में श्रीकृष्ण और सुदामा के मध्य कर्म निष्काम कर्म की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है जिसे श्रीकृष्ण इन शब्दों में व्यक्त करते हैं - *“व्यक्ति केवल कर्म में विश्वास करें। उसे अपनी सीमित दृष्टि में देखकर उसके फल को सीमित न करें। फल को प्रकृति पर छोड़ दें।”*<sup>27</sup>

कर्म तो परिश्रम रूप तथा अन्य विधाएँ कला-कौशल मात्र ही है। इसी तथ्य को लेखक कमलकुमार का उपन्यास 'हैमबरगर' में कृष्ण कौशलसनेस के आश्रम के स्वामी श्री निरंजदेव अपने प्रवचनों में अपना विचार प्रकट करते हैं कि - *“मनुष्य को विश्वासपूर्वक तर्क रहित होकर कर्म करना चाहिए। फल की चिन्ता उसकी नहीं। गीता की विवेक से युक्त विश्वास निष्काम कर्म अथवा अनासक्त योग। यही जीवन का सार है।”*<sup>28</sup>

अर्थात् मनुष्य को फल की आशा रखते हुए कर्म नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति फल की आशा रखते हुए कर्म करता है तो फल सिकुड़ जाता है। और वहीं फल की आशा न रखते हुए कर्म करें तो सहस्रों फल पाने की आशा रहती है। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'महासमर (अंतराल)' में कृष्ण अर्जुन को निष्काम कर्म का मार्गदर्शन करते हुए कहते हैं - *“सकाम कर्म का फल सीमित होता है, और निष्काम कर्म का असीम।”*<sup>29</sup>

### 6.1.4 पुरोहितों द्वारा अनैतिक राह

पुरोहित ईश्वर का दूत है और ज्ञान की रक्षा करना उसका फर्ज है। 'दूत' का काम ईश्वर के सन्देशों को भक्तों तक पहुँचाना है। यानि डाकिये का काम करना पुरोहित का काम है। प्रत्येक धर्मग्रन्थ ईश्वरीय वचनों से भरा है। पुरोहित का डाक घर ईश्वर की जगह है। यानि सदा समय ईश्वर के पास से जनता के लिए जो सन्देश भेजा जाता है उसे स्वीकार करना और जनता तक पहुँचाने में सतर्कता रखना पुरोहित का काम है। ईश्वर से दैवीवाणी पाने वाले पुरोहित को कई प्रकार की वर्जनाओं से अपने आप को शुद्ध रखना होता है। शरीर और मन की शुद्धि के लिए उसे पंचेन्द्रियों पर नियंत्रण रखना चाहिए। लेकिन पुरोहित भौतिक मोहजाल में फँस जाते हैं, मंदिर में आने वाली स्त्रियों पर कुदृष्टि रखने वाले पुरोहित कैसे मन पर नियंत्रण नहीं रखता। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'पिंजरे के पंछी' की नायिका सीमा एक ढोंगी स्वामी से कहती है जब नायक कृष्णकुमार के पिता इन्द्रसेन के जरिये उसका जीवन बर्बाद करने को हुक्म देता है उसके चमचागिरी उसे वैश्यावृत्ति छोड़ देते हैं। वहाँ से एक आश्रम भाग जाती है। वहाँ का ढोंगी स्वामी से कहती है - *“ढोंगी! तुमने तो बताया था कि वासना मुक्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है और स्वयं उसी वासना में जलने लगे। मैं कहती हूँ - आगे मत बढ़ो।”*<sup>30</sup>

आज पुरोहित बाहरी आडम्बरी चीजों से जीवन भोग-विलास से जीना चाहता है। उनके द्वारा स्वर्ग का सन्देश पाना असंभव है। मनुष्य पुरोहित के वेष में चलते हुए भी ईश्वर के सन्देशों से अलग हुए। ईश्वर से छोड़े गये पुरोहित के प्रधान कर्तव्य-दूतवाहिता-से वे दूर रहते हैं। इसलिए वे पुरोहित अनैतिक कार्य करते हैं। अनित भक्षर प्रियता वर्जनाओं से विमुखता, परमेश्वर के सामने घुटना टेकने में अलसता रखने वाले अलक्ष्य पुरोहित ही अनैतिक राज अपनाते हैं। उनके अनैतिक कर्मों से बाद में जनता भी यह सत्य पहचान लेती है। फिर भी पुरोहित वेष वे पहनते

फिरते हैं। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन' का नायक प्रभात एक आश्रम के साधुओं को देखकर कहता है - “मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी इन साधुओं के झूठे प्रपंचों में फंस गये हैं न। इन्हें क्या जरूरत पड़ी है, स्वर्ण आभूषणों की, स्वर्ण हार की? जो पुरुषों में उत्तम है, उसे आलीशान इमारत की क्या जरूरत। राम ने थोड़ी ही बस चीजें मांगी होगी। यह तो पृथ्वी पर बोझ स्वरूप महात्माओं की करतूत है - अपना उल्लू सीधा करने के लिए इन ढोंगी महात्माओं ने श्रीराम का सहारा लिया है।”<sup>31</sup>

धर्म के ज्ञान को भक्तों को सिखाना पुरोहित का काम है। हर धर्म के पुरोहित को अपने धर्म के सिद्धान्तों को सीखना चाहिए और दूसरों को सीखाना चाहिए। पुरोहितों को ईश्वर के वचनों को, धर्म ग्रन्थों से पढ़ाने के लिए बताना चाहिए। उनकी धार्मिक ज्ञानवृद्धि बढ़ानी चाहिए। ईश्वरीय कार्यों में लगे रहने वाले पुरोहित की कमी आज हर धर्म में विद्यमान है। कई धर्म के पुरोहित सांसारिक के मोहताज में फंसकर आम आदमी की तरह सुख सुविधायें बढ़ाने के प्रयत्न में लगे हुए हैं। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास 'पिंजरे के पंक्षी' में सीमा कहती है - “पाखंडी, स्वयं तो गर्दे गर्त में गिरे हुए हो और लोगों को उपदेश देते हो। डरो उस परमेश्वर से, जो तुम्हारे इस घृणित कार्य को देख रहा है। अरे तुमसे अच्छे तो वह हैं जो नहीं जानते हुए पाप करते हैं।”<sup>32</sup>

पुराने जमाने से लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति धर्म से होती आयी है। जीवन के प्रत्येक विषयों में विशेषकर सुख, दुख, रोग, दरिद्र के दिनों में लोग धर्म प्रवर्तकों की मदद चाहते आये हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी क्रिया कलापों में पुरोहित, पुजारी, ब्राह्मण, पण्डित आदि की मदद लोगों को अनिवार्य है। सादगी के साथ जीवन यापन करते पुरोहित पुराने जमाने में वर्तमान थे। जब पुरोहित सांसारिकता के शिकार होते हैं तब आज जनता में धार्मिक अराजकता फैलना स्वाभाविक है।

पुरोहित सुखी जीवन बिताने वालों के साथ मंत्री जोड़कर उनसे सुख प्राप्त करने की दौड़ करते हैं।

बनाफर चन्द्र का उपन्यास 'सवालियों के बीच' में रामलखन नामक पात्र को देखकर दिनेश लखीम से कहता है - "रामलखन पंडित है, उनके घरवालों को पाखंडी और ठग कहता है। उसके घरवाले पूजा-पाठ, कथा-पाठ और धर्म के नाम पर लोगों को लूटते हैं।" <sup>33</sup>

धर्म की पोशाक पहनते ही पुरोहित के चारों और भक्त जम जाते हैं। धर्म के नियमों का पालन अत्याधिक कठिन है। पुरोहितों की जिम्मेदारी है कि अपने धर्म के लोगों को दुष्टता और गलती से वे बचावे। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन' में प्रभात सोचते हुए कहता है - "उसकी पूजा तो बस गरीबों की सहायता पहुंचानी है, लेकिन इस आधुनिक स्वामियों के मन सातवें आसमान पर हैं। वे कभी हवन कुण्ड में अनाज होम करने की सलाह देते हैं तो कभी कुछ... भगवान सद्कर्मों से प्रसन्न होते हैं न कि कुकर्मों से।" <sup>34</sup>

आज अंधविश्वास, ढोंग, पाखंडी, दिखावा करके, प्रलोभन में डालकर भोली भाली जनता को लूटते हैं, उन्हें अपना शिकार बनाते हैं। त्याग और बलिदान का झूठा प्रदर्शन करते हुए कुछ लोग भौतिकवादी जीवन बिताना चाहते हैं। ऊपरी तौर पर अपने को बलिदानी बना कर झूठा प्रदर्शन करते हैं।

नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'अभिज्ञान' में भी बाबा इन झूठे, मक्कार ढोंगी लोग के विपरीत बुद्धिजीवियों के सन्दर्भ में बाबा जनता को संबोधित करते हुए समाज में इन लोगों से बचकर रहने के लिए कह रहे हैं - "एक और त्याग, बलिदान, आत्मस्वाभिमान का ढोंग भी करेंगे और फिर भौतिक सुविधाओं के लिए लार भी टपकाएंगे।" <sup>35</sup>

आज सभी धर्मों में हत्या, चोरी, व्याभिचार आदि को पाप के रूप में अंगीकार किया है पुरोहित के साथ काम करने वाले अन्य साधुओं-सन्तुओं भी उस परिवर्तन में प्रवेश हो जाते हैं। धर्म प्रवर्तक आम जनता को सही रास्ते पर ले जाना चाहिए। धर्म की दृष्टि में पुरोहितों के स्वभावों को आदर्श समझकर चोरी, व्याभिचार, नशापन आदि के शिकार हुए आम जनता की कतार सदियों से पृथ्वी पर से गुजरी है। धर्म और धर्म के अगुओं से कलंकित किये जनसमूह और उन की पीढ़ी वर्तमान समाज में अनैतिक कामों में लगे रहते हैं। वर्तमान जमाने में आम जनता पुरोहितों का आदर नहीं करते। आम-जनता विविध धर्मग्रन्थों को पढ़कर ज्ञान अर्जित किये हैं। विश्वास सम्बन्धी जानकारी इनमें है। धार्मिक मूल्यों को वे जीवन में मानते हैं, आचरण करते हैं। साधारण लोग वास्तव में नैतिक मूल्यों के पालक होते हैं। धर्म और उन के कार्यकर्त्ताओं ने इस संसार में अनैतिक राह अपनाये हैं। ममता कालिया का उपन्यास 'दौड़' में आत्मानंद उनके दोस्त पवन से कहता है - *“मैं शीघ्र ही यह आश्रम छोड़ दूंगा। यहाँ सब झूठ से घिरे हुए लोग हैं। सिर्फ एक विवेकानन्द है। ईश्वर के सृदश विवेकानन्द पवित्रता, सादगी, संयम, चरित्र और नैतिकता की मूर्ति। शेष सभी सामान्य प्राणी, साधारण लोग।”* <sup>36</sup>

#### 6.1.4 कथनी-करनी में भेद

धर्म के नाम लेकर व्यक्ति मन माने ढंग से नियम बनाता है। कभी उसका पालन करता है, कभी नहीं। जब वह उस नियम से ऊब जाता है तब उसे छोड़ने में भी कोई कसर नहीं छोड़ता। आज भक्ति या धार्मिकता धन और नाम कमाने का उपकरण बन गये हैं। स्वतंत्र भारत में धर्म का खोखलापन चारों ओर दर्शनीय है। आम जनता की अज्ञानता का लाभ उठाने के लिए धर्म के नेता, प्रवर्तक आदि गलत रास्ते से जाते हैं। ईश्वर की स्तुति के साथ भवनों में घूमने वाले उन में कई सुन्दर

भोजन, सुन्दर वस्त्र व सुन्दर स्त्री पर अपनी भक्ति को कुर्बान करने वाले दिखावा करते हैं। आजकल आश्रम में रहने वाले पुरोहित या स्वामीजी धर्मों के नाम पर अविवाहित रहते हैं। वे भी आम जनता की तरह दाम्पत्य जीवन जीना चाहते हैं। वे अपनी पंचेन्द्रियों को काबू में नहीं रख पाते। वे वहाँ पर आने वाली स्त्रियों को बुरी निगाहों से देखते हैं। साधारण लोगों के जैसे खाते-पीते नौकरी करते पुरोहित अशिक्षितों के जैसे ही भौतिकता के ही गुलाम बन कर व्याभिचार करते हैं तो उन की भक्ति से उसे या और किसी को कोई फायदा नहीं है। ऐसों के द्वारा भक्ति या पुरोहिताई कलंकित हो जाती है।

राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन' में प्रभात सोचता है कि -  
*“आज आश्रम नाम से सरोबार थी और उसकी नजर में तथा पब्लिक की नजर में आश्रम एक पावन स्थल से कहीं अधिक ऊपर था। जिस स्वामी जी का स्थान उसके हृदय में था वह लड़कियों से बड़े ही गलत व्यवहार करते नजर आ रहे थे। स्थल पर भ्रष्टाचार का झण्डा लहराते हैं।”* <sup>37</sup>

मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर धर्म का प्रभाव था। धर्म के नाम पर पुरोहित गण आम जनता का शोषण कर रहे थे। धर्म के प्रचार के नाम पर अधार्मिक राह चलने वाले पंडित और पुजारी भी हैं। धर्म के नाम पर बेचारी युवतियों के साथ अन्याय करने वाले पुरोहित गण भी हैं। इन की यंत्रणाओं के शिकार बनते भक्त धर्म से सदा के लिए मुख मोड़ने को बाध्य हो जाते हैं। राजदेव प्रियंवर के उपन्यास 'पिंजरे के पंछी' में सीमा आश्रम के स्वामी से कहती है जब सीमा नींद में बेसुध थी तब महाराज रायदास उसके पास बुरे नीच हरकत करने के लिए सामने आता है तब सीमा अपने आप को बचाकर कहती है - *“आपको लाज नहीं आती? धर्म-शास्त्र की व्याख्या करने वाला पुरुष इतना अधर्म भी हो सकता है मैंने कभी इसके बारे में सोचा भी नहीं था। क्या इसी लोभी के कारण आपने आश्रय दिया था मुझे?”* <sup>38</sup>

पुरोहित आम जनता की तरह भोग विलास से रहता है। इसी प्रकार राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन' में प्रभात देखता है कि साधु सन्त बाहरी आडम्बरी जीवन से प्रभावित हैं। लड़कियों की अनिच्छा से उनके अन्याय व्यवहारों का शिकार बनना पड़ता है। प्रभात उन लड़कियों पर अन्याय होते हुए देखता है कि-  
*“बेबस लड़कियाँ आँसू बहाने के सिवा कुछ नहीं कर पा रही थीं। विरोध जो तनिक भी करती तो उसके शरीर पर स्वामी के तथाकथित शिष्य कोड़े बरसाने शुरू कर देते।”* 39

धार्मिक मूल्यों का पालन करते हुए भी आज दिखावा बहुत हो रहा है। पुनीत स्थलों पर घूस, भ्रष्टाचार, बनावटीपन, ढोंग आदि का प्रचार बहुत अधिक है। डॉ. मधु धवन के उपन्यास 'जुर्माना' में विवाह जैसे पवित्र बन्धनों को सिर्फ फिल्मों में काम व नौकरी के लिए तोड़ते हुए दिखाया गया है। स्वार्थपूर्ति बाहरी शान-शौकत के कारण ही रमेश ने अपने धर्म को छोड़कर धर्म परिवर्तित करके मुसलमान बनकर एक मुसलमान नारी से विवाह किया। इस तरह से धार्मिक मूल्यों के विघटित होने पर धर्म की वास्तविकता लुप्त होती जा रही है, जिसे शुचि को उसकी दीदी बता रही है कि -  
*“हाँ यही बात तो अखरती है कि धर्म सामाजिकों के चरित्र का निर्माण है। उसकी अंकुश में समस्त सशक्त चरित्रों का निर्माण होता है और आज धर्म महज अपनी क्षणिक वासना की पूर्ति का एक साधन मात्र। इसलिए आज धार्मिक पुनीत स्थल भी अपना विश्वास खो चुके हैं।”* 40

समाज की कुरीतियों को धर्म के नाम पर धकेलना अन्याय है। धर्म में निहित अच्छाइयों को बाह्य करना चाहिए। उसमें निहित कुरीतियों को उखाड़ फेंकना चाहिए। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'तोड़ो कारा तोड़ो' में नरेन्द्र उन पाखंडियों को कोसते हुए पादरी से कहता है - *“तुम समाज की कुप्रथाओं को धर्म पर आरोपित कर धर्म को*

कलंकित कर रहे हो। अंग्रेजों को शराब पीते देख हमने तो कभी नहीं कहा कि ईसा ने मदिरा सेवन का समर्थन किया है ... या सारे ईसाई शराबी होते हैं।”<sup>41</sup>

आज लोग धर्म के नाम पर अनेक कुकृत्यों को करते रहते हैं। धर्म की आस्था मिट चुकी है। लोग धर्म का नाम लेकर एक मानव को दूसरे मानव से विलग कर रहे हैं। आज व्यक्ति भक्ति को भी दूसरी चीज की तरह सोचते हैं। उनमें श्रद्धा नहीं है। ममता कालिया को उपन्यास ‘दौड़’ में पवन अपने पापा से कहता है - “तुमने तो हर चीज की पैकेजिंग ऐसी कर ली है कि वह जेब में समा जाए। भक्ति की कैपसूल बना कर बेचते हैं आजकल की धर्मयुग। सुबह टी.वी. के सभी चैनलों पर एक न एक गुरु प्रवचन देता रहता है। इस उनमें वह बात कहाँ जो शंकराचार्य में थी या स्वामी विवेकानन्द में थी।”<sup>42</sup>

आध्यात्मिक व्यक्ति विचारवादी होता है। वह प्रत्येक चिंतन को विचारने के बाद ही उसकी सुधि लेता है। अध्यात्म में व्यक्ति समष्टिपरक विचार रखता है। किसी एक का न होकर सबका प्रतीत होता है। अध्यात्म में व्यक्ति परिपूर्ण होता है। मगर आज व्यक्ति उसमें भी आस्था खोते नजर आ रहे हैं। ऋषि मुनियों के बुरे व्यवहार मनुष्यों को आध्यात्मिक शक्ति में बुरे विचार प्रकट करते हैं। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र के उपन्यास ‘शतरूपा’ में ठाकुर शतरूपा से कहता है - “विमला ने मेरी सभी मान्यताओं को खंडित कर दिया। इस भेद में छिपे खोखलेपन को बता दिया। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं आध्यात्मिक शक्तियों के प्रति आस्था खो चुका हूँ, मैं अपने ऋषि-मुनियों का आदर करता हूँ, योग की एक अलग शक्ति और आकर्षण का केन्द्र बिन्दु मानता हूँ।”

43

अर्थात् मनुष्य शिक्षा एवं परिवेश के जरिये जानकारी प्राप्त करता है और अपने चारों ओर के कपट-नाटकों से अवगत हो जाते हैं। जब वह धर्म को परखता है तो वह इस निष्कर्ष पर पहुँचने पर मजबूर हो जाता है कि धर्म के नाम पर वास्तव में



पूरे देश में षडयन्त्र हो रहा है। सांसारिक शक्तियाँ विश्वास के मार्ग से भक्त को हटाने की शक्ति रखती है। इसलिए सांसारिक मलिनताओं से निवृत्त होने के लिए मनुष्य को प्रार्थना में लीन होना होता है। धर्म में जितनी भलाइयाँ हैं उन्हें मिटाने के लिए अनाचार फन फैलाते हैं। धर्म प्रवर्तकों के अनाचारों से परिचित अल्प शिक्षित इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि धर्म अन्धकार और अनाचारों से पूर्ण है। अच्छे अचारणों को सिखाने एवं पालन करने के लिए निर्धारित धर्म के अच्छे प्रवर्तक अपने ऊँचे स्थानों से घिर जाने से साधारण लोगों की हालत दयनीय बन जाती है।

### 6.1.6 धार्मिक दंगे

धार्मिक दंगे समाज में चारों ओर फैल चुके हैं। धर्म का नाम लेकर लोग अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। अपने धर्म को ऊँचा दिखाने के लिए उसे बढ़ावा देने के लिए धार्मिक लोग कई प्रकार के प्रचार के साथ-साथ दंगे करवाना, दहशत फैलाना आदि घिनौने कार्य करते हैं। अपने धर्म का विस्तार करना चाहते हैं। अपने धर्म के लिए जाति का, समाज का, देश का, संसार के विकास के लिए व्यक्ति-व्यक्ति लड़ाई करता है। एक धर्म दूसरे धर्म को कुचलकर आगे बढ़ना चाहता है। डॉ. देवराज पथिक का उपन्यास 'जर्जर सेतु' में लेखक समाज को देखकर उपन्यास में लिखते हैं - *"देश विभाजन के बाद हुए खून-खच्चर के दौर ने सचमुच वातावरण को अजीब सकते की हालत में डाल दिया। कल तक के दोस्त आज एक दूसरे के खून के प्यासे दिखने लगे। अविश्वास, घृणा और हिंसा के विषाक्त वायुमण्डल में सदियों पुरानी धार्मिक साहिष्णुता का दम घुटने-सा लगा है।"*<sup>44</sup>

इसी प्रकार नरेन्द्र कोहली का उपन्यास 'तोड़ो कारा तोड़ो' में पादरी के द्वारा चित्रित करते हैं जो अपने धर्म के प्रचार के लिए दूसरे धर्म को गंदा, घटिया कहकर अपने आपको महान साबित करना चाहते हैं। पादरी कहता है - *"हमारा ईश्वर इस*

सारे संसार को बनाता है। सूरज, चाँद और सितारे बनाता है।... और इनके ईश्वर को बनाता है। वह गंदा कुम्हार अपने पैरों से रौंदकर इस गंदी मिट्टी से एक घटिया-सी मूर्ति बना देता है और ये उसकी पूजा करने लगते हैं। उसे ईश्वर मानने लगते हैं”<sup>45</sup>

व्यक्ति चाहे किसी धर्म का क्यों न हो, उसे धर्माचरण ही करना चाहिए। हर कोई एक दूसरे को नीचा दिखकर झगड़ा करने पर उतारू हो जाते हैं। सांप्रदायिक दंगे से समाज पीड़ित है। सामाजिक लोग इन सब दंगों से पीछा हटाना नहीं चाहता। इस झमेले में फंसे व्यक्ति में मानवीयता नहीं होती। वह न्याय-अन्याय की बात नहीं सोचता। वह अपने धर्म को आगे लाने की चिंतन में ही रहता है। उसके धर्म का अनुयायी ही रहता है। उसके लिए अनेक परिवारों को उजाड़ देता है। डॉ. देवराज पथिक का उपन्यास ‘जर्जर सेतु’ में समाज के बारे में लेखक का कथन है कि -

“सांप्रदायिक भूकम्प के भयंकर झटकों ने जाने कितने निरीह और भोले-भाले इंसानों की जाने ली है। धर्म की संकीर्ण दृष्टि ने न जाने कितने घर-राख का ढेर बना डाले हैं। सांप्रदायिक उन्माद के वशीभूत मनुष्य-मनुष्य के बीच हिंसक व्यवहार पशुता की चरम सीमा को छूता है।”<sup>46</sup>

यह सांप्रदायिक, धार्मिक दंगे समाज को त्रस्त कर रखा है। सभी धर्मों का उद्देश्य है कि ईश्वर एक है, वह सर्वव्यापी है, ईश्वर को पाने के लिए स्वच्छ मन की आवश्यकता है। हरेक व्यक्ति ईश्वर को पा नहीं सकता। नरेन्द्र कोहली का उपन्यास ‘महासमर (प्रच्छन्न)’ में ईश्वर को पाने के लिए विधुर पारसवी को मार्ग बताते हुए कहता है - “इन प्राकृतिक आँखों से ईश्वर को नहीं देखा जा सकता। उसके लिए निर्मल चरित्र चाहिए।”<sup>47</sup>

धार्मिक दंगे ईश्वर के प्रति गलत धारणा से प्रेरित होते हैं। भक्त के हृदय में ईश्वर बसता है। जब वह सत्य को न पहचानने के कारण देवी-देवताओं के नाम को

लेकर झगड़ते रहते हैं। इस कारण देश के कोने-कोने में धर्म के नाम पर बड़ी-बड़ी अट्टालिकायें धर्मावलम्बी बनाते हैं। दूसरे धर्म भी यही चाह रखने के कारण समाज में धर्मों के कारण अशान्ति फैलती है।

कुसुमांजलि का उपन्यास 'सीपी भर सुख' में लेखिका का कथन है कि -  
“देवताओं को लेकर जो खून-खराबा होता है वह धर्म का पाखंड नहीं तो और क्या है। धर्म आदमी के लिए कछुए का वह कवच है, जिसमें घुसा-घुसा वह सुरक्षित अनुभव करता है। धर्म को छोड़ देने से हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा, किन्तु बदेरी के मर बच्चों की भांति उसे चिपकाए रखने से समाज में सड़ांध अवश्य होती है।”<sup>48</sup>

अर्थात् व्यक्ति सत्य का रास्ता अपनाये तो समझना चाहिए कि वह ईश्वर के निकट है। व्यक्ति-व्यक्ति को अपने रक्त संबंधों से निकलकर सभी मानवीय संबंधों से संबंध जोड़ना चाहिए। तभी व्यक्तियों के समकक्ष मानवीयता पनपेगी। धार्मिक पाठ पढ़ने से पहले व्यक्ति को मानवीयता का पाठ पढ़ना चाहिए। धर्म मानव द्वारा गठित है। इन सब से परे मानवीयता है। मानवीयता को मजबूत बनाने के लिए अनेक कुकृत्य कर्म का छोड़ना चाहिए।

## 6.2 सांस्कृतिक मूल्य

हमारी भारतीय संस्कृति में नारी की पतिव्रता धर्म, मानव-जीवन में चरित्र की महत्ता, मानव आचार-व्यवहार कुशलता, भारतीय परंपराएँ तथा संस्कार तथा मानवीयता समाविष्ट होती है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'अन्तर्मन' की कस्तूरी सोचती है - “मैं यह महसूस कर रही हूँ कि आदर्श और नैतिकता की सारी बातें हम स्त्रियाँ ही ग्रहण करती जा रही हैं। धर्म का अफीम हम ही किसी पौष्टिक पदार्थ की तरह पी रही हैं। शास्त्रों से लेकर आधुनिक युग की शब्दावली भी दकियानूसी हैं। उसमें सदा स्त्री को पुरुषों के आधारित माना है।”<sup>49</sup>

#### 6.1.4 भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य का प्रादुर्भाव व भारतीय संस्कृति का पतन

महानगरों में रहने वालों पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ने के कारण उनके व्यक्तिगत मूल्य बनते बिगड़ते हैं। नगरों में झूठी प्रतिष्ठा, फैशन, चमक-दमक आदि बाहरी बातों का महत्व अधिक हो गया है। फ्रायड की विचारधारा के प्रभाव के कारण नगरों और महानगरों में रहने वाले लोग अवैध संबंधों की भावनाओं के प्रति नया दृष्टिकोण अपनाने लग गए हैं। उनकी दृष्टि में शारीरिक पवित्रता का कोई महत्व नहीं है। वे मुक्त रूप से अवैध संबंध को महत्व प्रदान करते हैं। महानगरों में भौतिक सुख-सुविधाओं के कारण भी नारी-पुरुष संबंध बदल गए हैं। चन्द्रकांता का उपन्यास 'अंतिम साक्ष्य' में लेखिका कहती है - *“ग्लैमर की दुनिया में किसी भी फिल्म कंपनी ने उसे हीरो न बनाया। एक्सट्रा की पंक्तियों में खड़ा वह महीनों भूख-प्यास के अहम् सवालियों से जूझता रहा। मीता महीना भर साथ रही, पर पूँजी खत्म होते ही भूख और भटकन का सामना होने पर वह सुरेश पहले ही सपनों की रंगीली दुनिया से खुरदरी धरती पर लौट आई।”*<sup>50</sup>

अर्थ-प्राप्ति के लिए भी भोग को माध्यम बना लिया है। आधुनिक काल में अंग्रेजों के संघर्ष के कारण भारतीय जन-जीवन पर पाश्चात्य शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता का अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा है। ज्ञान-विज्ञान की दिन-प्रतिदिन उन्नति हो रही है। इस स्थिति में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार बढ़ गया है। इसी प्रकार विदेशी कंपनियों के फिर से आने के कारण व्यापार-माध्यमों का प्रचार हो रहा है, तो सभ्यता में परिवर्तन स्वाभाविक भी है। आज के नवयुवक बाहरी आडम्बर को महत्व प्रदान करते हैं। भारतीय नारी शादी के पूर्व ब्याह करने वाले वर को भी नहीं देखते। जो माता-पिता से चुने गये वर से ही विवाह करते हैं। डॉ. सुदेश भाटिया का उपन्यास 'आघात' में लेखक कहते हैं - *“गाँव में शादी के पहले पति-पत्नी के एक-दूसरे को देखने का*

रिवाज नहीं। माता-पिता जैसा जीवन-साथी चुन देते थे बच्चे उनकी आज्ञा मानते हुए उसे स्वीकार कर लेते हैं।”<sup>51</sup>

आज वैज्ञानिक और भौतिक दृष्टि के कारण सभ्यता का प्रभाव पड़ने लगा है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास ‘दो रंग’ की नायिका मोनी की बहन लीला मोनी की सहेली शीला से कहती है - “शीला दीदी सिद्धेश बहुत प्यारा लड़का है, लेकिन मैं उसे अधिक दिन तक अपने प्रति मोह कर नहीं रख पाऊँगी क्योंकि मेरे पास न अच्छे कपड़े हैं और न अच्छी शक्ल। सिर्फ मेरे पास एक प्रेम भरा हृदय है। मुझे शक है कि सिद्धेश एक दिन किसी अच्छी सुन्दर लड़की के मिलते ही मुझे छोड़ देगा।”<sup>52</sup>

भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ने के कारण मूल्यों में जो विघटनकारी यौन प्रवृत्त्यात्मक और अकेलेपन का बोध बढ़ा है या जिससे संस्कृति का विनाश हुआ है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास ‘अन्तर्मन’ की कस्तूरी उसकी छोटी बहन को देखकर कहती है - “मैं कावेरी के कलंक को सह नहीं सकती। मेरी जैसी धर्मभीरु स्त्री जिसका सारा जीवन त्याग, तपस्या और आदर्शों की रक्षार्थ बीता उसकी बहन उसे इतना कठोर दंड दे उसके सात पीढ़ी के गौरव को धो दे, यह असम्भव है। मैं सती हूँ और रहूँगी।”<sup>53</sup>

हमारी भारतीय संस्कृति के सम्मुख आज सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि वह कैसे पश्चिमी सभ्यता के गुणों को अपनाते हुए भी अपने सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक दायित्वों को सुचारु रूप से निभाए। आज के पुरुष या नारी भोग को माध्यम बना लिया है। धन, यश, पद आदि की प्राप्ति के लिए नारी का प्रयोग होने लग गया है। पुरुष नारी को आदिकाल से आज तक भोग वस्तु ही समझता रहा है। चित्रा मुद्गल का उपन्यास ‘एक जमीन अपनी’ की अंकिता विज्ञापनिक जगत के उच्च अधिकारियों के समूह को एक पार्टी में एक आदमी अंकिता को नीच नजरों से देखता है तब अंकिता कहती है - “पार्टियों में लड़कियाँ बिकने नहीं आती, आती हैं लेकिन

उनके साथ कैसा सुलूक करना चाहिए... मगर शराफत का धूँट पीकर रह गई क्योंकि ऐसी जगह पर भर्त्सना करना उसे अश्लील करना नहीं होता।”<sup>54</sup>

नारी स्वतंत्रता का अर्थ प्रत्येक दृष्टि से स्वतंत्रता है और पुरुष की स्वच्छंदता का अर्थ प्रत्येक दृष्टि से स्वच्छंदता है। यौन भावनाएँ इन दोनों का परिणाम है। आज की भारतीय नारियों में सभी प्रकार के चरित्र पाये जाते हैं। नारी अपनी भावनाओं को खुले आम अभिव्यक्त करती है व भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव मिलने व बढ़ने के कारण संकोच, मर्यादा, नैतिकता की भावनाएँ तिरोहित हो गई है। नारी अपनी सभ्यता को छोड़कर बाहरी सभ्यता से प्रभावित हो रही है। वह अपनी संस्कृति का धीरे-धीरे मिटा रही है। भारतीय संस्कृति के अनुसार जीवन में शांति का मतलब ही नारी है। मगर आज नारी अपनी इच्छाओं पर काबू नहीं रख पाती। उस कारण समाज व परिवार में ही अशांति फैलाती है। वह पुरुषों के समकक्ष अनेक कार्य करती है। नागार्जुन का उपन्यास ‘वरुण के बेटे’ की माधुरी अपने ससुराल को छोड़कर अपने प्रेमी मंगल के साथ भाग जाती है। वह अपने मिलने के अवसरों पर लेखक कहता है - “माधुरी मिलन के अवसरों पर अक्सर मंगल बीड़ी सुलगाता, दो कश खींचकर माधुरी को थमा देता। दो कश खींचकर वह फिर मंगल को थमा देती। मगर आज अभी तक बीड़ी नहीं निकली थी। माधुरी का ख्याल आया तो चट से कहा - “अच्छा बीड़ी तो निकालो।”<sup>55</sup>

संस्कृति के विघटन ने समाज को अशांत बना रखा है। व्यक्ति केवल पतन को देखता है। हम संस्कृति को रोते हुए, कराहते हुए देखते हैं।

### 6.2.2 पतिव्रता नारी व पुरुष

संसार का धारण करने वाला धर्म कहलाता है। हमारी यह धर्म क्रिया ही स्त्री-पुरुष दोनों को सिद्धि रूप से आवागमन के चक्र से छुटकारा दिलाती है। पतिदेव

की सेवा को ही पत्नी को प्रतिव्रता की उपाधि दिलाता है। इसी प्रकार पुरुष भी अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य औरतों को बहन, माँ के रूप में देखना चाहिए। तब वह मर्यादापुरुष कहलाता है। बलभद्र तिवारी का उपन्यास 'रुको द्रौपदी; मैं प्रोफेसर शशि की यूरोपीयन छात्र योन्ना शशि के जीवन को देखकर कहती है - "प्रोफेसर शशि की श्रीमती मुझे एक दो बार मिली थी। बहुत अच्छी लगी थी। कभी-कभी मैं सपने देखती थी, क्या एक पति की एक ही पत्नी हो सकती है? भारतवर्ष कितना पिछड़ा देश है पर यह परम्परा बहुत अच्छी है कि एक पति की एक पत्नी होती है।" <sup>56</sup>

एक जमाना था जब नारी अपने पति के साथ सती हो जाना पसंद करती थी। मगर आज पति को छोड़कर विवाह के पश्चात् नारी अपने पूर्व प्रेमी के साथ मेलजोल रखना चाहती है। आज के इस विघटित सांस्कृतिक मूल्यों को देखकर इस्मत चुगताई के उपन्यास 'जिद्दी' में पूरन की पत्नी शांता और महेश का प्रेम उसे पति को मालूम पड़ता है। वह उन दोनों को एक साथ रहते हुए देखता है - "एक दिन और उसे बहुत ताज्जुब हुआ जब उसने देखा कि ड्राइंग रूम में शांता लेटी थी तो महेश ने उसे पहले चित्त किया फिर फूल की तरह दोनों हाथों में उठा लिया।" <sup>57</sup>

आज हम अपनी संस्कृति से बिछुड़ गये हैं। जिसके कारण सांस्कृतिक मूल्य का पतन हो रहा है। भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी अपने पति को सर्वोच्च मानती है। उसकी लंबी आयु के लिए करवाचौथ का व्रत रखती है। डॉ. अनुराधा भार्गव का उपन्यास 'सत्य की ओर' की नायिका नयना अपने पति कुलविन्दर से कहती है कि - "देखो कुलविन्दर, ऐसा नहीं कहते। मैं पहली बार तुम्हारे लिए ये व्रत रख रही हूँ और जिन्दगी भर मैं यह व्रत तुम्हारे लिये रखूंगी, चाहे तुम मेरे पास रहो या दूर।" <sup>58</sup>

भारतीय संस्कृति के अनुसार भारतीय नारी अपने पति को ईश्वर का दर्जा देती है। श्रेष्ठ नारी पात्रों में पतिव्रता धर्म को उनके चारित्रिक गुणों की आधार शिला मानते हुए भी तुलसी ने नारी के बौद्धिक विकास, विवेकपूर्ण आचरण का प्रमुख माना है।

इन्हीं गुणों के आधार पर उसने समाज में पुरुष की अर्द्धांगिनी के स्वरूप की पुष्टि की है। पतिव्रता नारी धर्म की सार्थकता के लिए एक नारी में पुरुष के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना जरूरी होता है।

सविता राघव अविनाश का उपन्यास 'सूखे आँसू' में सरला देवी भी अपने पति को ईश्वरतुल्य मानती है। वे पति धर्म की सार्थकता को समझाते हुए कहती है -  
“पति-पत्नी को देवता मान पूजती रहती है। सात फेरों की खातिर अपना तमाम जीवन दाँव पर लगा देती है।”<sup>59</sup>

भारतीय नारी की तरह पुरुष को भी पत्नीव्रता होना चाहिए। संस्कृति सिर्फ नारी को ही नहीं बल्कि पुरुष के लिए भी होती है। पुरुष भी अपनी पत्नी को खुश व प्रेमपूर्वक अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। मगर आज पुरुष भी कर्तव्य विहीन दिखाई देते हैं। बलभद्र तिवारी का उपन्यास 'रुको द्रौपदी' में लेखक शशि को देखकर कहता है -  
“भीतू ने उससे वारसा आने को कहा। शशि जानता है कि उसका इस वर्ष के बाद वहाँ रहना सम्भव नहीं होगा, क्योंकि वारसा में भी एक जगह खाली हो रही जिसमें वह आ सकता है और फिर पत्नी अलग न रह सकेगी। वह तो यूरोपीय ढंग की पत्नी चाहता था पर अब कुछ नहीं कर सकता है।”<sup>60</sup>

इसी प्रकार यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'शतरूपा' में शतरूपा अपने पति से कहती है जब वह अपनी पत्नी को सुख से नहीं रखता, तब वह कहती है -  
“तुमने मुझे कभी भी सुख नहीं दिया। विवाह के बाद तुम्हारी वहम की प्रकृति ने मेरे और तुम्हारे बीच एक अदृश्य अलगाव को बनाए रखा। सिर्फ तुमने मुझे भोगने के लिए भोगा। कभी शांति और सच्चे मन से नहीं चाहा। अपनी जीवन-यात्रा की अर्द्धांगिनी और पत्नी नहीं समझा।”<sup>61</sup>

भारतीय नारी व पुरुष का प्रमुख धर्म निस्वार्थ भाव रखते हुए अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। दोनों का कर्तव्य बनता है तभी सुखी परिवार बनता है।



### 6.2.3 रूढ़िवादी परंपरा/संस्कार

हमारी भारतीय परंपराओं के अनुसार कुछ हद तक प्राचीन परंपराओं का पालन करना अनिवार्य है। परंपराओं के धराशायी होने से सामाजिक जीवन में अराजकता मच जायेगी। इन पुराने जीवन मूल्यों तथा आदर्शों के बल पर ही तो यह समाज खड़ा है। हम कितने भी आधुनिक क्यों न बन जायें। समाज को गठित रखने, उसे व्यवस्थित ढांचे का रूप देने के लिए प्राचीन परंपराओं तथा रीति-रिवाजों का अनुसरण करना होगा। नमिता सिंह का उपन्यास 'अपनी सलीबे' में नायिका नीलिमा अपनी माँ से उसे पति ईशू को लेकर कहती है जब उसे पता चलता है कि वह नीच जाती का है तब कहती है - *“लाख उजड़ गया लेकिन नाम तो है। खानदान तो है। इसी से समाज मान-सम्मान देता है। समाज की मान्यताएँ नियम होते हैं। समाज के नियम बदले भी जाते हैं - लेकिन तोड़-फोड़कर भ्रष्ट ही किए जाते। हमारे संस्कार जुड़े हैं खानदान से...”*<sup>62</sup>

हमारे भारतीय संस्कृति पुराने रीति-रिवाज तथा मान्यताओं में पाए जाते हैं। यह रीति-रिवाज वैवाहिक संस्था में अधिक रहती है। चाहे समाज में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ा हो, लेकिन मूल रूप से बदला नहीं जा सकता। डॉ. सुदेश भाटिया का उपन्यास 'घूंघट' की नायिका ममता की सास कहती है - *“भाई चाहे कितना पढ़-लिख जाओ, यह रीति-रिवाज अच्छे ही लगते हैं। लड़की इतनी सुन्दर है कि नजर न लग जाए, इसीलिए तो घूंघट का रिवाज बना हुआ है।”*<sup>63</sup>

हमारे भारतीय संस्कार में चाहे कितने औद्योगिक व वैज्ञानिक, तकनीकी का विकास हो, नारी अपने पति को ईश्वर की तरह उच्च कोटि में ही रखती है। पति बुरा हो या अच्छा, पत्नी उसकी सेवा कर अपना कर्तव्य निभाती रहती है। यह परंपरा पुराने जमाने से चली आ रही है। चाहे पति उस पर जुल्म करे या प्रेम से रखे। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास 'शतरूपा' में जब शतरूपा का पति दहेज के कारण

माँ के कहने पर उस पर जुल्म करता है तब वह सोचती है - “ये संस्कार है। बचपन के बने संस्कार। चमत्कारिक धार्मिक कथाओं का प्रभाव है। सतियों ने पतियों के उचित-अनुचित अन्याय सहकर जिस सहिष्णुता का परिचय दिया है और जिनका जो शुभ परिणाम निकला है, वह हमारे मन की गहराइयों में बस गया है।”<sup>64</sup>

भारतीय संस्कृति में निहित पतिव्रता नारी अपनी भारतीय सभ्यता से अलग नहीं हो पाती। विदेशी सभ्यता की तरह पुनर्विवाह करने में भी उसका मन हिचकता है। क्योंकि वह जानती है समाज में अकेली नारी की कोई मर्यादा नहीं रहती। औद्योगिकी व मशीनीकरण के विकास के पश्चात् भी भारतीय नारी का मन पुराने रीति-रिवाजों से जकड़ा हुआ है। बलभद्र तिवारी का उपन्यास ‘रुको द्रौपदी’ में यूरोपीय लड़की योन्ना भारतीय संस्कृति की नारी की सभ्यता को देखकर कहती है - “उसी पूर्व की ओर जिसकी सभ्यता और संस्कृति की अनेक आश्चर्यजनक बातें मैंने किताबों में पढ़ी हैं, हम यूरोपीय का वे सब मिथ्या लगती हैं कि कहीं कोई ऐसा भी देश हो सकता है जहाँ एक पत्नी से ही आदमी काम चला लेता है और जिंदगी भर उसी के साथ रहता है। यदि आदमी पहले मरता है तो पत्नी या तो सती हो जाती है या जिन्दगी के शेष वर्ष सादगी से भली विधवा की भाँति बिताती है, विश्वास नहीं होता। तुम होगे हम भौतिकवादी परंपरा के लोग इसे क्या समझेंगे?”<sup>65</sup>

भारतीय नारियाँ अपने पतियों पर ज्यादा प्रेम रखती हैं। वह उनके मृत शरीर पर खुद सती हो जाना ज्यादा पसंद करती हैं। पुराने जमाने से ही दम्पति जीवन में पति-पत्नी एक-दूसरे से अधिक प्रेम से रहते थे। इस कारण उनके बिना रहना जीवन नरक बन जाता है। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास ‘तलाक दर तलाक’ में गीता अपनी पति की मृत्यु की खबर सह नहीं पाती। इस कारण वह भी आत्महत्या कर लेती है। लेखक कहते हैं कि - “पति की इस दुर्दान्त मृत्यु का सद्मा गीता नहीं सह

सकी। वह भी अपने कुटुंब की तिजोरी में रखी आखिरी संपत्ति नाक के कांटे का हीरा निकाला और उसे पीसकर खा लिया। वह भी मर गई।”<sup>66</sup>

इसी प्रकार नारी विवाह पूर्व या पश्चात् अपने मन में किसको चाहने लगती है, उसी को जीवन के अन्त तक मन में प्रतिमूर्ति स्थापित कर रखती है। राजदेव प्रियंवर का उपन्यास ‘पिंजरे के पंछी’ की नायिका सीमा अपने प्रेमी कृष्णकुमार को चाहती है। इस उपन्यास में हेमन्त अपनी बहन को देखकर कहता है कि - “नारी अपने हृदय में एक ही पुरुष की प्रतिमूर्ति स्थापित करती है और उसी के साथ वह भविष्य के कई सुनहरे सपने देख लेती है। उस पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए सर्वदा रहती है वो।”<sup>67</sup>

आज औद्योगिक व मशीनीकरण के कारण नारी-पुरुष में भी बदलाव हो रहा है। धीरे-धीरे शाश्वत मूल्य को छोड़कर परिवर्तित मूल्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं। आजकल नारी भी घर से बाहर निकलने के कारण उसकी इच्छाएँ बढ़ती जा रही है। हमारे पुराने रीति-रिवाजों के अनुसार नारी-पुरुष में अपने-आप संयम रखने की शक्ति पायी जाती है। मगर आज खोते जा रहे हैं। ममता कालिया का उपन्यास ‘दौड़’ में पवन की माँ व प्रेमिका कहती है - “मैंने तो ऐसे कोई लड़की नहीं देखी जो शादी के पहले ही पति के घर में रहने लगे। सुनकर तो वो कहती है पवन डार्लिंग जितने दिन मैं यहाँ पर है मैं मिसेज छजनानी के यहाँ सोऊँगी।”<sup>68</sup>

भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी की मर्यादा सीमित है जब वह शादीशुदा हो। हमारे परंपरा के अनुसार नारी शादीशुदा के पश्चात् ही पूर्ण कहलती है। अविवाहित नारी की समाज में मर्यादा नहीं रहती। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास ‘चुटकी भर चन्दन’ में प्रभात चिंदबरा को देखकर कहता है जब उसको पता चलता है कि चिंदबरा आर्थिक विषममता के कारण वैश्या बन जाती है तब वह कहता है - “पूर्ण औरत

होने का दर्जा यह क्रूर व कसाई समाज नारी को तभी देता है, जब वह शादीशुदा हो।”<sup>69</sup>

यह संस्कार कभी-कभी मनुष्य को चैन का जीवन जीने नहीं देते। विधवा नारी को पुनर्विवाह कराने में यह पुराने रीति-रिवाज हमें नहीं छोड़ता। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास ‘श्रद्धांजलि’ में श्रद्धा छोटी उम्र में विधवा बन जाती है। उसके पिता उसे दूसरा विवाह कराना चाहते हैं मगर समाज इसी मान्यता को नकारती है। उसके पिता कहते हैं - “धर्म संकट के पाश में फंस गए थे वह। एक तरफ बेटी के आज सारे रीति-रिवाज को तोड़ देने के लिए उकसा रहे थे तो दूसरी तरफ गाँव के बूढ़े-बुजुर्ग पुराने रीति-रिवाजों की मेंद को समय की खोखली ईंटों से चिनते हुए नजर आते थे।”

70

भारतीय संस्कृति में नारी पहचानती है कि बाहरी आडम्बर जीवन सब परिवर्तित मूल्य है। यह क्षणभंगुरता है जो थोड़े समय के लिए खुशी दे सकती है। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास ‘संयुक्ताक्षर’ की नायिका श्याम सोचती है जब वह अपने अधेड़ उम्र के पति को मन में पति का दर्जा नहीं दे पाती, फिर अंतिम में बदल जाती है और सोचती है - “नहीं! मैंने अपना निर्णय बदल दिया है। मैं अपना मातृत्व मासूम फूलों के पौधों को देना चाहती हूँ। अब अपना सब कुछ न्यौछावर कर देने का इरादा है। इस प्राकृतिक सौन्दर्य पर अभिशप्त जिन्दगी समर्पित कर दूँगी। दिन-रात इसे सीचूँगी। यह मेरी अब पूँजी है।”<sup>71</sup>

भारतीय परंपरा में कुछ ऐसे पुराने संस्कार हैं जो जितना भी बदलाव आए यह छुआ-छूत, भेदभाव आदि का भाव रहता है जिनका उन्मूलन पूरी तरह नहीं हो पा रहा है। कृष्ण सोबती कहती है - “पुरानी व्यवस्था अब भी कायम है। नए बदलाव के साथ लड़के और लड़की में भेद। परिवार में पुत्री और पुत्र का अबोला द्वंद जारी है।

गर्भ में ही पुत्रियों की हत्या और पुत्रों के संरक्षण-साधन। भाई-बहनों के झगड़े चलते रहते। कानून बन चुके हैं, मगर उन्हें लागू कौन करेगा?" 72

अर्थात् संस्कारों का प्रभाव कायम रहने के कारण हमारा ग्रामीण वातावरण है। शिक्षा के माध्यम से ही संस्कारों में परिवर्तन संभव है। भैरव प्रसाद गुप्त के 'अक्षरों के आगे मास्टरजी' उपन्यास की मास्टरनी जो कि एक अशिक्षित नारी है वह मास्टर जी से पूछ रही है कि क्या जीवन में परिवर्तन आने से संस्कारों में परिवर्तन भी आ जाता है, पर यहाँ मास्टरजी के माध्यम से संस्कारों के प्रति उनका विचार है कि - "संस्कार धीरे-धीरे और देर से बदलते हैं, क्योंकि उनकी जड़े मन मस्तिष्क में गहराई तक फैली होती हैं। अशिक्षित समाज में तो नये जीवन का प्रकाश पहुँचने में और भी अधिक समय लगता है, लेकिन वह एक न एक दिन पहुँचता अवश्य है। हमारा ग्रामीण अशिक्षित समाज पुराने धर्माचरणों, कर्मकाण्डों तथा प्रथाओं की कोई सार्थक शिक्षा अज्ञान के अंधकार को दूर करती है और नये, आधुनिक संस्कार का निर्माण करती हैं।" 73

आज इतने परिवर्तन होने के बावजूद भी पुराने संस्कार को मानने व रक्षा करना चाहते हैं।

#### 6.2.4 अंधविश्वास

आज भारत वैज्ञानिक युग में कदम रखने के बावजूद भी यह अंधविश्वास ने उसे जकड़ रखा है। लोगों की गलत मान्यता रहती है कि ईश्वर की मन्तों से पुत्र प्राप्त करना। ईश्वर की पूजा करना सत्य है मगर गाँव की औरतों से लेकर शहर के लोग। तक यह रूढ़ि विश्वास नहीं मिटने वाला है कि ईश्वर सिर्फ पुत्रों को ही वरदान देता है। यादवेन्द्र शर्मा का उपन्यास 'अन्तर्मन' में कस्तूरी, कावेरी की माँ ईश्वर हनुमानजी से पुत्र की मन्त मांगती है, इस पर कस्तूरी खिल्ली उड़ाती है कि -

“आज मुझे उसकी माँग पर हंसी आ रही है, क्योंकि आधुनिक युग में हनुमान जी की अर्चना और वंदना विज्ञान की प्रगति की तरह बढ़ रही है पर महाबली रामभक्त हनुमान जी ब्रह्मचारी थे और मेरी माँ उनसे पुत्र माँग रही थी?”<sup>74</sup>

गाँव वालों का विचार है कि शादी और बच्चा सही उम्र में होना चाहिए। सभी वृद्ध पुत्र बच्चे की मन्नतें मांगते हैं। उसके लिए सभी भगवान से प्रार्थना करते हैं। डॉ. सुदेश भाटिया का उपन्यास ‘आघात’ में सोना की सास भी सभी सासों की तरह पुत्र की मन्नत मांगती है। यह दृढ़ विश्वास से कहती है - “अरे शादी और बच्चों दोनों उमिर से ही अच्छा लगता है। हम तो मन्नत मानते हैं कि हमारी सोना को बेटा होगा तो हम गंगा मैया को पिचरी चढ़ाएंगे।”<sup>75</sup>

इसी प्रकार डॉ. कश्मीरी लाल के उपन्यास ‘खूँटे’ में सत्तू अपने मालिक नत्थू की बीबी को देखकर दूसरे नौकर से कहता है - “नत्था की बीबी पूजा-पाठ बहुत करती थी। इस बार वहाँ पार्वती पूजन था। किसी ने उसे बहका दिया था कि पार्वती के पास लड़कों का भरपूर स्टॉक है। इधर पूजन, उधर फट्टाक से लड़का गोदी में। इसी सुभ्रम में वह पूजा करवा रही थी।”<sup>76</sup>

इस प्रकार मनुष्य सुबह से लेकर रात तक कुछ न कुछ अपशगुन या शगुन को मानता है। कभी किसी की छींक से, कौआ के चिल्लाने से, काली बिल्ली रास्ता काटने से आदि विषयों पर सोच-विचार करता रहता है। इस्मत चुगताई का उपन्यास ‘जिद्दी’ का नायक पूरन अपनी भाभी से कहता है - “भाभी! सुनते हैं कि भाई साबह जब दुनिया में तशरीफ ला रहे थे तो काली बिल्ली रास्ता काट गई, बस देख लो।” हूँ नहीं तो तुम्हारी तरह ... हाथ ही टूटेंगे। मेरी बच्ची को पेट क्या पत्थर का बना है कि सुबह से चुटकियाँ ले रहे हो।”<sup>77</sup>

हमारी भारतीय संस्कृति में पुरुष से भी अधिक स्त्रियाँ अंधविश्वास में मान्यता रखती हैं। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास ‘अन्तर्मन’ की कस्तूरी अपनी माँ को

देखकर कहती है - “दोष मेरे माथे ही मढ़ा गया क्योंकि उनका विश्वास था कि अब मैं अपने पीछे सात बहने लाए बिन नहीं रहूँगी। यह बड़ी अशुभ लड़की है। कभी-कभी अंधविश्वा में यकीन रखने वाली स्त्रियाँ कहती थी, छोटी उम्र में कस्तूरी के बाप ने मालिनों की सब्जियाँ इत्यादि खूब चुराई थी। अब इसकी पूरी सात बेटियाँ होगी। माँ यह सब सुनकर हताश हो जाती थी।” <sup>78</sup>

नारियाँ अपने पहनावों के रंगों में भी शगुन या अपशगुन देखती हैं कि यह रंग उनके राशि के अनुसार पहन सकते हैं या नहीं। हमारी भारतीय संस्कृति में एक-एक चीज, वस्तु के लिए महत्व व कहानी रहती है। डॉ. अनुराधा भार्गव का उपन्यास ‘सत्य की ओर’ में रविकान्त नायिका नयना को देखकर कहता है - “आज से आप पीली साड़ी कभी नहीं पहनेंगी। नयना जी, बुरा नहीं मानना। हमारे यहाँ एक कहावत है कि पीला रंग विरह की निशानी है।” <sup>79</sup>

आज भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य सभ्यता के प्रादुर्भाव होने के पश्चात् भी मनुष्य में पूरी तरह आधुनिकता नहीं आई। अभी भी मनुष्य रूढ़िगत विचारों से जकड़े हुए हैं। आज भी मनुष्य रास्तों में आने वाले किसी भी विधवा स्त्री को देखने से अपशगुन मानते हैं और सोचते हैं कि कार्य बिगड़ जायेगा। राजेन्द्र पाण्डये का उपन्यास ‘श्रद्धांजलि’ में श्रद्धा सोचती है - “काकी ने मुझसे यही छिपाने की कोशिश की है कि मैं सारी जिंदगी अब विधवा बनकर ही रहूँगी। समाज मुझे घृणा की दृष्टि से देखेगा और गाँव बाग की औरतें मुझे मर्दमार की संज्ञा देगी। लेकिन इस अनहोनी की सजा मुझे क्यों मिलनी चाहिए? पति की आकस्मिक मृत्यु हो गई तो इसमें मेरा क्या कसूर है। समाज मुझे क्यों मजबूर कर रहा है एक वैधव्य जिंदगी जीने के लिए? इस बात का जिम्मेदार मुझे क्यों ठहराया जा रहा है।” <sup>80</sup>

अर्थात् आज के बदलते परिवेश में मानव अपनी पुराने शाश्वत मूल्यों को महत्व दे रहे हैं। इन शाश्वत मूल्यों पर अमल करते-करते मनुष्य को पता नहीं चलता

कि जीवन में क्या अपनना और क्या छोड़ना है। यही कारण है कि अनेक लोग अंधविश्वास को बढ़ावा देते हैं। सभी कार्यों में शगुन व अपशगुन देखने लगे हैं। गोविन्द मिश्र का उपन्यास 'फूल, इमारते और बन्दर' में मोहन्ती को देखकर लेखक कहते हैं - "जो सज्जन प्रधानमंत्री पद के लिए चुने गये उन्होंने शपथ लेने का भी मुहूर्त निकलावाया।"<sup>81</sup>

### 6.2.5 आचार-विचार, वेशभूषा व रहन-सहन में संस्कृति

भारतीय संस्कृति में आचार-व्यवहार, नैतिक मूल्य से सम्बन्ध रखता है। क्योंकि नैतिक मनुष्यों के मन एवं आचरण दोनों में शुद्ध रखता है। व्यवहार में व्यक्ति का चाल-चलन, बोलना, उठना आचरण करना शामिल होता है। हमारे व्यवहार को प्रभावित करने में हमारे माता-पिता बड़े-बूढ़े तथा वातावरण का हाथ होता है। एक बच्चा जन्म से ही आसपास के वातावरण से प्रभावित होने लगता है। यदि अच्छा वातावरण रहा तो बच्चे में भी सद्व्यवहारिकता होगी। इसके विपरीत दूषित वातावरण उसके मन में कलुषता भर उसे दूषित कर देता है। यही नहीं व्यक्ति के आचरण के सम्मुख पैसा भी व्यर्थ होता है। मधु धवन का उपन्यास 'जुर्माना' में शुचि का विवाह एक साधारण परिवार में हुआ है जबकि उसके माता-पिता पैसे वाले हैं। जब वह अपने माता-पिता के घर आती है उसकी माँ उसकी भौतिक सुख-सुविधाओं से बुरा लगता है। उसके मन में आता है क्या ससुराल घर नहीं होता। वह अपने भाई रूपेश को अपनी माँ के व्यवहार के बारे में बताती है। यहाँ रूपेश सद्व्यवहार वाला है। उसमें आचार-व्यवहार के प्रति यह मानता है - "जिस घर में लड़की जाती है वही उसका अपना असली घर है। पैसा ही तो सब कुछ नहीं होता। उनका आचरण, व्यवहार, परिवार के हर व्यक्ति के अस्तित्व को बनाए रखना जीवन में पैसों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।"<sup>82</sup>



मनुष्यों के आचरण उनके सद्ब्यवहार से ही पता चल जाता है। अगर हमारे घर में मेहमान आए तो उनकी सेवा से, हमारे व्यवहार से, हमारे आचार-विचारों का पता लग जाता है। सूर्यबाला का उपन्यास 'सुबह के इंतजार तक' में जयशंकर की दशा को देखकर लेखिका कहती है - "किसी के कुंडा खटखटाने के साथ ही घर के अभाव और बेपर्दी को छिपाने की जी तोड़ कोशिश, घर में हम चाहे हफ्तों से गुड़ की हल्की चाय पी रहे हो, असमय आए मेहमान के लिए एक छोटी टिन की डिब्बी में सहेज कर रखी चीनी, दो-एक साबुत कपा।" <sup>84</sup>

मनुष्य के आचार-विचार में मनुष्यता का हित होता है। पर आज के युग में उसका लोप होते हुए दिखाई दे रहा है। अमीर हो या गरीब व्यक्ति की आचार-व्यवहार से उनकी मनुष्यता को परखा जा सकता है। अच्छे सद्ब्यवहार व्यक्ति नेक रास्ते, ईमानदारी को अपनाता है। महेश गुप्त का उपन्यास 'तीसरा मोड़' में देवव्रत एक गरीब घर का लड़का है। वह साइकिल की दुकान पर कार्य करता है। वहाँ पर एक दिन सूर्यकान्तजी जो कि एक विद्यालय में शिक्षक हैं रुपयों का बैग खो जाने से सूर्यकान्त जी बहुत परेशान हैं, यहाँ तक जो लोग शिक्षक सूर्यकान्त की प्रशंसा करते थे, उनसे अपना काम करवाते थे वे भी सूर्यकांत पर छींटाकशी करने लगते हैं। प्रिंसिपल तो पुलिस बुलवाने वाला है। लेकिन जैसे ही देवव्रत को अपनी दुकान पर रुपयों का बैग देखता है वह उल्टे पाँव भागा-भागा सूर्यकांत जी को बैग लौटाकर उनको अपमानित होने से बचा लेता है। यह देवव्रत के आचार-व्यवहार के लिए स्कूल के समान विद्यार्थियों और शिक्षक के मध्य सम्मानित करना चाहते हैं। तब वह कहता है - "यह तो मेरा फर्ज था सर, इसमें सम्मानित करने की क्या बात है?" <sup>84</sup>

आज मनुष्य पहनावे-ओढ़ावे से ही संस्कृति समझने लगे हैं। औद्योगिकरण व मशीनीकरण ने भारतीय संस्कृति की सभ्यता में परिवर्तन ला दिया है। लड़के-लड़कियों में जीने के तौर-तरीके, पहनावे और मन के व्यवहार बदल गए हैं। पहनावों को ज्यादा

महत्व देने लगे हैं। मनुष्य वेष-भूषा से दूसरों को आकर्षित करना चाहते हैं। बृजनारायण सिंह का उपन्यास 'समर्पिता' की नायिका समर्पिता की माँ अपने पड़ोसी से आजकल की लड़कियों के बारे में बातचीत करते हुए कहती है - “आजकल तो अजीब-अजीब से फैशन चल निकले हैं। लड़कियों को अब लड़ाकों के कपड़े ज्यादा पसंद आते हैं। यह भी जब देखों बहन जी उसे क्या कहते हैं - “बेलबाटम, उसी की धुन लगाये रहती है। पर मैंने तो कह दिया अपनी ससुराल जाना। जैसा सास-ससुर पहनावें पहनना। मेरे यहाँ जब तक रहना है लड़कियों की तरह रहो।” <sup>85</sup>

इसी तरह मध्यवर्ग या उच्चवर्ग के लोग अपनी संपन्नता को वेशभूषा के द्वारा ही दिखाना चाहते हैं। सूर्यबाला के उपन्यास 'दीक्षांत' का शर्मा कॉलेज में दूसरी प्राध्यापिका रीना सूरी को देखकर शर्मा व दूसरे लेक्चरर्स बातचीत करते हैं - “रीना सूरी की सैंडिलों की ऊँचाई देखकर तो मुझे लगता है, अगर किसी को खुदकुशी करनी है तो इसके सैंडिलों से कूदकर कर ले। कमलेश पांडे ने निर्णयात्मक उक्ति के साथ कहा - कॉलेज न हुआ फैशन परेड़ हो गयी।” <sup>86</sup> इस तरह मध्यवर्गीय लाचारियों को सादगी और उच्चवर्गीय संपन्नता को दिखावा कहकर संतोष प्राप्त कर लेती है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी पूजनीय है। पूरी नारी मातृत्व से बनती है। आज नारी पहनावे-ओढ़ावे के अलावा आकर्षक रहने के लिए वह सब कुछ त्यागने के लिए तैयार हो जाती है। आजकल की आधुनिक नारी बाहरी आडम्बरों के लिए अपने को सुन्दर बनाये रखने के लिए बच्चे को माँ का दूध भी नहीं पिलाती। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास 'संयुक्ताक्षर' में लेखक आज की आधुनिक नारी को देखकर कहते हैं - “आधुनिक महिलाओं पर चला गया, जो अपने बच्चों को अपना दूध भी पिलाना उचित नहीं समझती। सुन्दरता में कहीं भद्दापन न आ जाए। इन सबके लिए वे मातृत्व से सर्वथा के लिए दूर उन्हें रख देती है। मातृत्व से कोसों दूर इन आधुनिक बच्चों की मंडली आदर्श समाज की स्थापना करने में कितना सक्षम होगी।” <sup>87</sup>

वेषभूषा से ही आज मनुष्य को इज्जत मिलती है। बाहरी पहनावा से आज उसकी पहचान हो रही है। अमीर-गरीब उनके वेषभूषा से जांचा जाता है। डॉ. कश्मीरी लाल का उपन्यास 'खूँटे का सत्तू' उसके दोस्त के साथ बाहर खाने को जाता है। वहाँ दुकानदार उनके मैले कपड़े को देखकर उनका अपमान कर देता है। इस संदर्भ में यह कथन प्रस्तुत होता है - "दोनों दुकान में घुसने लगे तो मालिक ने टोका- "ऐ! कहाँ घुसते जा रहे हो? अन्दर क्या चाहिए? कुछ खाएंगे-पिएंगे। पैसे हैं? हाँ है। कितने हैं? तुमको क्या? हम पैसे देंगे... और देख लाला। हमें कोई भिखारी, मंगता मत समझिओ। ठीक है। वे दोनों भीतर चले गए। सत्तू ने यहाँ अपना अपमान होते देखा - महसूस था। बोल पड़ा - यह दुनिया सिर्फ कपड़े देखती है।" <sup>88</sup>

भारत में भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का प्रचलन है तथा अनेक धर्म भी। सबके अलग-अलग तौर-तरीके, रहन-सहन होते हैं। शहरी गाँव के रहन-सहन भी अलग होते हैं। राजेन्द्र पाण्डेय का उपन्यास 'चुटकी भर चन्दन' में प्रभात के पिता कहते हैं- "खेतों में खिले सरसों के फूल से अब वह कई कोसों दूर होता जा रहा था। मिट्टी की सौंधी महक में पला तन-मन न जाने किस प्रदूषित रहन-सहन में अमा-समा जायेगा और गंवई संस्कृति-सभ्यता धुल जायेगी। शहरी बनावट के जल से। यह न उसे ही पता था और उसके दादू को।" <sup>89</sup>

किसी भी प्रदेश में व्यक्ति का स्थानांतरण हो तब व्यक्ति को उस प्रांत के रहन-सहन से प्रभावित होने में देरी लगती है। उन्हें अपनी जगह से ही लगाव रहता है। चित्रा मुदुगल का उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में हरीन्द्र अंकिता से स्त्रियों के स्वभाव के बारे में कहता है - "इस देश की स्त्री को यहीं का खुला हवा-पानी चाहिए... यहाँ की मिट्टी का पौधा यहीं के मौसम के अनुशासन में जी सकता है। बाहरी और उधार लिया हवा-पानी उसे पच नहीं सकता।" <sup>90</sup>

अर्थात् आज हमारा देश अपनी पुरानी संस्कृति और सभ्यता को छोड़ रहा है। नये फैशन-परस्त जीवन को अपनाने लगा है। इस कारण अपने रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहार, रहन-सहन आदि में बदलाव होने लगा सांस्कृतिक मूल्यों में आदान-प्रदान होने लगा है। इस फैशन परस्त जीवन के कारण मनुष्य-मनुष्य के सोच विचार में परिवर्तन आ रहा है। सूर्यबाला का उपन्यास 'सुबह के इंतजार तक' में जयशंकर की माँ अपनी बहु को देखकर कहती है - *“सिर्फ नई-नई संपन्नता का नए फैशन के साथ मेल बिठाने में मगन रहती है। सही गलत समझने का विवेक और संतुलन इस उलताई लहर में पूरी तरह बह गया था। खाने-पीने तक में पुराने ढंग की पूड़ी-कचौड़ी, हलुए-गुलगुले की जगह इटली-डोसे, छोले-भटूरे और आइस्क्रीम का बखान ज्यादा करती, बड़ी दरियादिली से मांगती-खाती।”*<sup>91</sup>

इस तरह भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक स्थितियों में मूल्य परिवर्तन को बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

## सन्दर्भ सूची

1. महासमर-अधिकार, नरेन्द्र कोहली पृ: 30
2. अंतराल, नरेन्द्र कोहली, पृ: 94
3. भारत का संविधान, भाग-3,21,1 पृ: 8
4. सीपी भर सुख, कुसुमांजलि, पृ: 13
5. The Poble of untouchability in India: Mahatama Ghandhi
6. गाँधी विचार दोहन, पृ: 41  
(गाँधी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, डॉ. अरविन्द घोष)
7. संयुक्ताक्षर, राजेन्द्र पाण्डेय चन्द्र, पृ: 62
8. खूँटे, कश्मीरी लाल, पृ: 38
9. सवालोंने के बीच, बनाफर चन्द्र पृ: 62
10. जिद्दी, इस्मत चुगलाई, पृ: 53
11. तोड़े कारा तोड़ो, नरेन्द्र कोहली, पृ: 7
12. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पृ: 51
13. सत्य की ओर, डॉ. अनुराधा भार्गव, पृ: 30
14. तोड़े कारा तोड़ो, नरेन्द्र कोहली, पृ: 198
15. टूटा हुआ आदमी, डॉ. विष्णु पंकज, पृ: 30-31
16. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 25
17. सत्य की ओर, डॉ. अनुराधा भार्गव पृ: 30
18. महासमर-प्रत्यक्ष, नरेन्द्र कोहली, पृ: 222
19. हैमबरगर, कमल कुमार पृ: 58
20. तोड़े कारा तोड़ो, नरेन्द्र कोहली, पृ: 31
21. शतरूपा, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 90

22. अभिज्ञान, नरेन्द्र कोहली, पृ: 144
23. विजयी, रासबिहारी बेहरा, पृ: 38
24. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 80
25. अभिज्ञान, नरेन्द्र कोहली, पृ: 62-63
26. समय सरगम - कृष्णा सोबती, पृ: 73
27. अभिज्ञान, नरेन्द्र कोहली पृ: 59
28. हैमबरगर, कमल कुमार, पृ: 115
29. अंतराल, नरेन्द्र कोहली, पृ: 112
30. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 131
31. चुटकी भर चंदन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 25
32. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 131
33. सवालों के बीच, बनाफर बच्चर पृ: 64
34. चुटकी भर चंदन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 29
35. अभिज्ञान, नरेन्द्र कोहली, पृ: 20
36. दौड़, ममता कालिया, पृ: 164
37. चुटकी भर चंदन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 27
38. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 131
39. चुटकी भर चंदन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 27
40. जुर्माना, डॉ. मधु धवन, पृ: 21
41. तोड़ो कारा तोड़ो, नरेन्द्र कोहली, पृ: 195
42. दौड़, ममता कालिया, पृ: 49
43. शतरूपा , यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 169
44. जर्जर सेतु, डॉ. देवराज पथिक, पृ: 52

45. तोड़ो कारा तोड़ो, नरेन्द्र कोहली, पृ: 194
46. जर्ज सेतु, डॉ. देवराज पथिक, पृ: 56
47. महासमर-प्रच्छन्न, पृ: 286-89
48. सीपी भर सुख कुसुमांजलि, पृ: 11
49. अन्तर्मन, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 132
50. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, पृ: 82
51. आघात, डॉ. सुदेश भाटिया, पृ: 92
52. दो रंग, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 29
53. अन्तर्मन, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्रपृ: 192
54. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, पृ: 34
55. वरुण के बेटे, नागार्जुन, पृ: 54
56. रुको द्रौपदी, बलभद्र तिवारी, पृ: 78
57. जिद्दी, इस्मत चुगताई, पृ: 79
58. सत्य की ओर, डॉ. अनुराधा भार्गव, पृ: 31
59. सूखे आँसू, सविता राघव अविनाश, पृ: 46
60. रुको द्रौपदी, बलभद्र तिवारी, पृ: 59
61. शतरूपा, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 185
62. अपनी सलीबे, नमिता सिंह, पृ: 183
63. घूंघट, डॉ. सुदेश भाटिया, पृ: 33
64. शतरूपा, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 102
65. रुको द्रौपदी, बलभद्र तिवारी, पृ: 82
66. तलाक-दर-तलका, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र पृ: 52
67. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, पृ: 34

68. दौड़, ममता कालिया, पृ: 56
69. चुटकी भर चंदन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 39
70. श्रद्धांजलि, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 115
71. संयुक्ताक्षर, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 107
72. समय सरगम, कृष्णा सोबती पृ: 92
73. अक्षरों के आगे मास्टर जी, भैवर प्रसाद गुप्त, पृ: 22
74. अन्तर्मन, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 103
75. आघात, डॉ. सुदेश भाटिया, पृ: 68
76. खूंदे, डॉ. कश्मीरी लाल, पृ: 73
77. जिद्दी, इस्मत चुगताई, पृ: 12
78. अन्तर्मन, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, पृ: 103
79. सत्य की ओर, डॉ. अनुराधा भार्गव, पृ: 53
80. श्रद्धांजलि, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 116
81. फूल, इमारतें और बन्दर, गोविन्द मिश्र, पृ: 34
82. जुर्माना, मधु धवन, पृ: 48
83. सुबह के इंतजार में, सूर्यबाला पृ: 79
84. तीसरा मोड़, महेश गुप्त, पृ: 28-29
85. समर्पित, बृजनाराण सिंह, पृ: 23
86. दीक्षांत, सूर्यबाला, पृ: 23
87. संयुक्ताक्षर, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 102
88. चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, पृ: 20
89. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, पृ: 255
90. सुबह के इंतजार तक, सूर्यबाला, पृ: 98



# सप्तम अध्याय

उपसंहार

## सप्तम अध्याय

### उपसंहार

सामान्यतः साहित्य की विषय वस्तु समाज से ही जुड़ी रहती है। जैसा समाज होगा, वैसा ही साहित्य होगा। तभी यह माना जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। हिन्दी साहित्य का सृजन समाज और मानव जीवन की गतिविधियों से उत्पन्न समसामयिक परिस्थितियों के अनुरूप हुआ है। ऐसे में किसी भी साहित्यकार के साहित्य का अध्ययन करने के लिए उस समय के परिवेश का अध्ययन अनिवार्य है। हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाएँ जैसे निबंध, कहानी, रेखाचित्र, रिपोर्टाज, एकांकी आदि का जिस तरह विकास हुआ है, उसी तरह से उपन्यासों का भी विकास हुआ है। मानव जीवन का संघर्ष और उसे अन्तरमन में उठने वाले क्रिया-प्रतिक्रियाओं को उपन्यासकार प्रतिबिम्बित करता है। उपन्यास में नाम अलग होते हैं, शेष घटनाएँ और उनका चित्रण यथातथ्य और प्रायः सत्य हुआ करता है।

उपन्यास तथा मानव व उससे जुड़े समाज के सभी प्रकार के मूल्य किसी न किसी प्रकार प्रकट करता ही आता है। यह परंपरा प्रेमचन्द्र युग से लेकर आज तक समयानुकूल प्रतिबिम्बित होती आ रही है। इसलिए बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में चित्रित मानव के जीवन मूल्यों का चित्रण स्वाभाविक रूप से उपलब्ध हो ही जाता है। अन्तर इतना ही है कि परिवर्तित सामाजिक मूल्यों के परिवर्तन की दिशाएं क्या है, उसका अध्ययन करना ही मेरे इस शोध विषय का मूल उद्देश्य रहा है। मैंने अपने शोध विषय के अध्ययन की सुविधा के लिए इसे सात अध्यायों में विभक्त किया है।

अच्छे मूल्यों के अभाव में समाज अमानवीय राहों से होकर भटकेगा। किसी व्यक्ति के जीवन में मूल्य-विघटन शुरू होने पर उसका प्रभाव उसके और उस से संबन्धित जीवन के हर क्षेत्र में दिखाई पड़ेगा। उसी प्रकार आदर्श जीवन को मान्यता देकर उसके पक्षधर रहने वालों की और उनके अनन्तर आने वाली पीढ़ियों की भी तदनुकूल प्रगति अवश्यक होती रहेगी। मूल्य परंपरागत संस्कारों से विकसित एक संकल्प है।

डॉ. शम्भूनाथ सिंह के अनुसार - “मूल्य ऊपर से अरोपित नहीं किए जाते। वे या तो परंपरागत संस्कारों के भीतर से उपलब्ध होकर मनुष्य के अस्तित्व के अंग बन जाते हैं या फिर नई परिस्थितियों और पूर्व प्रचलित परंपरा के संघर्ष से मनुष्य के मन में नए रूप में जन्म लेते हैं। मूल्यों की कलम नहीं लगाई जाती है। वे राष्ट्रीय परंपरा की जमीन में स्वतः उगते और विकसित होते हैं।”

**प्रथम अध्याय** समसमायिक भारतीय समाज और जीवन मूल्यों से संबन्धित है। इस अध्याय में मूल्यों की परिभाषा, अर्थ आदि को दिखाकर समकालीन परिस्थितियों के साथ विभिन्न मूल्यों के वर्गीकरण को दर्शाया है। यह विभिन्न मूल्य हैं - सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक व सांस्कृतिक आदि। इस वर्गीकरण को समीचीन नहीं माना जा सकता। क्योंकि मूल्य तो स्थायी है, परन्तु परिस्थितियों के प्रभाव के कारण उनसे जुड़े मूल्यों में परिवर्तन होता रहता है। जीवन जगत में व्यवहार के क्षेत्रों की कोई सीमा नहीं है। उसी प्रकार मूल्यों के वर्गीकरण का भी कोई निश्चित आधार नहीं हो सकता।

**द्वितीय अध्याय** बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के उपन्यास का एक सर्वेक्षण-जीवन मूल्य के परिप्रेक्ष्य में है।

**तृतीय अध्याय** बीसवीं सदी के अन्तिम उपन्यास और सामाजिक जीवन मूल्य से संबंधित है। इस अध्याय में व्यक्ति के वैयक्तिक आचरण और आदर्श ही समाज

को मूल्यहीन और अनाचरण से बचा सकता है। जैसे यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र का उपन्यास 'दो रंग', डॉ. विष्णु पंकज का 'टूटा हुआ आदमी', डॉ. मधु धवन का 'उस मोड़ पर', 'मैं सृष्टि की आत्मा हूँ', रामदेव शुक्ल का 'गिद्धदोक', सूर्यबाला का 'दीक्षांत' आदि उपन्यास परिवार के प्रति व्यक्ति के नैतिक आचरण को प्रवृत्त होते हुए दिखाये हैं। इसके अतिरिक्त राजदेव प्रियंवर का 'पिंजरे के पंछी', डॉ. विष्णु पंकज का 'टूटा हुआ आदमी', देवराज पथिक का 'जर्जर सेतु', अनुराधा भार्गव का 'सत्य की ओर' आदि उपन्यासों में उपन्यासकार अपने पात्रों के जरिये परिवार व सामाजिक परिवेश में अपने वैयक्तिक गुण जैसे त्याग, ईमानदारी, सत्य, कृतज्ञता आदि नैतिक गुण पारिवारिक मूल्यों के मूल स्तंभ बताया गया है। क्योंकि इन नैतिक मूल्य में वह शक्ति रहती है जो व्यक्ति को परिवार व समाज के सही मूल्यों से अवगत कराती है। मानव को पशु जगत् से अलग करती है।

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र उग्र का उपन्यास 'यातना घर' के पात्र हजारी के अनैतिक कार्यों को देखकर उपन्यासकार का विचार है कि सत्य ही हर वक्त विजय दिलाता है। वे कहते हैं - *“सच्चाई से साक्षात्कार करने वाला व्यक्ति ज्यादा सुखी होता है। असत्य की सबलता ज्यादा नहीं होती। सत्य की दुर्बलता और असत्य की सबलता का योग बराबर होता है।”*<sup>2</sup> सत्य बार-बार पराजित होकर भी अंतोगत्वा वह विजय ही होता है। पाप, अधर्म, हिंसा कभी न कभी अवश्य मरते हैं। धर्म, अहिंसा, सत्य और नैतिकता चिरंजीवी है।

यह शाश्वत मूल्य ही मनुष्य को किसी भी विपदाओं में अपनी अलग प्रतिष्ठा स्थापित करवाता है। डॉ. जगदीश गुप्त के अनुसार - *“मूल्य आने आप में एक*

इसी प्रकार परिवार समाज की महत्वपूर्ण कड़ी है। परिवार की स्थापना वैवाहिक सम्बन्ध के आधार पर ही होती है। मैकाश्वर और पेज ने लिखा है - “परिवार एक ऐसा समूह है जो पति-पत्नी के साथ रहने और बच्चों के साथ मिलकर एक विशिष्ट ईकाई बनाने से होता है।”<sup>4</sup>

समाज को सुगठित रूप से चलाने के लिए स्वस्थ परिवारों का होना आवश्यक है। पारिवारिक वातावरण में मानवीय अनुबंधों का घनीभूत रूप परिलक्षित होता है।

कुछ उपन्यासकार अपने उपन्यासों में परिवारों में मानव को आत्मीयता व प्रेम के बंधन में बांधते हैं जैसे देवराज पथिक का ‘जर्जर सेतु’, ‘अभिज्ञान’, ब्रजनाराण सिंह का ‘समर्पिता’ आदि में परिवार को एकसूत्र में बांधते हुए दिखाये हैं। इनके अतिरिक्त कुछ उपन्यासकार अपने उपन्यासों में आधुनिक वैज्ञानिक युग के परिवेश में बदलते वैयक्तिक एवं पारिवारिक मूल्यों की परिवर्तित स्थिति का चित्रण किया है। उपन्यासकार इस्मत चुगताई का ‘जिद्दी’, सूर्यबाला, मेरे संधि पत्र, बनाफर चन्द्र का सवालियों के बीच, यादवेन्द्र शर्मा का अन्तर्मन’ आदि में अपने वैयक्तिक मूल्य विघटित गुणों के कारण परिवार की एकसूत्रता टूटते हुए दर्शाया है। इसके अलावा माता-पिता, पुत्र-पुत्री, सास-ससुर-बहु, देवर-भाभी-ननद आदि के बीच के सम्बन्धों में विघटन की स्थिति को भी कुछ उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

जैसे समर्पिता, खूँटे, अंतिम साक्ष्य, सत्य की ओर, अग्निपंखी, समय सरगम, करवट लेता वक्त आदि उपन्यासों में विघटन की स्थिति को दर्शाया गया है। जर्जर सेतु, सुबह के इंतजार तक, पिंजरे के पंछी, अपनी सलीबे, सीपी भर सुख, टूटा हुआ आदमी, घूँघट आदि में भाई - बहन, भाई-भाई के बीच झलकने वाली आत्मीयता को चित्रित किया गया है। सास-ससुर-बहु के बीच के सम्बन्धों को कुछ उपन्यासों में जैसे समर्पिता, वरुण के बेटे, घूँघट, शतरूपा, अग्निपंखी आदि में विघटित होते हुए दिखाया गया है। सास-बहु का रिश्ता माँ-बेटी का रिश्ता होता है। मगर उपरोक्त उपन्यासों में

इसके विरुद्ध स्थिति ही पायी गयी है। मगर 'आघात' उपन्यास में उपन्यासकार ने सफल होते हुए भी दिखया है। इन रिश्तों के अतिरिक्त भाभी-ननद-देवर का सम्बन्धों में भी जो विघटन की स्थिति पैदा हुई है उसके कारणों को भी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में बताने की कोशिश की है। 'जर्जर सेतु' में दीपक पात्र के माध्यम से अपनी भाभी के प्रति रिश्ते के सही मूल्यों को उजागर किया है। इसी प्रकार 'सवालियों के बीच' 'काली सुबह का सूरज' में इन रिश्तों में आने वाले दरार को दर्शाया है अर्थात् इन विघटन की स्थिति के कारण आज समष्टि से व्यष्टि की ओर बदलते परिवारों के स्वरूप और स्वभावों पर भी प्रकाश डाला है।

काली सुबह का सूरज, करवट लेता वक्त, अर्थांतर, अंतिम साक्ष्य आदि उपन्यासों में व्यष्टि परिवारों में विघटित मूल्यों को दर्शाते हुए दाम्पत्य जीवन में उठने वाली समस्याओं का चित्रण हुआ है। सत्य की ओर, अंमित साक्ष्य, जर्जर सेतु, अर्थांतर आदि उपन्यासों के पात्रों के जरिये उपन्यासकारों ने सफल दाम्पतीय जीवन के कारणों को एक जमीन अपनी, जुर्माना, धूँघट, तलाक दर तलाक, उस मोड़ पर, अर्थांतर, जिद्दी, काली सुबह का सूरज, रुको द्रौपदी आदि उपन्यासों में दर्शाया गया है।

जिस तरह सामाजिक मूल्यों में पारिवारिक मूल्यों का योगदान है उसी प्रकार पारिवारिक मूल्यों में वैवाहिक मूल्य। विवाह स्त्री-पुरुष की आत्माओं का मिलन ही है। आजकल स्त्री-पुरुष अपने परिवार के अनेक दबावों के कारण जैसे दहेज, अनमेल आदि विवाहों से बचाने के लिए समाज में प्रेम व अन्तर्जातीय विवाह के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा है। विवाह का सही अर्थ को उपन्यास रुको द्रौपदी, सीपी भर सुख, धूँघट में उजागर किया है। काली सुबह का सूरज, संयुक्ताक्षर, गिद्धलोक, एक जमीन अपनी, अंतिम साक्ष्य आदि में अनमेल विवाह और अधिक दहेज के कारण होने वाले परिणाम को तलाक दर तलाक, आकांक्षा, संयुक्ताक्षर, पिंजरे के पंछी, करवट लेता

वक्त, अंतिम साक्ष्य आदि उपन्यासों में कुशलता के साथ चित्रित किया गया है। इस दहेज के कारण ही अनमेल, विलंब आदि विवाह होने लगे हैं। काली सुबह का सूरज, घूँघट, सवालियों के बीच, पिंजरे के पंछी आदि उपन्यासों में अतंर्जातीय और जर्जर सेतु, दो रंग, पिंजरे के पंछी, अधिकार, दौड़, जुर्माना आदि में प्रेम विवाह को उजागर किया गया है। अर्थात् सामाजिक मूल्यों में स्त्री-पुरुषों के बीच की परिवर्तित मानसिक स्थिति, नारी-नारी के बीच की मूल्यों को भी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में दर्शाने का प्रयास किया है।

**चतुर्थ अध्याय** बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के उपन्यासों में राजनीतिक मूल्य से संबंधित है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में औद्योगिक विकास, ज्ञान-विज्ञान की प्रगति व राजनीति की प्रधानता ने देश के संपूर्ण जीवन को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया। स्वतंत्रता के साथ पूरे भारत वर्ष की जनता ने स्वर्णिम-जीवन-मूल्यों की कामना की। स्वतंत्रता के पश्चात् छा गई बेरोजगारी, महंगाई और सत्ता की भ्रष्ट नीति, चुनावों में भी भ्रष्ट, कथनी करनी में भेद, नेताओं द्वारा नारी का शोषण आदि तक स्वतंत्रता पूर्व देखे जनता के स्वप्न टूट गये।

इस अध्याय में उपन्यासकार राजनीति के सही मूल्य का अर्थ व सत्ताओं के द्वारा भ्रष्ट नीति दिखाकर विघटन की स्थिति को चित्रित किया है। उपन्यास अपनी सलीबे, एक जमीन अपनी, फूल इमारतें और बन्दर, दंडनायक, महासमर (धर्म) आदि में राजनीतिक मूल्यों को दिखाने की कोशिश की गई है। सरकारी विभागों की भ्रष्ट नीति में दंडनायक, महासमर (अंतराल), विजयी, फूल इमारते और बन्दर, महासमर (धर्म) आदि उपन्यासों में चित्रित किया गया है। स्वतंत्रता के बाद पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण के नाम पर अपनाये गए नए शैक्षणिक विचारों के प्रसार में भारतीय संस्कृति में संकट के क्षण उपस्थित हुए जिस से जनता के मूल्यों में उतार-चढ़ाव दिख पड़े हैं। इस शैक्षणिक विभागों में भी कुछ नवयुवक व प्राध्यापक पढ़ाई को छोड़ राजनीति में

जुड़े रहते हैं। गिद्धलोक, अभिजात, विजयी, अर्थांतर, दीक्षांत, महासमर (अधिकार), रुको द्रौपदी आदि उपन्यासों में शिक्षा विभागों में होने वाली मूल्य विघटन की स्थिति को पाठक के सामने सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार चिकित्सा क्षेत्रों में होने वाले भ्रष्टाचार का भी पर्दाफाश गिद्धलोक, अपनी सलीबे आदि उपन्यासों में दर्शाया गया है।

राजनैतिक क्षेत्र किसी अन्य क्षेत्र से कम विषैला नहीं है। अनैतिक रूप से कमायी अपार धन-राशि खर्च कर चुनाव लड़कर विजयी होने वाले नेता आम जनता की संपत्ति लूटने के सिवाय और कोई जनहित का कार्य न होते हुए उपन्यासों में देखने को मिले हैं। इनका चित्रण यातना घर, जर्जर सेतु, दंडनायक, समय सरगम आदि में देखा जा सकता है।

प्रजातंत्र में प्रजा शासन के लिए प्रजा के प्रतिनिधि चुने जाते हैं। लेकिन पुराने मंत्री और नेता के पुत्र-पुत्रियाँ आदि उनके नाते-रिश्तेदार भी पद संभालते हुए दिखाई देते हैं। तो मूल्य हीनता के सिवाय राजनीति में क्या पनपेगा? हर जगह भ्रष्ट नीति का बोलबाला रहता है। नेता चुनाव के समय आम जनता के सामने जो वायदे करते हैं वे चुनाव के बाद भूल जाते हैं। वे अवैधिनिक रूप से धन इकट्ठा करने लगते हैं। इस संबंध में डॉ. हेतु भरद्वाज का कहना है - “आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से टूटे समाज को फिर भी सरलता से उबारा जा सकता है, किन्तु जो समाज सांस्कृतिक दृष्टि से मूल्यहीन हो जाता है, उसका उपचार बहुत सरलता से नहीं होता क्योंकि मूल्यों के अभाव में समाज सहज रूप से ही अमानवीय लक्ष्यों की ओर गतिवान होने लगता है।”<sup>5</sup>

उपन्यास फूल इमारते और बन्दर, पिंजरे के पंछी, यातना घर, दंडनायक, महासमर (कर्म), गिद्धलोक, टूटते गाँव बनते रिश्ते, बात अडतालीस, चुटकी भर चन्दन, अक्षरों के आगे मास्टरजी, दीक्षांत, सवालें के बीच, वरुण के बेटे आदि में



सरकारी विभागों के भ्रष्ट नीति को उपन्यासकारों ने उल्लेख किया है। अर्थात् समाज में भ्रष्टाचार करना घूस लेना-देना आदि सर्वमात्र में व्याप्त है। इस कारण मानवीयता का लोप होता जा रहा है। इसी को हिन्दी उपन्यासकारों ने उपन्यासों में उजागर किया है। इसके अतिरिक्त पुलिस कर्मचारी जो आम जनता के रक्षक बनकर रहने वाले ही सत्ताधरियों के रखवाले बनकर जनता को लूटते हैं। उपन्यास पिंजरे के पंछी, गौरी, दंडनायक, जर्जर सेतु, अक्षरों के आगे मास्टर जी, फूल इमारतें और बन्दर, चुटकी भर चन्दन, विजयी आदि में पुलिस कर्मचारियों के भ्रष्ट व्यवहारों को उपन्यासकारों ने उजागर किया है। इनके अलावा आम जनता के जरिये चुने गये प्रजा प्रतिनिधि जो दलबदल नीति में व चुनावी आदि के समय जो जनता से कहते हैं उसके विपरीत होते हुए उपन्यासकारों ने उपन्यासों में प्रवृत्त किया है जो उपन्यास है महासमर (प्रच्छन्न), तीसरा मोड़, गिद्धलोक, फूल इमारतें और बन्दर, सत्य की ओर, टूटते गाँव बनते रिश्ते, चुटकी भर चन्दन, यातना घर, महासमर (अधिकार) आदि में इसका बोलबाला है।

ऐसे सामंतवर्ग और नेता लोग राजनीति के कर्णधार रहने के कारण ही आम आदमी आज असुरक्षित महसूस कर रहा है। कुर्सी पर बैठते ही नैतिक मूल्यों को भूलकर पैसा बटोरना ही उनका जीवन का लक्ष्य बन गया है।

मणिका मोहिनी के अनुसार - “राजनीति जिससे हम दो-चार हो रहे हैं, अगर वही राजनीति है तो यह राजनीति लेखक का कितना अपना क्षेत्र हो सकता है। यह कहना और समझना कठिन है। राजनीति केवल ‘राज’ की ही नहीं होती, सामान्य जन की भी होती है। वह उसे आर्थिक, सामाजिक भौतिक और आध्यात्मिक रूप से प्रभावित करती है। राजनीति उसके अपने और समाज की है, जिससे वह उस समाज अंग के रूप में प्रभावित होता है या उसे प्रभावित करता है। अगर प्रभावित नहीं कर

सकता तो कुंठित होता है या राजनीति उसे अपना मोहरा बना लेती है। यह राजनीति धर्म की हो या सम्प्रदाय की या कठमुल्येपन की या अर्थ की।”<sup>6</sup>

**पंचम अध्याय** बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के उपन्यासों में आर्थिक मूल्य से संबंधित है। मनुष्य समाज में रहकर एक-दूसरे के सहयोग में ही अपने समस्त कार्यों को सम्पन्न कर सकता है। वह अपनी इच्छा से बहुत से कार्य कर तो सकता है परन्तु उनके प्रयोग के लिए समाज का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है और वहीं वैयक्तिक और सामाजिक मूल्यों का समभाव है। अतः मूल्यों के बिना जीवन, जीवन ही नहीं है।

मानव में भौतिक सुख को ही मान लिया है। इसके परिणामस्वरूप उसका जीवन दुःखमय होता जा रहा है। अतः अर्थ से उत्पन्न समस्याओं को ही इस अध्याय में उजागर किया गया है। मानव जीवन के हर क्षेत्र में जैसे वैवाहिक स्तर, पारिवारिक, दाम्पत्य में और रिश्तों के आपसी सम्बन्धों में अर्थ के महत्व का बोलबाला ही रहा है। उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में अर्थ के पीछे अंधी दौड़ के कारण पारिवारिक, वैवाहिक, दाम्पत्य आदि में दरार होते हुए दर्शाया है। आकांक्षा, महासमर (कर्म), खूटे आदि उपन्यासों में धन की महत्व को बताया गया है। जर्जर सेतु उपन्यास में अर्थ के सही मूल्यों को उजागर किया है। विवाह वह पारिवारिक मूल्यों में मैं सृष्टि की आत्मा हूँ, संयुक्ताक्षर, जुर्माना, पिंजरे के पंछी, करवट लेता वक्त तक वैवाहिक स्तर में और तोड़ो कारा तोड़ो, समर्पिता, जुर्माना, रिश्तों के बीच, हैमबरगर, आकांक्षा, शतरूपा, जर्जर सेतु, तलाक दर तलाक, दौड़, अंतिम साक्ष्य आदि उपन्यासों में पारिवारिक मूल्यों के अर्थ का चित्रण हुआ है। अर्थ के कारण परिवार में रिश्तों के आपसी समझौते, स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में बिखराओं को भी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास चुटकी भर चन्दन, जुर्माना, उस मोड़ पर, अक्षरों के आगे मास्टर जी, आकांक्षा, घूँघट, पिंजरे के पंछी एक जमीन अपनी, अंतिम साक्ष्य आदि में प्रवर्तित किया है।

समाज में जन-जीवन के उतार-चढ़ाव का कारण अर्थ ही होता है। मानसिक व शारीरिक कई रोग इत्यादि के शिकार वे जीवन के अंतिम क्षणों में यह महसूस करने को बाध्य हो जाते हैं कि अनैतिक राह से कमाये भौतिक सामग्रियों का जीवन काल में वह जीवनोपरान्त कोई मूल्य नहीं है। डॉ. मधु धवन का उपन्यास आकांक्षा में रूपा अपने पति की स्वच्छन्दवादी भावना को देखकर शब्दों में अभिव्यक्त करती है कि -  
*“वह यदि किसी से प्रेम करता था तो केवल धन से। उसकी आँखों के केवल धन की चमक से प्रेम था।”*<sup>7</sup>

उपन्यासकारों ने परिवार के अतिरिक्त समाज में अर्थ के पीछे भागने वाले मनुष्यों को देखकर अपने उपन्यासों के पात्रों के जरिये उजागर किया है। जैसे शैक्षणिक स्तर पर, वर्ग संघर्ष, बेरोजगारी पीढ़ी जिस कारण मनुष्य रोजी रोटी के लिए, बसेरे की तलाश, में भ्रष्टाचार बढ़ना आदि को दर्शाया है। पिंजरे के पंछी, खूंटे, टूटा हुआ आदमी, घूँघट, समर्पिता, सूखे आँसू, अक्षरों के आगे मास्टरजी, सवालियों के बीच, एक जमीन अपनी, आदि उपन्यासों में समाज में अर्थ के कारण चलने वाले कुरीतियों व विसंगतियों का चित्रण किया है। शैक्षणिक स्तर में दीक्षांत, जर्जर सेतु, चुटकी भर चन्दन, गिद्धलोक, टूटते गाँव बनते रिश्ते, करवट लेता वक्ता आदि उपन्यासों में प्रवृत्त हुआ है। वर्ग संघर्ष में पूँजीपति वर्ग, मजदूरी वर्ग के शोषण होते हुए भी उपन्यासों में चित्रित हुआ है वह उपन्यास है - चुटकी भर चन्दन, अग्निपंखी, जर्जर सेतु, सवालियों के बीच, खूंटे, गिद्धलोक, अभिज्ञान आदि में प्रवृत्त हुआ है।

इस धन की महत्ता से समाज में नारी और भी दयनीय स्थिति पर पहुँच गई है। नारी अर्थ के कारणवश तनावग्रस्त यौन शोषण का शिकार हुई है, इसका चित्रण भी उपन्यासकारों ने उपन्यासों में दर्शाया है। वह उपन्यास हैं - दो रंग, शतरूपा, समर्पिता, चुटकी भर चन्दन, अधिकार, पिंजरे के पंछी, अंतिम साक्ष्य आदि।

इस अध्याय में वर्ग संघर्ष, नारी की स्थितियों के अतिरिक्त समाज में बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी आदि का शिकार होते हुए नारी पात्रों की दशा पर संवेदना व्यक्त की है। वह उपन्यास है - आघात, सीपी भर सुख, अग्निपंखी, सुबह के इंतजार तक, चुटकी भर चन्दन, चन्द्रकांता, टूटा हुआ आदमी, जर्जर सेतु, दंडनायक, दीक्षांत, अंतिम साक्ष्य, काली सुबह का सूरज, यातना घर आदि में चित्रित यिका है।

अर्थ के बिना जीवन की सत्ता ही सम्भव नहीं है। अर्थ आवश्यक है, यह कटु सत्य है पर मानवता को खोना तो आवश्यक नहीं है। धन-प्राप्ति के लिए मनुष्य भावात्मक सम्बन्ध भूल गया है। उसके भीतर का पशुत्व जागृत हो गया है। इसलिए वह अमानवीय कृत्य करते हुए भी संकोच नहीं करता। दरिद्रता के कारणवश आदमी अपने पेट भरने के लिए सब कुछ बेचने को बाध्य हो गया है। डॉ. कीर्तिकुमार के अनुसार - “अर्थमूलक संस्कृति में भावना को कोई स्थान नहीं मिलता। व्यावहारिक जीवन में मूल्य चाहिए।”<sup>8</sup>

औद्योगिक विकास में अर्थ की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा ने हमारे बीच एक स्पर्धा की स्थिति उत्पन्न कर दी। रुपया ही आधुनिक युग का परमात्मा बन बैठा है। आज पैसा मनुष्य-मनुष्य के बीच ऊँच-नीच की भावना पैदा कर दिया है। परिणाम सभी मनुष्य अर्थ के लिए सभी मूल्यों को कुचलता जा रहा है।

**षष्ठ अध्याय** बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्य है। जिसमें मनुष्य का धर्म वह है जो प्रकृति के साथ तालमेल रखने का काम। धर्म वही है जो प्रकृति के अनुकूल हो और अधर्म वही है जो प्रकृति के विरुद्ध हो।

धार्मिक क्षेत्रों में भी जनता के मूल्यों पर निष्ठा धीरे-धीरे टूटती जा रही है। धर्म की संकुचित गलियों में भी ऐसे लोगों की भरमार है, जो सत्य का सौदा करते हैं,

धर्म सम्प्रदाय के नाम पर वोट खरीदते हैं रंग-भेद का सांप पालते हैं, मानव को मानव से अलग करता है।

ध्वन के अनुसार - “धर्म एक सजीव भावना है, जिसका विकास के अनुसार होता है। धर्म का कार्य सामाजिक व्यवस्था को सामंजस्यपूर्ण बनाए रखना तथा व्यक्ति की आत्मा का मार्ग - दर्शन इस प्रकार करना है कि उसे अपनी अंतर्निहित शक्तियों को प्राप्त करने की शिक्षा मिल सके”<sup>9</sup>

धर्म को लेकर नरेन्द्र कोहली ने अपने उपन्यास अधिकार में युधिष्ठिर पात्र के जरिये कुंती से धर्म के मर्म को समझाते हैं कि - “धर्म ही संसार को धारण करता है। वह बोला अधर्म इसका क्षय करता है। मानव का जन्म सृष्टि के क्षय के लिए नहीं उसे धारण करने के लिए हुआ है।”<sup>10</sup>

इस उपन्यास के अतिरिक्त धर्म को लेकर अनेक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में धर्म के सूक्ष्म अर्थ को समझाया है। इन उपन्यासों में - अंतराल, सीपी भर सुख आदि प्रमुख हैं। इस धार्मिक क्षेत्र में अनेक अच्छे मूल्य भी रहते हैं और विघटन की स्थिति भी झलकती है। संयुक्ताक्षर, खूंदे, सवालियों के बीच, जिद्दी, आदि उपन्यासों में समाज में व्याप अस्पृश्यता का भी चित्रण किया गया है। द्वि धार्मिक में तोड़ो कारा तोड़ो, जर्जर सेतु, सत्य की ओर, टूटा हुआ आदमी, पिंजरे के पंछी आदि उपन्यासों में दर्शाया है। उनका कहना है कि व्यक्ति का कर्तव्य होता है कि वह सभी धर्मों का सम्मान तहे दिल से करे। और विभिन्न धर्मों से निहित अच्छाइयों को खोजने का प्रयत्न करें। इसके अलावा धर्मों में निष्काम कर्म व कर्म की महत्ता को उपन्यासकारों ने उपन्यास महासमर (प्रत्यक्ष), हैमबरगर, तोड़ो कारा तोड़ो, शतरूपा, अभिज्ञान, विजयी, पिंजरे के पंछी आदि में कर्म की महत्ता और निष्काम कर्म में अभिज्ञान, हैमबरगर, अंतराल उपन्यासों में दर्शाया है।

धर्म को सही मार्ग में जनता के सामने प्रस्तुत करने में पुरोहितगण, साधु-सन्यासी असफल रहे। इसका प्रमाण पिंजरे के पंछी, चुटकी भर चन्दन, सवालों के बीच, दौड़ अभिज्ञान आदि उपन्यासों में दिखाई देता है। धर्म के नाम पर दंगे कराने वालों का उद्देश्य जर्जर सेतु, तोड़ो कारा तोड़ो, महासमर (प्रच्छन्न), सीपी भर सुख आदि उपन्यासों में उपन्यासकारों ने चित्रित किया है।

सांस्कृतिक मनुष्य के ऐसे संस्कारों का सगुच्छ है जो उसकी प्रवृत्तियों उसकी प्रकृति तथा जीवन-दृष्टि का परिष्कार करते हैं। इस संस्कृति के ही द्वारा मनुष्य के जीवन में सत्य, अहिंसा, परोपकार, प्रेम, उदारता, निराभिमान व सहानुभूति इत्यादि गुण विकसित होते हैं। संस्कृति से मानव के आध्यात्मिक, शारीरिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक जीवन को विकसित एवं परिष्कृत करती है। इसका निरूपण अन्तर्मन, अंतिम साक्ष्य, आघात, दो रंग, अन्तर्मन, एक जमीन अपनी आदि में किया गया है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार नारी अपने पति को परमेश्वर मानती है। इसका चित्रण उपन्यासकारों ने उपन्यास वरुण के बेटे, रुको द्रौपदी, सत्य की ओर, सूखे आँसू आदि में चित्रित किया है। उसी के साथ आधुनिक परिवेश के कारण उनको विघटन के स्थिति को भी जिद्दी, शतरूपा आदि उपन्यासों में दर्शाया है।

इसके अतिरिक्त इस अध्याय में रूढ़िवादी व अंधविश्वासों के संबंध में भी कुछ उपन्यासों में उल्लेख किया गया है। इनमें अपनी सलीबे, धूँघट, शतरूपा, रुको द्रौपदी, तलाक दर तलाक, पिंजरे के पंछी, दौड़, श्रद्धांजलि, चुटकी भर चन्दन, संयुक्ताक्षर, समय सरगम आदि उल्लेखनीय हैं और अंधविश्वास के बारे में अन्तर्मन, आघात, खूँटे, जिद्दी, सत्य की ओर, श्रद्धांजलि, फूल इमारते और बन्दर आदि उपन्यासों में सचेत किया गया है।

**सप्तम अध्याय** उपसंहार है जिसमें सभी अध्यायों को संक्षेप में प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है।

लेखन का बड़ा दायित्व यह है कि मनुष्य को उसकी मनुष्यता वापस करा दे। “मनुष्य की जो मानवीयता कहीं कमजोर हो गई है, कहीं खो गई है, वह कहीं वापस हो जाय।”<sup>81</sup> भारत में नैतिक आदर्श मूल्यों को जीवित रखने की जिम्मेदारी युवा पीढ़ी की और उनके नेताओं की है। सत्य, अहिंसा, त्याग आदि हमारे प्राचीन मूल्य नष्ट हुए बिना उन की नींव पर नव भारत के निर्माण की कामना करना है जिसमें हिन्दी के साहित्यकारों का काफी योगदान रहा है। विशेषकर नवें दशक के बाद के उपन्यासकारों ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में, विघटित मानव मूल्यों को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया है। इसमें वे काफी हद तक सफल भी हैं।

## सन्दर्भ सूची

1. प्रयोगवादी और नई कविता, पृ: 56
2. यातना घर, पृ: 20-21
3. नई कविता - स्वरूप और समस्याएँ, पृ: 14
4. दाम्पत्य जीवन, पृ: 23
5. परिवेश में चुनौतियाँ और साहित्य, पृ: 14
6. गिरिराज किशोर - राजनीति में लेखकों की सक्रिय भागीदारी
7. आकांक्षा, पृ: 4
8. स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी साहित्य का समाज सापेक्ष अध्ययन, पृ: 148  
वैचारिक (त्रैमासिक), पृ: 44-454 जनवरी से मार्च 1992, संपादन :  
मणिका मोहनी
9. ध्वन : महात्मा गाँधी के राजनीतिक दर्शन, पृ: 324
10. नरेन्द्र कोहली, महासमर (अधिकार), पृ: 94
11. युग स्पन्द, पृ: 7



## ग्रन्थ सूची

### i. आधार ग्रंथ

1. दीक्षांत, सूर्यबाला, नेशनल पब्लिशिंग 1992
2. घूंघट, सुदेश भाटिया, अभिव्यक्ति 1993
3. आघात, सुदेश भाटिया, अभिव्यक्ति 1993
4. समर्पिता, ब्रजनारायण सिंह, ज्ञान भारती 1993
5. अंतिम साक्ष्य, चंद्रकांता, राजकमल 1993
6. अर्थांतर, चंद्रकांता, राजकमल 1993
7. अधिकार, यादवेन्द्र चन्द्र शर्मा, साहित्य निधि 1993
8. गिद्धलोक, रामदेव शुक्ल, नेशनल पब्लिशिंग 1998
9. टूटा हुआ आदमी, डॉ. विष्णु पंकज, एम.बी. पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स 1995
10. सत्य की ओर, डॉ. अनुराधा भार्गव, पांडुलिपि 1991
11. रुको द्रौपदी, बलभद्र तिवारी, राधाकृष्ण 1993
12. खूंटें, डॉ. कश्मीरी लाल, दिनमान 1993
13. पिंजरे के पंछी, राजदेव प्रियंवर, अरविन्द 1999
14. एक जमीन अपनी, चित्रा मुद्गल, प्रभात 1990
15. काली सुबह का सूरज, रामधारी सिंह दिनकर, जनवाणी 2000
16. मेरे संधि पत्र, सूर्यबाला, नेशनल पब्लिशिंग 2003
17. आराधना, रविन्द्र थापर, आत्माराम एण्ड सन्स 1999
18. करवट लेता वक्त, मधु धवन, पैनमैन 1991
19. जर्जर सेतु, देवराज पथिक, पांडुलिपि 1991
20. आकांक्षा, मधु धवन, साहित्य भवन 1991

21.	उस मोड़ पर, मधु धवन, पैनमैन	1999
22.	जुर्माना, मधु धवन, साहित्य भवन	1999
23.	मैं सृष्टि की आत्मा हूँ, मधु धवन, पैनमैन	2002
24.	वरुण के बेटे, नागार्जुन, वाणी	1998
25.	दौड़, ममता कालिया, वाणी,	2000
26.	सवालोंने के बीच, बनाफर चन्द्र, दिशा	1992
27.	सीपी भर सुख, कुसुमांजलि, अयन	1994
28.	दो रंग, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, अरुण	1992
29.	अन्तर्मन, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, अरुण	1992
30.	समय सरगम, कृष्णा सोबती, राजकमल	2000
31.	अपनी सलीबे, नमिता सिंह, वाणी प्रकाशन	2003
32.	अग्निपंखी, सूर्यबाला, क्रांत अकादमी	2001
33.	सुबह के इंतजार तक, सूर्यबाला, क्रांत अकादमी	2001
34.	जिद्दी, इस्मत चुगताई, वाणी	2001
35.	यातना घर, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, अभिव्यक्ति	1992
36.	तलाक दर तलाक, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, अभिव्यक्ति	1992
37.	शतरूपा, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, अभिव्यक्ति	1992
38.	चुटकी भर चन्दन, राजेन्द्र पाण्डेय, मगध	1992
39.	संयुक्ताक्षर, राजेन्द्र पाण्डेय, मगध	1992
40.	श्रद्धांजलि, राजेन्द्र पाण्डेय, मगध	1992
41.	दंडनायक, हृदयेश, राजकमल,	1990
42.	फूल, इमारतें और बंदर, गोविन्द मिश्र, राधाकृष्ण	2000
43.	महासमर (अधिकार), नरेन्द्र कोहली, वाणी	2000

44.	महासमर (कर्म), नरेन्द्र कोहली, वाणी	2000
45.	महासमर (धर्म), नरेन्द्र कोहली, वाणी	2000
46.	महासमर (अंतराल ), नरेन्द्र कोहली, वाणी	2000
47.	महासमर (प्रच्छन्न ), नरेन्द्र कोहली, वाणी	2000
48.	महासमर (प्रत्यक्ष ), नरेन्द्र कोहली, वाणी	2000
49.	हैमबरगर, कमल कुमार, हिन्दु बुक सेन्टर	1996
50.	सूखे आँसू, सविता राघव अविनाश, हिन्दी साहित्य	1997
51.	रिश्तों के बीच, पुष्पा हीरालाल, विश्वोदय प्रकाशन	1999
52.	विजयी, रासबिहारी बेहेरा, वाणी प्रकाशन	1990
53.	बात अडतालीस घंटों की, जैन कुमार, विकास कंप्यूटर्स	1996
54.	मंगल सूत्र, बृजलाल हांडा, सावित्री प्रकाशन	2000
55.	गौरी, राजेन्द्र शर्मा, सन्मार्ग प्रकाशन	1997
56.	टूटते गाँव बनते रिश्ते, योगेन्द्र प्रताप सिंह, जय हनुमान प्रिंटिंग	1992
57.	अक्षरों के आगे मास्टर जी, भैरवप्रसाद गुप्त, लोकभारती प्रकाशन	1993
58.	अभिज्ञान, नरेन्द्र कोहली, राजपाल एण्ड सन्स	1992
59.	तोड़ो कारा तोड़ो (निर्माण) (साधना), नरेन्द्र कोहली, राजपाल एण्ड सन्स	1993
60.	तीसरा मोड़, महेश गुप्त, लोकभारती प्रकाशन	1992
61.	महासमर (निर्बंध), नरेन्द्र कोहली, वाणी	2000

## ख. सहायक ग्रंथ

1. नयी कविता मूल्य मीमांसा, डॉ. बैनाथ सिंहल, सं. 1981  
मंथन पब्लिकेशन, शारदा प्रकाशन
2. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका
3. नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण, डॉ. संगमलाल पाण्डेय
4. A General Theory of Society, R.K. Mukharjee
5. साहित्य और सामाजिक मूल्य, डॉ. हरिदयाल
6. Towards the psychology of being, A.H. Maslo, New  
knowledge in Human Value
7. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, अज्ञेय
8. एलिमेन्ट्स ऑफ सोसाइटी, राइट
9. साहित्य की सामाजिक भूमिका, डॉ. देवेश ठाकुर  
संकल्प प्रकाशन, मेरठ, 1986
10. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास, डॉ. हरवंशलाल शर्मा  
नागरी प्रचारिणी सभा
11. साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. नगेन्द्र
12. आंचलिक कथा, दशा और दिशा, सप्ताहिक हिन्दुस्तान, 3-9 मई 1992  
मेत्रयी पुष्पा
13. समसामयिक नाटकों में वर्ग चेतना, डॉ. देवकिशन चौहान  
स्वराज प्रकाशन, सं. 1997
14. भारतीय संस्कृति के आदान, डॉ. डी.एन. मजूमदार
15. हिन्दी उपन्यास साहित्य में दाम्पत्य चित्रण -  
डॉ. उर्मिला भटनागर, सं. 1991



16. समकालीन हिन्दी कहानी, डॉ. पुष्पवाल सिंह
17. B.R. Achievements of planning in India, Chakrabarty
18. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी कथ्य और शिल्प, डॉ. शिवशंकर पांडये
19. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास (सन् 1942-1962), डॉ. रामगोपाल चौहान,  
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
20. साठोत्तरी हिन्दी काव्य में राजनीतिक चेतना, डॉ. एस, विद्याविहार,  
कानुपर 1992
21. राजनीति में लेखकों की सक्रिय भागीदारी, 'वैचारिक' त्रैमासिक,  
जनवरी-मार्च 1992, गिरिराज किशोर
22. साठोत्तरी हिन्दरं कविता में जनवादी चेतना, नरेन्द्र सिंह  
वाणी प्रकाशन, 1990
23. समकालीन कहानी और समाजवादी चेतना 'समालीन हिन्दी में लोकतांत्रिक  
समाजवादी चेतना, राजेन्द्र भटनागर
24. स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी, कृष्णा अग्निहोत्री, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन  
दिल्ली, सं 1983
25. रीलीजन एंड द मॉडर्न माइंड - डब्ल्यू टी. स्टेट्स
26. नई कविता संस्कार और शिल्प - रामाशंकर मित्र
27. धर्म और समाज, डॉ. राधाकृष्णन
28. भारत-भारती, मैथिलीशरण गुप्त, अतीत खण्ड
29. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डॉ. देवराज पथिक
30. Our Heritage, Humayun Kabir
31. Man in the primitive world, E.A. Hobel
32. मानव मूल्य और साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारती,

୧୧୧୧ ମାସକାର ଚାରିଆଡ଼ ମାସିକା

ନାମ ମାସକାର ଓଡ଼ିଆ ଗଳ୍ପଲେଖନଙ୍କ ଓ ମାସକାର	୧୧
ନାମ ମାସକାର ଓଡ଼ିଆ ଗଳ୍ପଲେଖନଙ୍କ ଓ ମାସକାର	୧୧
ନାମ ମାସକାର ଓଡ଼ିଆ ଗଳ୍ପଲେଖନଙ୍କ ଓ ମାସକାର	୧୧
ନାମ ମାସକାର ଓଡ଼ିଆ ଗଳ୍ପଲେଖନଙ୍କ ଓ ମାସକାର	୧୧
ନାମ ମାସକାର ଓଡ଼ିଆ ଗଳ୍ପଲେଖନଙ୍କ ଓ ମାସକାର	୧୧

ମାସକାର ଫେବୃଆରୀ ୧୧୧୧ ମାସକାର

ନାମ ମାସକାର ଓଡ଼ିଆ ଗଳ୍ପଲେଖନଙ୍କ ଓ ମାସକାର	୧୧
ନାମ ମାସକାର ଓଡ଼ିଆ ଗଳ୍ପଲେଖନଙ୍କ ଓ ମାସକାର	୧୧
ନାମ ମାସକାର ଓଡ଼ିଆ ଗଳ୍ପଲେଖନଙ୍କ ଓ ମାସକାର	୧୧

୧୧୧୧ ମାସକାର ମାସକାର

ନାମ ମାସକାର ଓଡ଼ିଆ ଗଳ୍ପଲେଖନଙ୍କ ଓ ମାସକାର	୧୧
---------------------------------------	----

୧୧-୧୧୧୧ ମାସକାର ମାସକାର

ନାମ ମାସକାର ଓଡ଼ିଆ ଗଳ୍ପଲେଖନଙ୍କ ଓ ମାସକାର	୧୧
---------------------------------------	----

୧୧-୧୧୧୧ ମାସକାର ମାସକାର

ନାମ ମାସକାର ଓଡ଼ିଆ ଗଳ୍ପଲେଖନଙ୍କ ଓ ମାସକାର	୧୧
ନାମ ମାସକାର ଓଡ଼ିଆ ଗଳ୍ପଲେଖନଙ୍କ ଓ ମାସକାର	୧୧

୧୧୧୧ ମାସକାର ମାସକାର

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1999

33. नई कहानी में आधुनिकता बोध, डॉ. साधना शाह
34. मानव मूल्यों की खोज, डॉ. नत्थूलाल गुप्त
35. समकालीन कविता में नवीन जीवन मूल्य, डॉ. हुकुमचन्द्र
36. साठोत्तर कहानी और परिवर्तित मूल्य, डॉ. श्रीमती प्रेमसिंह, मीनू पब्लिकेशन, दिल्ली 1994 राजसूर्य प्रकाशन
37. आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य, डॉ. रमेश देशमुख, विद्या प्रकाशन, कानपुर 1994
38. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में नैतिक मूल्य, डॉ. ए.जे. अब्रहाम, एब्रहाम जोणसन प्रकाशन, केरल, 1998-99
39. नैतिक मूल्य : परख एवं सुझाव, डॉ. ए.जे. अब्रहाम, एब्रहाम जोणसन प्रकाशन, केरल, 1998-99
40. आज के परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य, डॉ. हेतु भारद्वाज, 1984
41. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबंध साहित्य में व्यंग्य, उषा शर्मा, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, 1985